* श्रीमते रामानन्दायनमः *

॥ श्रीरघुनाथायनमः ॥

गीता तात्पर्य निर्णय:

यः स्वानन्यभक्तानां सुलभोऽनंतरूपवान् ॥
तं रामं सच्चिदानन्दं वन्देऽहं पुरुषोत्तमम् ॥

इह खलु सकल वेदपूर्वापर वाक्यैकवाक्यता करणेन तद्गूढ तात्पर्यं निर्द्धार्य ज्ञातुमसमर्थान् मन्दमतीन् जीवानवलोक्य धर्मसंस्थापनाय साधु परित्राणाय चावतीर्णः परमकारुणिको भगवान् सर्वज्ञः सकलोपनिषत्सारार्थ प्रका-

---

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

करुणार्णव रूपाय परमानन्द दायिने ।
श्रीमते रामवल्लभाय शरणाय गुरवे नमः ॥

इस संसारमें सम्पूर्ण वेदोंके पूर्वा पर वाक्योंकी एक वाक्यता करनेके लियेवेदों के गूढ़ तात्पर्यको निर्णयकरके जानने में असमर्थ मन्दमति जीवोंको देखकर धर्म संस्थापन और साधु परित्राण करने के लिये अवतीर्ण हुए। परम कारुणीक सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णजीने सम्पूर्ण उपनिषदोंके सार अर्थ को प्रका-

शकं गीताख्य शास्त्रं स्व प्रपन्नार्जुनोद्देशेन नेहावतार्य्य तत्र तेषु साधूनामनुष्ठेयं कर्म ज्ञान भक्ति योगमुपदिदिक्षुरादौ कर्मयोगज्ञानयोग स्थिति भेदेन द्विविधां निष्ठां प्रकाश्यानंतरमुक्त निष्ठाद्वयसाध्यं परमपुरुषार्थस्वप्राप्त्युपायभूतं स्वानन्यभक्ति योग मुपदिदेशार्जुनं प्रति "अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥ अन-

---

शन करने वाले गीता नामक शास्त्र को अपनी शरणमें प्राप्त अर्जुनके बहानेसे प्रगट किया। और उस गीतामें सज्जनों के अनुष्ठान करने योग्य कर्मज्ञान और भक्ति योगका उपदेश देने की इच्छासे आरंभमें कर्मयोग और ज्ञानयोग की स्थिति-भेदसे दो प्रकार की निष्ठा को दिखाकर उसके बाद दोनों निष्ठाओंसे साध्य जो परम पुरुषार्थरूप अपनी प्राप्तिके उपायभूत स्वानन्य भक्तियोग को अर्जुनके प्रति आपने उपदेश किया।

"जैसे अनन्यचित्त होकरके जो हमारा नित्य स्मरण करता है। हे अर्जुन उस नित्ययुक्त योगीके लिये हम अत्यन्त सुलभ हैं। —हे अर्जुन वह परम पुरुष अनन्य भक्तिसेही प्राप्त हो सकता है॥ अनन्यतया चिंतवन करते हुए जो भक्त हमारी

न्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ॥ तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥ मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः ॥ भक्त्यात्वनन्यया शक्योऽहमेवं विधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ मत्कर्म कृत्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः । निर्वैरः सर्व भूतेषु यः समामेति पांडव ॥ मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते । श्रद्धया परयोयेता-

---

उपासना करते हैं, नित्यही हमारेमें अभियोग करनेवाले उन भक्तोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूं ।

मेरेमें मनको लगावो, हमारे भक्त होवो, हमारा यजन करो, हमको नमस्कार करो, और हमारे परायण होवो इस युक्ति से हमको प्राप्त होवोगे ।

हे अर्जुन ! इसप्रकारसे अनन्य भक्ति सेही हम जाने जा सकते हैं और यथार्थतया देखे भी जा सकते हैं और अनन्य भक्ति से ही प्रवेश करने योग्य होते हैं ।

हमारे लिये कर्म करो हमारेमें परत्व बुद्धि करो और संग को छोड़कर हमारा भक्त होवो और सब प्राणियोंमें वैरको त्याग दो । हे अर्जुन ! ऐसा ही प्राणी हमको प्राप्त होता है । जो भक्त नित्ययुक्त होकरके हमारेमें मनको आवेशित करके परम श्रद्धा

स्ते मे युक्त तमा मताः ॥ ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः । अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥ तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्यु संसार सागरात् ॥ भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसामि, त्यादिना,, एवमुक्त वाक्यैः स्वानन्य भक्तेः स्वावश्य प्रापकत्वं. प्रकाशयित्वापि तदेव द्विर्बद्ध सुबद्ध न्यायेन दृढयितुं पुनः तस्याः स्वावश्यप्रापकत्वं स शपथं प्रतिज्ञाय शास्त्रमुपसंहृतवान् "मय्येव मन आधत्स्व

से हमारी उपासना करते हैं वे ही हमारे मतसे युक्ततम हैं और जो सर्व कर्मोंका न्यास हमारे में कर देते हैं और हमारे अधीन होते हुए अनन्य योगसे हमारा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं उनको मृत्यु संसार सागरसे शीघ्रही उद्धार करनेवाले हम होते हैं। हे पार्थ ! जिन्होंने हमारेमें चित्तको लगा रखा है उनकी बहुत जल्दी संसार सागरसे रक्षा करता हूं,, ।

इन वाक्योंसे भगवान् श्रीकृष्णजीने अर्जुनको उपदेश किया। और इन्हीं वाक्योंसे अपनी अनन्य भक्तिसे ही हम वश में होते हैं, और अनन्य भक्ति को ही अपनी प्राप्ति का साधन प्रकाशित करके उसीको "द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति" इस न्यायसे दृढ़ करनेके लिये स्वानन्य भक्ति को ही अपनी प्राप्ति का अवश्य साधकताका सपथ करके शास्त्रका उपसंहार किया है। हमारे

मयि बुद्धिं निवेशय। निवशिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजीमां नमस्कुरु मामेवैष्यसि सत्यन्ते प्रतिज्ञाने-प्रियोऽसि मे,, इति मय्येवमनआधत्स्व समाधत्स्व मय्येव मनसः समाधिंकुरु "अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिर मित्यत्र मयि चित्त स्थिर समाधान वचनेन त्वस्मिञ्चित्त

में ही मनको स्थापित करो, हमारेमें ही बुद्धि लगावो, इसके बाद हमारेमें ही प्रविष्ट हो जावोगे। अर्थात् ऐसाअभ्यास करते हुए अन्तमें हमही को प्राप्त हो जावोगे। पुनः हमारेमें मन लगावो हमारे भक्त होवो, हमारा ही यजन करो, हमको नमस्कार करो। ऐसा करनेसे आप हमको प्राप्त होजावोगे, यह मैं सत्य कहता हूँ। और प्रतिज्ञा करता हूं आप हमारे अत्यन्त प्रिय हैं, अर्थात् इस प्रकारसे भजन करने वाले भक्तके हमें अत्यन्त अधीन हो जाते हैं। उपरोक्त इन दोनों श्लोकोंके अर्थको भाष्यकार स्वयंभी लिखते हैं। 'मय्येव मन आधत्स्व' इस पदका अर्थ भाष्यकारजी लिखते हैं कि हमारे में ही मन की समाधी को करो। क्योंकि 'अथचित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्' यहाँ पर हमारेमें चित्तके स्थिर और समाधानके वचनसे हमारेमें ही चित्त की समाधि कही गई है-इससे हमारे में मन की सहज रूपा समाधि वृत्ति करो। यही अर्थ पूर्व पद का

समाधे रुक्तत्वान्मय्येव मनसो सहजां वृत्तिं कुर्वित्यर्थः। मयि बुद्धिं निवेशय नामबुद्धेर्वृत्तिं मय्येकाकारं कुर्वित्यर्थः तदेव स्पष्टयति—मन्मना भव इति मय्येव न मदतिरिक्तपदार्थान्तरे मनो यस्य स मन्मनाः मय्येकस्मिन्मनसः सहजां-वृत्तिं स्वभाविकीं वृत्तिं कुर्वित्यर्थः। सैवैषानन्य-भक्ति शब्द शब्दिता परभक्तिशब्देनापि शब्द्यते "समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्। भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः

यथार्थ होता है। और 'मयि बुद्धिं निवेशय' इस पद के बुद्धि की वृत्तिको हमारे आकार से ही आकारित करो इसी बात को "मन्मनाभव" इस पदसे स्पष्ट करते हैं कि हमारे अतिरिक्त अन्य पदार्थों में जिसका मन नहीं है यही "मन्मनाभव" इस का अर्थ हुआ अर्थात् अकेले मेरे में ही मनकी स्वाभाविक सहजावृत्ति को करो, इसी मनकी स्वाभाविक सहजावृत्ति को अनन्य भक्ति शब्दसे और पर भक्ति शब्द से भी कहते हैं। "समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभतेपराम्" अर्थात् सब भूतोंमें जो सम है वह हमारी परम भक्ति को प्राप्त कर लेता है, भक्ति से ही भक्त हमको जितने जिस प्रकार यथार्थ रूपसे हम हैं वैसा जानता है इसके बाद यथार्थ रूपसे हमको जानकर हममें

ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्त-रमि,, ति। कुतस्तयोः पर्यायत्व मिति चेत् "भ-क्त्यात्वनन्याशक्य अहमेवं विधोर्जुन, ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप,, इति पर-भक्त्य नन्य भक्त्योरुभयोर्भगवद्याथात्म्य बोधक-त्व.द्येकधर्मकत्वोक्तेः तस्या एतस्या द्विविधानि साधनानि निर्दिष्टानि तत्रैकं तत्साधनप्रकारं

प्रविष्ट हो जाता है इन दोनों श्लोकोंमे मनकी स्वाभाविक वृत्ति पर भक्ति, अनन्यभक्ति इन तीनोंका एकार्थकत्व बतलाया।

अब सन्देह यह होता है कि अनन्यभक्ति और परभक्ति को एकार्थ प्रतिपादकत्व कैसे है। इसके उत्तरमें गीताचार्य, 'भक्त्यात्व नन्यया शक्यो' इस मंत्र से उत्तर देते हैं कि हे अर्जुन ! अनन्याभक्ति से ही हम इस प्रकारके हैं ऐसा जानने और देखनेमें आ सकते हैं और हे परंतप ! अनन्य भक्ति से ही हमारेमें यथार्थ रूपसे प्रवेश कर सकते हैं, इस मंत्र से परभक्ति और अनन्य भक्ति दोनों ही से भगवान् के यथात्म्य बोधकादि रूप एकधर्म कहा गया है।

अर्थात् इन्हीं दोनों से भगवान का यथार्थ बोध होता है। जब भगवत यथार्थ रूप बोधकत्व दोनों का फल है, तो दोनों में पर्य्यायत्व सिद्ध होता है।

इसके (सहजावृत्ति) दो प्रकार के साधन गीताचार्य ने निर्देश किया है। उसमें पहले साधन का प्रकार स्वे स्वे कमण्यं

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नर इत्यारभ्य "ब्रह्म भूयायकल्पते" इत्यन्तेन संक्षेपतो निर्दिश्य स्व कर्मानुष्ठानेन शुद्धान्तःकरणस्याधिकारिणो ज्ञान योगानुष्ठानेना परोक्षी कृत प्रत्यगात्मनः परभक्तिप्राप्तिं प्रकाशयामास "स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु" इत्यारभ्य "यतः प्रवृत्तिभूतानां येन सर्वमिदं ततं स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः। सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे। समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा बुद्ध्या विशुद्धया युक्तोधृत्यात्मानं नियम्य च शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा राग द्वेषौ व्युदस्य च। विविक्त सेवीं लघ्वासी यत वाक् काय मानसः। ध्यान योग

भिरतः यहां से लेकर ब्रह्म भूयाय कल्पते, यहां तक संक्षेप से निर्देश करके स्वकर्म के अनुष्ठान से अन्तःकरण की शुद्धि को बता करके ज्ञान योग के अनुष्ठान से परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन बताया। और उन परमात्मा के प्रसाद से परभक्ति की प्राप्ति का "स्वकर्म निरतः सिद्धिं यथाविन्दति तच्छृणु" यहां से लेकर समःसर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभतेपराम्" यहां तक"

परोनित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः। अहंकारं वलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं, विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्म-भूयाय कल्पते। ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। समःसर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परा,, मित्यन्तेन, यस्माच्च तयोर्नरयोः पर-भक्तिसाधनत्त्वेन निर्दिष्टयोः कर्म-योगज्ञानयोगयोरनुष्ठानप्रकारं प्रथम षट्के विस्तरेणोक्तोपदिश्य तदनुष्ठानसिद्धेभ्य आत्मसुखं प्राप्तेभ्योऽपि स्वभक्ति निष्टयोत्कर्ष्योक्तिद्वारा तान् भक्तियोगे प्रवर्त्तयितुं स्वभक्ति-योगमुपदिष्टवान् सप्तमारम्भ "योगिनामपि स-र्वेषां मद्गतेनांतरात्मने,, त्यादिभिस्तस्मादुप-

---

प्रकाशन किया है। अतः कर्मयोग, ज्ञानयोग, को परभक्ति का साधन निर्देश करके दोनों के अनुष्ठानके प्रकारको प्रथम छः अध्याय में विस्तार पूर्वक से कहा गया है, उसको बताकर ततः अनुष्ठान से सिद्ध आत्मसुख को प्राप्त जनों के लिये, अपने में भक्तिनिष्ठा के उत्कर्ष के कथन के द्वारा उनको भक्ति-योग में लाने के लिये अपने भक्ति योग का उपदेश भगवान ने, "योगिनांमपिसर्वेषाम्" इत्यादिक द्वितीय षट ६ से किया है

पद्यते कर्मयोगज्ञानयोगयोः परभक्तिसाधनत्वम् तत्र षष्ठोक्ताष्टांगयोगं कर्मयोगान्तर्गतं कर्मशिरोभूतं मन्यन्त एके, अन्ये तु तं ज्ञानसाधनत्वेन ज्ञानयोगं मन्यन्ते तत्र प्रथमः पक्ष एवमुपपद्यते। "अशोच्यानन्वशोचस्त्वमित्यारभ्य "एषातेभिहिता सांख्ये" इत्यंतेन ग्रंथेन प्रत्यगात्मविषयां बुद्धिमुपदिश्य बुद्धियोगे त्विमां शृणिवत्यारभ्य कर्मयोगविषयां बुद्धिमुपदिशन् कर्मानुष्ठानप्रकारः षष्ठाध्यायपर्य्यन्तेनोक्तो भगवता' अष्टांगयोगस्य कर्मयोग शिरस्कत्वे तदन्तंगतत्वात्

इससे कर्मयोग, ज्ञानयोग को परभक्ति का साधनत्व सिद्ध होता है। वहां प्रथम षट्कमे कहे गये अष्टांग योगको कर्मयोग के अन्तरगत कर्म के शिरोभाग को कोई मानते हैं, और कोई उस अष्टांग को ज्ञान का साधन होने से ज्ञानयोग मानते हैं. उसमें प्रथम पक्ष ही उपपन्न होता है, क्योंकि 'अशोच्यानन्व शोचस्त्वं, यहां से लेकर "ऐषाते भिहिता सांख्ये,, यहां तक के ग्रंथ से परमात्म विषयक बुद्धि का उपदेश करके "बुद्धि योगे त्विमाम शृणु" यहाँ से आरम्भ कर कर्म योग विषयक बुद्धि का उपदेश करते हुए भगवान ने षष्टाध्याय की समाप्ति तक कर्मानुष्ठान का प्रकार बताया है। इसलिये अष्टांग योग

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारण-मुच्यते इत्याद्युक्तशमादीनामपि मनोनिग्रहा-द्यात्मकानां मानसव्यापारत्वेनांतःकरणकर्मत्त्वो-पपत्तेः । "तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दतीति कर्मयोगसंसिद्धस्याधिकारिणः तज् ज्ञानं स्वयं स्वतः प्रयत्नान्तरं विनैव लभते" इति-ज्ञानस्य योगफलत्वोक्त्या तदर्थकोपायानन्त-रानुष्ठानसूचनेनार्थतश्चशमादीनामपि कर्म-योगांतर्गतत्वोपपत्तेश्च ज्ञानस्य फलात्मकत्वेन

कर्म का शिरोभाग होने से कर्म योगान्तर्गत ही है । "योगारूढस्य तस्यैव' इत्यादि से कहे गये मनोनिग्रहादि रूप शमादिक मानस व्यापार होनेसे अन्तःकरणके कर्म हैं, अर्थात् कर्म दोप्रकार के होते है, बाह्यकर्म और आन्तरकर्म, बाह्य कर्म बाहरी इन्द्रियोंसे होते है, और आन्तर कर्म अन्तरेन्द्रिय मनके द्वारा होते हैं, अतः शमदमादिक मानस व्यापार होने से अन्तःकरण के कर्म है ।

"तत्स्वयं योग संसिद्ध" कर्म योग से संसिद्ध अधिकारी को उसका ज्ञान प्रयत्नान्तरके बिनाही प्राप्त हो जाता है । इस वचनसे योगका फल ज्ञान बताया गया है, उसके लिये उपा-यान्तरो के अनुष्ठानोका निषेध करनेसे अर्थ से भी शमादिक कर्मयोग के ही भीतर उपपन्न होते है । ज्ञान फलात्मक होन

तदनुष्ठानानुपपत्तेश्चेति। द्वितीयपक्षस्तु उक्त-रीत्यात्मविषयां कर्मयोगविषयां च बुद्धिमुपदिश्य "आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते इत्यन्तेन ग्रंथेन कर्मयोगानुष्ठान प्रकारञ्चोपदिश्यानन्तरं योगारूढस्य तस्यैव शमःकारणमुच्यते इत्यारभ्य षष्ठाध्याय पर्य्यन्तेन ग्रंथेन ज्ञानयोगानुष्ठानप्रकार उक्तः। ज्ञानयोगेनसांख्यानामिति निर्दिष्टस्य ज्ञानयोगस्यान्यत्रादृश्यमानस्य परिशेषादस्यैव योगप्रकरणस्य ज्ञानयोगप्रकरणोपपादकत्वात्। आरुरुक्षोः कर्मकारणमुच्यते इति आरुरुक्षोः कर्माधिका-

---

से उसका अनुष्ठान हो ही नहीं सकता है।

दूसरे पक्षमें कथित प्रकारसे आत्मविषयक और कर्मयोग विषयक बुद्धिका उपदेश करके "आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं" इस ग्रंथ से कर्मयोग के अनुष्ठान का प्रकार बताकर उसके बाद "योगारूढस्य,, यहां से लेकर षष्ठाध्याय समाप्ति तक ज्ञानयोग के अनुष्ठान का प्रकार बताया है। "ज्ञान योगेन सांख्यानां" इस कर के बताया हुआ ज्ञानयोग दूसरी जगह देखा नहीं जाता है। अतः परिशेष से इसी योगप्रकरणको ज्ञानयोग प्रकरण मानते हैं। और 'आरुरुक्षोः' इससे आरुरुक्षु को ही कर्म का

रित्ववचनेन योगारूढस्य तदनधिकारित्व सूचनाच्च तेनैव योगारूढानुष्ठेयशमादीनां मानसव्यापारत्वेपि कर्मयोगान्तर्भूतत्वानुपपत्तेः। कर्मकारणमिति शमकारणमिति तद्विभाग करणाच्च। एकाकी अपरिग्रह इत्यादि विशेषणानां कर्मण्यनुपपत्तेश्च भगवत्समर्पितकर्मणामधिकफलकत्वोपपत्त्या। "नेहाभिक्रमनाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयादिति" किञ्चिदनुष्ठितस्यापि कर्मणः फलनाशश्रवणात् तत्त्यागजप्रत्यवायाभावश्रवणात् तस्यमहद्भयरक्षकत्वश्रवणाच्च

अधिकारी कहा गया है। योगारूढ कर्म का अधिकारी नहीं हो सकता यह सूचित किया है। अतः योगारूढ के अनुष्ठान करने योग्य शम दमादिक मानस व्यापार होने पर भी कर्मयोग के भीतर नही आ सकते, क्योंकि कर्म कारण और शम कारण ऐसे उनके दो विभाग किये हैं, एकाकी अपरिग्रह इत्यादिक विशेषण कर्म में उपपन्न ही नही हो सकते हैं। भगवत समर्पित कर्मोका अधिक फल कहने से और 'नेहाभिक्रमनाशोस्ति' इस मंत्रसे किंचित् अनुष्ठितभी कर्मके फलका नाश सुनाजाताहै, और उसके त्यागसे जायमान प्रत्यवाय का अभावभी बताया गयाहै.

निष्काम कर्मिणः इहामुत्रभ्रष्टत्वानु पपत्ते श्च। तदनुष्ठानपराणां कच्चिन्नोभयविभ्रष्ट इत्युक्तो भयविभ्रष्टत्वानुपपत्ते श्च। योगिनां कुले भव-तीत्यत्र संन्यासिनां कुलानुपपत्त्या अन्यथा सिद्धेन ब्रह्मलिङ्गेनाकाशप्राणादिश्रु ति वाधवल्लिङ्गेन योगीति श्रुतेर्बाधात् योगि शब्दस्ययोगशास्त्रविदि तदुपदेष्टरि धीमति ब्राह्मणे लक्षणोपपत्ते श्च। ज्ञानस्याननुष्ठेयत्वे-पि तदुपायानामनुष्ठानत्वोपपत्ते श्चेत्येव मुपपद्यते

और महद्भय से उसकी रक्षा भी बताई गयी है। निष्काम कर्म करने वाला पुरुष इस लोक और परलोक में भ्रष्ट नहीं होता है। और 'कच्चिन्नोभय विभ्रष्टः' इस मंत्रसे अनुष्ठान-कर्त्ता के उभयभ्रष्टत्व का निषेध किया गया है। "अथवा योगिनामेव कुलेभवति धीमताम्' यहांपर संन्यासीका कुल नहीं लिया जा सकता है। जैसे आकाश प्राणादि श्रुति का बाध होकर आकाश प्राण शब्दसे ब्रह्म लिये जाते हैं, उसी तरह से यहां पर भी लिङ्ग योगि से श्रुत का बाध होकर योगि शब्दसे योग शास्त्र को जानने वाला योगशास्त्र के उपदेष्टा बुद्धिमान ब्राह्मण में लक्षणा होती है। यद्यपि ज्ञान अनुष्ठेय नहीं है और उसके उपाय अनुष्ठेय हैं, तो भी जिस उपाय से ज्ञान हो

तथापि येनोपायेन सम्भवतुतेनैव प्रत्यगात्म प्राप्तिं प्रशान्त मनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमं। उपैति "शांत रजसं ब्रह्मभूतमकल्मषं सुखेन ब्रह्म संस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते,, इत्यादिनोक्त्वानंतरं "योगिनामपि सर्वेषां मद्गते नान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां समेयुक्त तमोमत इति वचनेन तेषां कर्मयोगिनां ज्ञानयोगिनां प्राप्तात्मनां बहुनामधेयः कश्चिन्मदगतेन

स ता है उसी उपाय से परमात्माकी प्राप्ति को 'प्रशान्तमनसं ह्येनं' इत्यादिक से कहकर 'योगिना मपिसर्वेषां' इस वचन से जिसका अर्थ यह है कि कर्मयोगी ज्ञानयोगी जिन्होंने आत्मा को प्राप्त कर लिया है उन बहुतों के मध्यमें जो कोई हमारे में मन को लगाकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करता है। वह हमारे मत में सबसे उत्कृष्ट है। इस अर्थने दोनों योगों से सिद्ध हुए योगियों को भक्ति योग का अधिकारी बताकर और 'मय्यावेश्य मनाः' इस वचनसे भक्ति योग से ही हम यथार्थ से जाने जा सकते हैं। ऐसा निर्देश करके 'मनुष्याणां सहस्रेषु' इस वचन से ज्ञानयोग से आत्मा को जिन्होंने प्राप्त कर लिया है उनके मध्य में कोई ही हमको यथार्थ रूप से जानता है ऐसा कहकर 'योगिनामपि सर्वेषां' इस वचन से—उक्त ज्ञानयोग को वास्तविक स्फुट करके उसके आगे भक्तियोग वर्णन करनेसे आत्म-

मनसा श्रद्धा पूर्वकंमां भजते स युक्ततमः सर्वो-
त्कृष्टः मे मत इत्यर्थकेनोक्त योगद्वयसिद्धानां
भक्तियोगाधिकारत्वं निर्दिश्यमय्यासक्तमनाः-
पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः। असंसयं समग्रं मांय-
थाज्ञास्यसितच्छ्रृणिवति भक्तियोगस्य स्वसमग्रं
बोधकत्वं च निर्दिश्य मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चि-
द्यतति सिद्धये यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मामैति
तत्वतइत्यनेन सिद्धानां ज्ञानयोगेन प्राप्तात्मनामपि
मध्ये कश्चित्तत्वेन मां वेत्तीत्युक्त्या योगिनामपि
सर्वेषा मित्युक्ता अनन्यथा सिद्धेनोक्तेने ज्ञानस्य

ज्ञानी को ही भक्तियोग करने का अधिकार है। अतः कर्मयोग और ज्ञानयोग को ही परभक्ति का साधन माना गया है। यह एक प्रकार दिखाया गया।

अब द्वितीय साधन प्रकार दिखाते हैं। मन्मनाभव तथा मत्कर्मकृत" इत्यादि, उक्ति से हमारा भजन नमस्कार मद्विषयक कर्मादिक, निर्देश करके, मय्येव मन आधत्स्व" अथ चित्तं समाधातु" इत्यादिक मन्त्रों से साधन प्रकार बताया है इन श्लोकों में मच्चित्त समाधान पद से अनन्य भक्ति का ग्रहण है। उसके अनुष्ठान में असमर्थ के लिये उसके साधन भूत अपने कर्मों के करने का उपदेश दिया है। और वे कर्म भगवान के ध्यान पर्यन्त निर्दिष्ट हैं। और यहाँ उत्तरोत्तर साधनों के अनुष्ठान में

स्फुटीकृत्य तदग्रे भक्तियोगवर्णनेन च प्राप्ता-
त्माज्ञानस्य भक्तियोगाधिकारित्वस्फुटीकरणा-
दुपपद्यते । कर्मयोगज्ञानयोगयोः परभक्ति-
साधनत्वमित्येकस्तत्साधनप्रकारो दर्शितः ।
द्वितीयस्तत्साधनप्रकारस्तु "मन्मना भव मद्भक्तो
मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमा-
त्मानं मत्परायणः" । तथा "मत्कर्म कृन्मत्परमो
मद्भक्तः संगवर्जितः । निर्वैरः सर्वभूतेषु यः समा-
मेति पाण्डव" इत्युक्तौ मद्य जनमन्नमस्कार मत्क-
र्मादिक इति निर्दिश्य "मय्येव मन आधत्स्व
मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत
ऊर्ध्वं न संशयः॥ अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि
मयि स्थिरम्। अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं
धनञ्जय ॥ अभ्यासेप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमोभ-
वेत्यनेन स्फुटीकृतो भवति। तत्र मच्चित्तसमाधान
पदोक्तानन्यभक्त्यनुष्ठानासमर्थस्य तत्साधन-
त्वेन स्वकर्मपरत्वोपदेशात् । तच्च कर्म, स्वध्यान-
पर्य्यन्तं निर्दिष्टं । तत्रैवोत्तरोत्तरसाधनानुष्ठाना

समर्थस्य तत्पूर्वपूर्वसाधनानुष्ठानोपदेशपर वाक्ये "श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते" इति स्वकर्मपदस्थाने ध्यानपद-प्रयोगात्। स्वकर्मपदस्य ध्यानपदस्य चानन्तरं कर्मफलत्यागपदप्रयोगाच्च "अथैतदप्यशक्तोसि-कर्तुं मद्योगमाश्रितः। सर्वकर्मफलत्यागं ततःकुरु-यतात्मवानिति", "ध्यानात्कर्मफलत्याग इति च। तस्मात्स्वानन्यभक्त्यनुष्ठानासमर्थस्य ध्यान-

असमर्थ प्राणी के लिये पूर्व २ साधनों के अनुष्ठान का उप-देश देनेवाले "श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासात्" इस वाक्यमें स्वकर्म पदके स्थान में ध्यान पद का प्रयोग किया गया है। और स्व-कर्म पद और ध्यान पदके बाद "अथैतदप्यशक्तोसि०", 'ध्याना-त्कर्मफलत्यागः।...'' इन पदों से कर्मफलत्याग पद का प्रयोग किया गया है। अतः स्वानन्यभक्ति के अनुष्ठान में असमर्थके लिये ध्यान पर्य्यन्त स्वकर्म परत्व का उपदेश किया गया है इसीलिये यह मालूम पड़ता है कि भगवद्भजन नमस्कार आदिक अनन्यभक्ति के ही साधन हैं।

और उसी जगहपर स्वकर्म परत्व में असमर्थ के लिये निष्काम कर्म का उपदेश किया गया है और निष्काम कर्म को ही भगवत अर्चनादि साधन माना गया है।

अतः प्रथमषट्क से उपदिष्ट निष्काम कर्म के अनुष्ठान से शुद्धान्त करण भक्त के लिये भगवान् के भजन यजनादि के

पर्यन्तस्वकर्मपरत्वोपदेशात् भगवद्यजननमस्का-
रादीनामनन्यभक्तिसाधनत्वमवगम्यते । तत्रै-
व च स्वकर्म परत्वाऽसमर्थस्य निष्कामपर-
त्वोपदेशाच्च निःकामस्य कर्मणो भगवदर्चनादि
साधनत्वावगमात् । प्रथम षट्कोपदिष्टनिष्काम-
कर्मानुष्ठानेन शुद्धान्तःकरणस्य तद्यजनाद्यनुष्ठा-
नद्वारा तदनन्यभक्तिप्राप्तिरित्युपपन्नं भवति ।
यान्यत्र मत्कर्म पदेन सूचितानि अनन्यभक्तिसा-
धनानि तद्यजनश्रवणकीर्तनादीनि तानि नवमे
स्फुटमुक्तानि "महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृति-
माश्रिताः । भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्य-
यम् ॥ सततं कीर्त्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।

अनुष्ठान द्वारा अनन्यभक्ति की प्राप्ति होती है। यह बात सिद्ध होती है। और जो यहाँ पर मत्कर्म पद से अनन्यभक्ति के साधन रूप भगवान् के यजन श्रवण कीर्तन आदिक सूचित किये गये हैं। वे सब नवम अध्याय में 'महात्मानस्तु माम्पार्थ' इत्यादिक वचनों से कहे गये हैं। अर्थात् हे पार्थ ! दैविक प्रकृति में स्थित महात्मा लोग हमको भूतादि, अव्यय जान कर अनन्यमन से भजते हैं, और सतत हमारा कीर्तन करते हैं, दृढ़व्रत होकर नित्य हमारे में यत्नशील होते हैं, हमको नमस्कार करते हैं, और नित्ययुक्त होकर भक्ति से हमारी उपासना

नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते" इति एतद्वाक्यं सविशेषब्रह्मभक्तविषयमित्यनन्तर-वचनात्, ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेनेत्यस्मान्निश्चीयते; तत्र ज्ञानयज्ञपराणा-मिव द्वादशोक्ताक्षरोपासनापराणां पूर्वश्लोको-क्तेभ्यः कीर्तनादिपरेभ्योऽन्यत्वोक्तेरिति एषां तच्छ्र-वणकीर्तनादिपराणां प्रत्यगात्मनः परमात्मन-श्चापरोक्षज्ञानं न षष्ठोक्तयोगपराणामिव द्वाद-शोक्ताक्षरोपासनापराणामिव क्लेशाधिकतर बहुसाधनसाध्यं, किन्तु ज्ञानयोगानुष्ठानं

करते हैं, यहाँ पर उपासक पद से सविशेष ब्रह्मभक्त को ही समझना चाहिये। यह बात 'ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये' इत्यादि पद से निश्चय होता है, क्यों कि "ज्ञान यज्ञेन" इस पद में ज्ञान यज्ञ में परायणों के तरह से द्वादशाऽध्याय में उक्त अक्षरोपासना परायणों को "महात्मानस्तुमाम् पार्थ" इन श्लोकोंमें कीर्त्तनादि परों को पृथकतया निर्देश किया है। इन भगवच्छ्रवण कीर्त्तनादि परायण भक्तों को प्रत्यगात्मा और परमात्मा का अपरोक्ष ज्ञान अनायास से हो जाता है जिस प्रकार से षष्ठाध्यायोक्त योग परायणों की तरह द्वादशाऽध्यायोक्त अक्षरोपासना परायणों को क्लेशाधिक बताया गया है उसप्रकार भगवत् श्रवणकीर्त्तन

विनैवकेवलश्रवणकीर्त्तनस्मरणादिप्रसादितभगवदनुकम्पालभ्यमिति दशमवाक्यादवगम्यते। "अहं सर्वस्यप्रभवोमत्तः सर्वं प्रवर्त्तते। इतिमत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणाः बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्तिच रमन्तिच॥ तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वतेत्येतस्मात्" एषां वचनानामक्षरोपासकविषयत्वं नोप-

---

परायण के लिये नहीं है किन्तु ज्ञानयोग के अनुष्ठान के विना ही केवल श्रवण कीर्तन स्मरणादि से प्रसन्न भगवान की अनुकम्पा से ही प्राप्त हो जाता है। यह बात १० वाँ अध्याय के निम्नांकित वाक्यों से अवगत होता है। मैं (भगवान्) ही सबका प्रभु हूं, मेरे से ही सबकी प्रवृत्ति होती है, ऐसा जानकर भाव समन्वित होकर विद्वान भक्त हमारा भजन करते हैं, हमारे में चित्त को लगाये है, हमारे में ही प्राण की वृत्ति लगाकर परस्पर में बोधन और मेरा कथन करते हुए नित्य सन्तुष्ट होते हैं और रमण करते हैं उन प्रीति पूर्वक भजन करने वाले सतत योगियों के लिये उस बुद्धियोग को मैं देता हूं जिससे वे सब हमको प्राप्त हो जाते हैं और उनके उपर अनुकम्पा के लिये अज्ञान से जायमान अन्धकार को अत्यन्त प्रकाशमान ज्ञानरूपी

पद्यते तेषामिति क्लेशप्रदैः स्वानुष्ठितसाधनैः प्रत्यगात्मज्ञानावाप्त्युक्तेः। पुनस्तेषां निरुपाधिकज्ञेयब्रह्मविचाराधिकारिणां "अहं सर्वस्य प्रभवे-त्युक्तस्य सर्वजगत्कारणस्य सोपाधिकत्वेन तदभिमतस्य प्रेमपूर्वकं भजनानुपपत्तेः। पुनश्च एकाकी यतचित्तात्मेति षष्ठोक्तज्ञानियोगपराणामेकाकित्वोक्त्या एकत्र बहुस्थित्यनुपपत्त्या बोधयन्तःकथयन्तःइत्युक्त बहुजनसाध्यतद्बोधन

दीप से आत्मा में स्थित होकर नाश कर देता हूं इन वचनों का अक्षरोपासक विषयकत्व कथमपि उपपन्न नहीं हो सकता, क्यों कि उन ज्ञानियों के लिये क्लेशप्रद स्वानुष्ठित साधनों से प्रत्यगात्मज्ञान की प्राप्ति बताई गई है, और वे अव्यक्तोपासक ज्ञानियों के निरूपाधिक ज्ञेय ब्रह्म विचार का ही अधिकार है अतः उनके लिये "अहं सर्वस्य प्रभवः" इस पद से कहे गये सर्व जगत् कारण उनके मत में स्वोपाधिक होने से प्रेम पूर्वक भजन बन ही नहीं सकता क्यों कि वे तो निरुपाधिक ब्रह्म को ही ज्ञेय समझते हैं और यहाँ पर ब्रह्म सर्व जगत् कारण होने से स्वोपाधिक है अतः उनके भजनार्ह है।

द्वितीय अनुपपत्ति एक यह भी है कि "एकाकीयत चित्तात्मा" इस षष्ठाध्याय के वचन में ज्ञानयोगपरायण के लिये एकाकी रहने का उपदेश है एक जगह बहुतों की स्थिति हो

कथनाद्यनुपपत्तेश्च। तद्बोधनकथनमात्रेण तत्तोष-त्वरमणत्वानुपपत्तेश्च। पुनश्च द्वादशे 'तेषामहं समुद्धर्त्ता','भवामि न चिरात्पार्थ',इत्यस्य व्याख्याने भाष्यकृता श्रीशंकरेण यद्भगवदाधीनमुक्तिमत्त्वेन तद्भक्तेभ्यः स्वाधीनमुक्तिमत्वेनाक्षरोपासकाना-मुत्कृष्टत्वं प्रतिपादितं यत् तद्विरोधाच्च । तत्कुतः इतिचेत् अत्र भगवद्दत्तज्ञानेनात्मप्राप्त्यास्मि कायास्तन्मुक्तेः पराधीनत्वोपपत्तेरिति तदेत-च्छ्रवणकीर्तनादिप्रसादितभगवद्दत्तप्रत्यगात्म-

नहीं सूझती अतः बोधयन्, कथयन्, यह बहुजन साध्य होनेसे ज्ञानयोग परायण का बोधन कथन नहीं बन सकता किन्तु भग-वत् श्रवण कीर्तन निष्ठ भक्त के लिये ही हो सकता है । और ज्ञानयोग पर को बोधन और कथन मात्र से तोष और रमन भी नहीं हो सकता है यह तो भक्त के लिये ही होता है क्यों कि भक्त भगवान् के चरित्र श्रवण कीर्तनादि से परम सन्तोष को प्राप्त होते हैं । यदि ज्ञानयोगी और भक्तों का भेद नहीं पावेंगे तो द्वादशवें अध्याय में, 'तेषामहं समुद्धर्त्ता', 'भवामि नचिरा-त्पार्थः" इन मंत्रोंके व्याख्यान में भाष्यकार श्रीशंकराचार्य ने भगवान्के अधीन मुक्ति वाले भक्तों की अपेक्षा स्वाधीन मुक्ति वाले अक्षरोपासकों को उत्कृष्ट बताया है, उसे विरोध पड़ जायगा । यह कैसे विरुध है यह अगर पूछ तो वह इस प्रकार से है कि भक्तों के लिये भगवान् से दिये हुए ज्ञानसे आत्म-

षयं ज्ञानमनन्यभक्तिपूर्वकालीनं, परमात्म विषयबोधरूपन्तु तदुत्तरकालीन मिति अनन्य भक्तिसमानार्थकपरभक्ति परात् 'ब्रह्मभूयाय-कल्पते', 'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति', 'समःसर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ भक्त्या मामभिजानात्येनस्माद्वचनादवगम्यते। एतस्मिन्वाक्ये परभक्तिपूर्वकालीनस्य प्रत्यगात्म-ज्ञानस्य तदुत्तरकालीनस्य परमात्मयाथात्म्य-बोधस्य च स्फुटं प्रतीतेः। तथाच "भक्त्यात्वनन्य-याशक्यअहमेवं विधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप" इत्यनन्य भक्तेरप्युत्तर

प्राप्ति रूपा मुक्ति भक्त को मिलती है, अतः मुक्त को पराधीन कहा गया है इससे श्रवण कीर्तन से प्रसन्न हुए भगवान् से दिए हुए प्रत्यगात्म विषय ज्ञान अनन्य भक्तिपूर्वक होता है और परमात्मक विषय के बोधरूप ज्ञान उसके बाद मिलता है यह बात अनन्यभक्ति समानार्थक पर भक्तिपर "ब्रह्मभूयाय कल्पते" इत्यादि वाक्योंसे जाना जाता है। क्योंकि इन वाक्योंमें पहले परभक्ति पूर्वक प्रत्यगात्म विषयक ज्ञान होता है और उसके बाद परमात्मविषयक यथार्थ बोध होता है यह स्पष्ट है।

'तथा च भक्त्यात्त्वनन्याशक्य' इस मंत्र से अनन्यभक्ति के भी उत्तर कालमें परमात्माका यथार्थ बोध होता है। यह

काले परमात्मयाथात्म्यबोधाद्युक्तेः परभक्तिसमानार्थकत्वावगत्या अस्या अपिपूर्वकालीनत्वे प्रत्यगात्मज्ञानस्यावश्यं भाव्यमित्युपपन्न मनन्य भक्तिपरभक्त्योर्द्वयोरपिकर्मज्ञानोत्तरकालीनत्वेन तदनुष्ठानसाध्यत्वं तथा फलतश्चैक्यं तयोर्द्वयोर्भगवत्तत्वयाथात्म्यबोधकत्वाद्येक फलकत्वात् । एतावांस्तु तत्र विशेषोस्ति परभक्तिपूर्वकालीनं तत्साधनभूतं प्रत्यगात्मज्ञानं ज्ञानयोगसाध्यं तात्साधनकोटावहंकारकामक्रोधादित्यागश्रवणादतोदुष्करं तत् अक्षरोपासकानां दुःखबाहुल्य-

---

कहने से परभक्तिके सामानार्थक का ज्ञान होने से परभक्ति के पूर्वकाल में होने पर भी प्रत्यगात्मज्ञान अवश्य हो सकता है यह सिद्ध होता है अतः अनन्यभक्ति और परभक्ति दोनों को ही कर्म और ज्ञान के उत्तर कालीनत्व होने से उन दोनों के अनुष्ठान से साध्यता बताई गई। और फल से भी उन दोनों को भगवत्तत्व का यथार्थ बोध होने से और एक फलवाले होने से दोनों में ऐक्य है परंच इतनी विशेष बात है कि परभक्ति के पूर्व में होने वाला परभक्ति का साधनभूत प्रत्यगात्मा का ज्ञान योगसाध्य है और उसकी सधान कोटि में अहंकार काम-क्रोधादि का त्याग सुना जाता है इसीलिये ज्ञानयोग अक्षरोपासकों के लिये दुष्कर बताया गया है। और उसमें दुःखबाहुल्य

प्राप्त्युक्तेः "क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसामिति" अनन्यभक्तिपूर्वकालीनं प्रत्यगात्मज्ञानं तु श्रवणादिप्रसादितपरमात्मानुकम्पालभ्यं "तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजंतमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वतेत्युक्तेस्तः सुकरं तत्; तत्साधनज्ञानयोगानुष्ठानं विनैव तल्लब्धेःश्रवणादीनामपि सुकरत्वात्। कुतःएकत्र परमात्मनः प्रसादाधिक्यमन्यत्र तदभावइतिचेत् तदीयसाधनानामहंकारत्यागादीनां प्रत्यगात्मप्रयोजनकत्वात्। श्रवणादीनान्तु केवलं पर-

भी कहा गया है क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसां ।" अव्यक्तासक्त चित्तोंको क्लेश अधिक होता है। इति

और अनन्यभक्तिके पूर्वकालीन प्रत्यगात्मज्ञान श्रवणादि से प्रसन्न परमात्मा के अनुकम्पा से प्राप्त होता है। क्योंकि हे अर्जुन! उनके अनुकम्पा के लिये आत्मभावस्थ होकर के मैं प्रकाशयुक्त दीप से अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश कर देता हूँ यह भगवान की प्रतिज्ञा है अतः वह सुकर है। और उसका साधन ज्ञानयोग के अनुष्ठान के विनाही उनकी प्राप्ति हो-जाती है। अतः श्रवणादिक भी सुखपूर्वक हो सकते हैं।

अब सन्देह यह होता है कि एक जगह परमात्मा का प्रसाद अधिक है और दूसरी जगह प्रसाद नहीं है सो क्यों

मात्माविषयकत्वात् । एतदुक्तं भवति ज्ञानयोग-निष्ठः कर्मानुष्ठानकृतान्तःकरणशुद्धिकालमारभ्य यावत्कालेन प्रत्यात्म प्राप्तिः तावत्कालं प्रत्यगात्म-ज्ञानार्थं तत्साधनान्यनुतिष्ठति ध्यायति च तमेव न तु परमेश्वरप्राप्त्यर्थं किञ्चित्करोति न च तं ध्यायति ज्ञानयोगप्रकरणे अक्षरोपासनाप्रकरणे च प्रत्यगात्मचिन्तनभिन्नतयापरमात्मध्याना-श्रवणात् किन्तु चतुर्विधा भजन्ते मामित्यत्र

इसका कारण यह है कि ज्ञानयोग के साधन अहंकारादिकों का त्याग प्रत्यगात्मबोध का प्रयोजक होता है। और अहंकारादिकों का त्याग अत्यन्त दुष्कर है और अनन्यभक्ति में साधन भूत श्रवणादिक हैं जिन श्रवणादिकों का विषय केवल परमात्मा ही है अतः श्रवणादिनिष्ठ अनन्यभक्तिमान् पुरुष के ऊपर परमात्मा की अधिक कृपा है। और ज्ञानयोग साधन में केवल भगवद्विषय न होने से भगवान् की अनुकम्पा नहीं होती इसका मतलब यह होता है कि ज्ञानयोगनिष्ठ पुरुष कर्मों के अनुष्ठानसे अन्तःकरण की शुद्धि अब कर लेता है तबसे लेकर जबतक प्रत्य-गात्मकी प्राप्ति नहीं हो जाती तबतक प्रत्यगात्मकज्ञानके लिये साधनों का अनुष्ठान करता रहता है और उसीका ध्यान भी करता है परमात्मा की प्राप्ति के लिये न तो कुछ करना ही है और न परमात्मा का ध्यान ही करता है, क्योंकि ज्ञान-

जिज्ञासोरथात्म साधनत्वेन परमात्मभजनश्रवणा-त्तेषां योगनिष्ठानां मध्ये कश्चित्परमात्मानमपि भजते तदध्यात्मसाधनत्वेन नतु साध्यत्वेनातः परमात्मापि तद्भजनानुसारेण तदात्म प्राप्तिसाहाय्यं करोति नतु स्वयं तत्संपादयति आत्मप्राप्त्यनंतरं तु सोपि "वासुदेवः सर्वमिति" ज्ञानवान्भूत्वा परभक्त्या भगवन्तं भजते तत्प्राप्त्यर्थमतः सोपि-भगवत्प्रीतिविषयः तच्छ्रवणकीर्तनादिनिष्ठस्तु

योग प्रकरण में और अक्षरोपासना प्रकरण में प्रत्यगात्मचिन्तन से भिन्न परमात्मा का ध्यान नहीं कहा गया है। किन्तु "चतुर्विधाभजन्तेमां" यहां पर जिज्ञासु के लिये आत्म साधन रूप से परमात्मा का भजन श्रवण नहीं किया गया है, तो भी यदि कोई ज्ञानयोगनिष्ठों के मध्यमें से परमात्मा का भजन भी करता है तो आत्मसाधनबुद्धिसे ही करता है साध्य बुद्धि से नहीं इसलिये परमात्माभी उसके भजनके अनुसारही आत्मप्राप्ति की सहायता मात्र करते हैं स्वयं उसका सम्पादन नहीं करते आत्म प्राप्ति के बाद वह भी तो वासुदेवः सर्वमिति ऐसा ज्ञान वाला होकर पर भक्ति से परमात्मा के प्राप्ति के लिये परमात्मा का भजन करता है। अतः वहभी भगवान् की प्रीतिका पात्र होगा।

निष्काम कर्मानुष्ठानजान्तःकरणशुद्धिकालमा-
रभ्य यावद्भगवत्प्राप्तिस्तावत्कालं केवलं परमेश्वर-
मेव भजते तदपि तत्प्राप्त्यर्थमेव ततः तस्यश्रवणा-
दिविषयः परमेश्वरः साधनभूतः अनन्यभक्ति-
विषयस्तु स एव तत्प्राप्यभूतोयस्मात् तस्मात्
साधनभूतश्रवणादिविषयः परमात्मापिसाध-
नत्वं प्राप्तः आत्मज्ञानं विना परमात्मज्ञानस्यानु
पपद्यमानत्वात् स्वयं तत्साधनीभूय प्रथममज्ञान-
जतमोनाशद्वाराप्रत्यगात्मस्वरूपं प्रकाशयति प-
श्चात्तज्जन्यस्वानन्यभक्तिलाभद्वारापरमात्मयाथात्म्य

श्रवण कीर्तनादिनिष्ठ भगवद्भक्त निष्काम कर्मके अनुष्ठा-
न करनेसे जिस कालमें उसका शुद्ध अन्तः करण हो जाता
है उस काल से लेकर जबतक भगवानकी प्राप्ति नहीं होती
तबतक केवल परमेश्वर का भजन करता है और यह भजनभी
परमात्मा के प्राप्ति के लियेही करता है अन्य अभिलाषासे नहीं
इसे श्रवण कीर्तनादिनिष्ठ भगवद्भक्त के किये गये श्रवणादि
के विषय परमेश्वरही हैं साधनभूत अनन्य भक्तिके विषयभी
वही हैं और प्राप्यभूत भी वही हैं इसलिये साधन भूत श्रवणादि
के विषय परमात्मा ही साधनभाव को प्राप्त होगये । आत्मज्ञान
के विना परमात्मज्ञान हो नहीं सकता अतः परमात्माही स्वयं
उसके साधन होकर पहले अज्ञान से जायमान अंधकार को

स्वरूपं चेति । एतदेवैताभ्यामुच्यते "तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते । तेषां मेवानुकम्पार्थ महमज्ञानजं तमः । नाशयाम्यात्म भावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वतेति" अत्रैषारीतिः ज्ञानदीपशब्दनिर्दिष्टबुद्धियोगं विना । अथवा बुद्धियोगशब्दोक्तज्ञानदीपं विनाज्ञानजतमोनाशः न च तं विनाप्रत्यगात्मप्राप्तिः न च तां विना भगवत्प्राप्तिरिति परंपरया ज्ञानदीपस्य स्वप्राप्ति-

---

नाश कर प्रत्यगात्मक स्वरूप का प्रकाशन करते हैं उसके बाद उससे जायमान स्वानन्यभक्तिलाभके द्वारा परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को प्राप्त होता है यही बात आगेके दो मन्त्रोंसे बताई जाती है। यही बात तेषां सतत० तेषामेवा० इन दोनों मंत्र से बताई जाती है। यहांपर पौर्वापर्य भाव माना गया है ज्ञान दीप शब्द से निर्दिष्ट बुद्धि योग के विना अथवा बुद्धि योग शब्दोक्त ज्ञान दीप के विना अज्ञानसे जायमान अंधकार का नाश नहीं होसकता और अंधकार के नाश के विना प्रत्य गात्म की प्राप्तिभी नहीं होसकती और प्रत्यगात्मप्राप्तिके विना भगवत् प्राप्ति भी नहीं होसकती इस प्रकार परम्पर से ज्ञानदीप को अपनी प्राप्तिका साधन मानकर भगवान् कहते हैं येन

साधनत्वमंगीकृत्याह 'येन मामुपयान्ति ते' इति वस्तुतस्तु अनन्ययैव भक्त्या तत्प्राप्तिरुक्ता भक्त्यात्वनन्यया शक्यो ज्ञातुं, भक्त्या मामभिजानातीति च अथवा बुद्धियोगशब्देनानन्यभक्त्युत्तरकालीनः परमात्मयाथात्म्यबोध उक्तस्तदनन्तरं तत्प्राप्त्युक्तेः "ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते। इति" तत्र तत इति न ज्ञानमुच्यते ज्ञानेन पुनस्तज्ज्ञानानुपपत्तेः किन्तु तच्छब्देन भक्तिः परामृष्टा तयैव तत्तत्वज्ञानपूर्वकं तत्प्रवेशो-

---

मामुपयान्ति तो जिससे वे हमको प्राप्त होजाते हैं।

वास्तवमें तो अनन्य भक्ति से ही परमात्मा की प्राप्ति "भक्त्या त्वनन्य याशक्यो, भक्त्या मामभि जानाति" इन वचनों से कही गई हैं अथवा यहाँ पर बुद्धियोग शब्दसे अनन्य-भक्ति के उत्तर काल में होनेवाला परमात्मा का यथार्थ बोध कहा गया है उसके बाद परमात्माकी प्राप्ति होती है, क्योंकि, "ततो मामृतत्वतो ज्ञात्वा" इसके बाद हमको यथार्थतया जानकर हमको प्राप्त हो जाता है।

अब शंका यह होती है कि ततः पद से किसको लेना चाहिये ततः इस पद से ज्ञान नहीं लिया जासकता है क्यों कि ज्ञान के बाद पुनः ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। अतः यहां तत् शब्द से भक्ति का ही परामर्श होगा क्यों कि भक्ति

पपत्तेः । भक्त्यात्वनन्यया शक्योऽहमेवं विधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप इत्यत्र स्फुटं भक्तेरेव तज्ज्ञापकत्वं तत्प्रवेशकत्वोक्तेः।द्या स च तत् याथात्म्यबोधः तदज्ञाननाशं विना कथमुत्पद्येतेत्यपेक्षायांमाह अहमज्ञानजं तम नाशयामि इति । ततस्तु अज्ञानजंतमोनाशानन्तरं प्रत्यगात्मप्राप्तिस्ततोऽनन्यभक्त्या तद्याथात्म्य बोधानन्तरं तत्प्राप्तिरिति ध्येयं । तदेवमुक्तयोर्द्वयोरपिभक्त्योर्मध्येऽनन्यभक्तिप्रत्य स्थतपक्ष

से ही भगवत् तत्वज्ञान पूर्वक भगवान में प्रवेश हो सकता है क्योंकि "भक्त्या त्वनन्यया शक्यः" इस मंत्रमें स्पष्टतया भक्ति कोही भगवद्‌बोधकत्व भगवत्प्रवेशकत्व बताया गया है। और वह भगवद्याथात्म्य बोध अज्ञान के नाशके विना कथमपि उत्पन्न नहीं होसकता है इसी लिये अज्ञान नाश के लिये परमात्मा ने स्वयं प्रतिज्ञा की "अहमज्ञानजन्तमः नाशयामि" अर्थात् मैं अज्ञान से जायमान अंधकारको नाश कर देता हूँ इसके बाद अज्ञानज अन्धकार के नाश के बाद प्रत्यगात्म की प्राप्ति और उसके बाद अनन्य भक्ति से परमात्मा का यथात्म्य बोध और बोध के बाद परमात्मा की प्राप्ति होती है ऐसा जानना चाहिये

तदेवं इस प्रकार से उक्त दोनों भक्तियों के मध्य में अन-

पातित्वोपपत्तेः परमेश्वरस्य तस्याः समस्तगीता-शास्त्रसारत्वनिश्चयेन गीताशास्त्रमूलभूतवेद सार त्वेनानुमिता एषैव भक्तिरनुष्ठेया भगवत्प्राप्त्य भीप्सुभिर्मुमुक्षुभिः। भगवता सर्वज्ञेन स्वकण्ठतोऽस्याः सप्ताधनायां अनन्यभक्तेः। समस्तगीताशास्त्रगुह्यतमत्वोक्तिपूर्वकं स्वप्राप्त्य-व्यभिचारिसाधनत्वप्रतिज्ञापूर्वकं शास्त्रस्योप-संहराच्च "सर्वं गुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि तेहितं ॥ मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामे-

---

न्य भक्ति के प्रति भगवान का पक्षपात सिद्ध होता है और यही अनन्यभक्ति समस्त गीताशास्त्र का सार है, गीता-शास्त्र का मूल भूत जो वेद उनका भी यही सार है यह निश्चय होता है। अतः भगवत् प्राप्ति के अभिलाषी मुमुक्षुओं को चाहिये कि इसी भक्ति का अनुष्ठान करें और सर्वज्ञ भगवान श्री कृष्णजी ने अपने कंठ से ही साधन के सहित इसी अनन्यभक्ति को समस्त गीताशास्त्र का गुह्यतमत्व कहकर यह बताया है कि अपनी प्राप्ति का अव्यभिचारी साधन अनन्यभक्ति ही है ऐसा कहकर "सर्वगुह्यतमंभूयः" इत्यादि वचनों से शास्त्र का उपसंहार किया है इसे अनन्यभक्ति कोही भगवत्प्राप्ति का परम श्रेष्ठ सुकर उपाय सिद्ध होता है। "मन्मनाभव" इस मंत्र

वैष्यसि सत्यन्ते प्रति जाने प्रियोऽसि मे" इति। अत्र मन्मनाःइत्यनेन स्वानन्यचित्तत्वं च मयि भक्ति-रनुरक्तिर्यस्य स मद्भक्त इत्यनेन स्वैकानुराग-वत्वंतु निर्दिश्य पदद्वयेन स्वानन्यभक्तिरुक्ता। मद्याजी मां नमस्कुर्विंतिद्वाभ्यांतु श्रवणा दिका साधनभक्तिरुक्ता। यद्यप्यत्र यजन-पदस्यैव श्रवणाद्युपलक्षकत्वान्नमस्कारपदं निरर्थकं तथापि त्यागस्यापि यजनपदार्थक त्वेन तत्र तदतिव्याप्तिमाशंक्यतन्निवृत्यर्थकं नम स्कारपदं स्वसहचरितभगवत्पूजार्थकत्व यजन

में मन्मनाः इस पद से स्वानन्य चित्त हो यह बतायाजाता है हमारे में है अनुरक्ति जिसकी वह मद्भक पद से कहा गया है उपरोक्त विग्रह से मद्भक पद का हमारे में ही एक अनुरागवान का निर्देश करके दोनों पदों से स्वानन्यभक्ति कही गई, और "मद्याजीमां नमस्कुरु" इन दोनों पदों से श्रवणादि रूपा साधन भक्ति कही गई। यद्यपि यहाँपर यजन पद ही श्रवणादि का भी उपलक्षक है नमस्कार पद निरर्थक है तौभी यजन पद से त्याग का भी ग्रहण हो जायगा उसे अतिव्याप्ति के वारण करने के लिये नमस्कार पद है, और वह यह सूचित करता है कि नमस्कार सह चरित भगवान का पूजन करना चाहिये।

पदस्य सूचयति । किञ्च मां यष्टुं शीलमस्येति मद्याजीति निरुक्त्या साक्षाद्भगवद्यजनवाचकस्य तत्साक्षात्पूजार्थकत्वोपपत्त्या बहुदेवताकयागस्य तन्नैमित्तिकयागस्य वाचकत्वानुपपत्तेस्तद्यजनपदस्यैव श्रवणाद्युपलक्षकत्वोपपत्तेः । नमः पदमुपायवाचकं मामुपायं कुर्वित्यर्थः । साधनान्तरसंत्यागो नमः शब्दो हि संशतीति पंचरात्रोक्तेः । तेन कर्मज्ञानाद्युपायान्तरपरित्यागपूर्वकं मामेकमुपायं कृत्वा मद्यजनादिपरः सन्मदनन्यभक्त्युक्तमदेकानुरक्तचित्तो भवेति सूचितं

किंच "माम् यष्टुं शीलमस्य इति मद्याजी" हमारे यजन करने का है शील स्वभाव जिसका उसको मद्याजी कहते हैं। इस निरुक्ति से साक्षात् भगवान के यजन वाचक साक्षात् भगवान का पूजा करना यह सिद्ध होता है, बहुत देवताओंवाले याग का और नैमित्तक याग का यजन पद को वाचकत्व कथमपि नहीं हो सकता। इसलिये यजन पद श्रवणादि का उपलक्षक है, और नमः पद उपाय वाचक है अर्थात् माम् नमस्कुरु का अर्थ होता है कि हमको उपाय बनाओ। क्योंकि पंचरात्र में नमःशब्द का अर्थ बताते हुये यह कहा है कि नमः शब्द साधनान्तरों का त्याग बताता है। अतः कर्म और ज्ञानादिक उपायान्तरों को परित्याग कर हमको ही उपाय करके हमारा यजन करते हुए एक हमारे में ही अनुरक्त चित्त होवो यह

भवति। सर्वगुह्यतमोक्त्याप्यस्यैवार्थस्य सूचनात उपायान्तरापरित्यागे सर्वगुह्यतमोक्तौ वैयर्थ्योपत्तेरिति सैषा "अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहमित्याद्युक्ता मन्मना भव मद्भक्त इति निर्दिष्टा चानन्य भक्तिः सविशेषब्रह्मपरा निर्विशेषब्रह्मपरा वेत्याशंकायां सविशेषब्रह्मपरेति ब्रूमः। कुतः ? मद्याजी, मां नमस्कुरु, मत्कर्मकृदित्युक्तानां भगवत्पूजानमस्कारादिभक्तिसाधनानां निर्विशेषाक्षरोपास

सूचित होता है। "सर्वगुह्यतम" से भी यही अर्थ सूचित होता है। यदि उपायान्तरोंका परित्याग न किया जाय तब तो सर्व गुह्यतमत्व का कहना ही व्यर्थ हो जायगा यही अन्यभक्ति "अनन्य चेता सततं" इत्यादिक मूलोक्त दो श्लोकोंमे कही गई है।

अब सन्देह यह होता है कि यह अनन्य भक्ति सविशेष ब्रह्म विषया है अथवा निर्विशेष ब्रह्म विषया है। उत्तर करते हैं कि नहीं सविशेष ब्रह्म विषया है क्योंकि भगवत् पूजा नमस्का-

नाप्रकरणे ज्ञानयोगप्रकरणे चाश्रवणात्
स विशेष ब्रह्मभक्तिप्रकरणे तु सहस्रशस्तछ्र-
वणात् । प्रकरणस्यार्थ नियामकत्वात् । अन-
न्यचेताः सततं यो मां स्मरतीत्यस्य तु मूर्द्धन्यया
नाड्योत्क्रमवतामर्चिरादिमार्गेण· गत्वा सविशेष
ब्रह्म प्राप्त्युक्तेः । निर्विशेष ब्रह्मप्राप्तिवादिनां
त्व मूर्द्धन्या देहान्निर्गत्यार्चिरादिना निर्विशेष
ब्रह्म प्राप्ते रसम्भ मद्याजिनापि नाड्यो क्रमतां
प्रकरणे श्रवणादुपपद्यते सविशेब्रह्म परत्वं ।

रादि भक्ति साधनों का निर्विशेष ब्रह्मोपासना प्रकरण में और ज्ञान योग प्रकरण में श्रवण नहीं है सविशेष ब्रह्म भक्ति प्रकरण में तो उपरोक्त साधनों का सहस्रशः श्रवण है प्रकरण ही अर्थ का नियामक होता है अतः यह निश्चय होता है कि अनन्य भक्ति सविशेष ब्रह्म विषया है। "अनन्य चेताः सतत" इस मंत्र से मूर्द्धन्य नाड़ी से उत्क्रमण करने वाले अर्चिरादि मार्ग से जाकर सविशेष ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, यह कहा गया है और निर्विशेष ब्रह्म प्राप्ति वादियों के लिये मूर्द्धन्य नाड़ी से भिन्न नाड़ी से देह से निकलकर अर्चिरादि मार्ग से निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्ति असम्भव है। हमारे यजन करने वाले के लिये भी मूलनाडी से उत्क्रमण करने वालेको प्रकरण में श्रवण होने से सविशेष ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

किञ्च स्मरति ध्यायत्योः पर्यायत्वात् । ध्यान विषयस्य ध्येयस्य सविशेषत्वोपपत्तेः । तेषां ज्ञेयब्रह्मविचारपराणां भगवद्भक्तोपास्यत्यक्त ध्येयब्रह्मस्मरणानां तत्स्मरणानुपपत्तेश्च तस्य तत्परत्वमेवोपपद्यते । अनन्याश्चिन्तयन्तो मामितीदं वाक्यं तु निर्विशेषवादिभिर्विशेष ब्रह्मोपासकपरत्वेन नीत्वा स्वयोगक्षेमव्यापाररहितस्य ज्ञानिनः ऐहिकयोगक्षेमौ परमेश्वर एव करोतीत्युपपादितं तदपि नोपपद्यते तत्पूर्वापरवाक्यविरोधो तदुक्तयोगक्षेमपदयोः ऐहिकार्थ

स्मृ धातु और ध्यै धातु में एकार्थकत्व होने से ध्यान का विषय जो ध्येयहै, वह सविशेष ही होसकता है और च ज्ञेय ब्रह्म के विचार करने में तत्पर ज्ञानियों को भगवत भक्तके उपास्य ध्येय ब्रह्म को स्मरण करने वाले निर्विशेष वादिया को भगवान का स्मरण उपपन्न नहीं होसकता । किन्तु ध्येय ब्रह्म का स्मरण ध्याता भक्तको ही होसकता है, अनन्याश्चिन्तयन्तमाम्'' इस वाक्य को निर्विशेष ब्रह्मवादियों ने सविशेष ब्रह्म विषयक उपासना परक मानकर अपने योग क्षेमके व्यापार से रहित ज्ञानिके लिये ऐहिक योगक्षेम परमेश्वर ही करते हैं यह प्रतिपादन जो किया है वहभी उपपन्नहीं होसकता, पूर्वा पर वाक्य का विरोध है और निर्विशेष ब्रह्मवादियोंके मतमें योग क्षेम पदका

परत्वानुपपत्तेःकुतः । तत्पूर्वतनस्य "त्रैविद्या मांसोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्टा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। तेपुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नंति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकं विशंति। एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्नागतागतं कामकामालभन्ते, इत्यस्य सकामयागानुष्ठाननिष्ठपरलोक गतिवर्णनपरत्वात् । तदुत्तरतनस्यं च "येप्यन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विता" इत्यारभ्य, नतुमामभिजानंति तत्वेनातश्च्यवन्ति । ते देवान् देवयज्ञो यांति त्यन्तस्य वाक्य स्य देवता न्तरभक्त परलोकगतिवर्णनपरत्वात् तन्मध्य

थैहिकार्थ करनाभी अनुपपन्न है। क्योंकि उसे पूर्व तन "त्रयीविद्या माम् सोमपान" इत्यादि वाक्य सकाम याग का अनुष्ठाः करने वाले के लिये परलोक गति का वर्णन किया गया है। और उसके बाद उत्तर वाक्य मे येप्यन्य देवता भक्ता" इससे आरंभ कर देवान् देव यज्ञोयन्ति यहां तक के वाक्यमे देवतान्तर भक्त का पर लोक गति वर्णन किया जाता है और दोनों के मध्यगत अनन्याश्चिन्तयन्तोमाम्" इस मंत्रसे पर देवता

गतस्य अनन्याश्चिन्तयन्तो मामित्यस्यापि परदैवतभक्त परलोकगतिवर्णनपरत्वोपपत्त्या तद्वत् योगक्षेमपदयोः पारलौकिकत्वोपपत्त्या ऐहिकत्वानुपपत्तेः । किञ्च सकामयागपराणां देवतान्तरयाजिनां च निकृष्ट दर्शनत्व ततदुपासनात्यागाय प्रथमानां स्वर्गाच्च्युतिं द्वितीयानां स्वेष्टदेवस्थानाच्च्युतिं दर्शयित्वा तेषां सर्वेषां स्वोपासनाप्रवृत्तये स्वभक्तानां स्वस्थानात्च्युतिं निर्दिष्टवान् तेषां योगक्षेमं वहामीत्यनेन मत्प्राप्ति लक्षणं योग मपुनरावृत्ति

भक्तका परलोक यात्रा का वर्णन किया गया है इस ने अनन्याश्चिन्त यन्तो माम्" इस वाक्य गत" योगक्षेमपद का पारलौकिकही अर्थ होता है, ऐहिकार्थकत्व नहीं है ।

दूसरे एक बात यह भी है, सकाम याग करने वाले और देवतान्तरोंका यजन करने वालोंको निकृष्ट दिखाकर उन उपासना का त्याग करने के लिये सकामयाग करने वालोंकी स्वर्ग से पतन को दिखाकर और देवतांतर भक्तोंके स्वेष्ट देवके स्थान से पतन दिखाकर उन सबको अपने उपासना में प्रवृति के लिये अपने भक्तोंकी अपने स्थान से कभी भी पतन नहीं होता ऐसा भगवानके योग क्षेमं वहाम्यहम्" इस पदसे किया है । क्योंकि योग माने हमारी प्राप्ति और अपुनरावृति को क्षेम कहते हैं यही

लक्षणां क्षेमं च वहामीत्यर्थं एतच्च तदनन्तरं स्फुटयामास यान्ति मद्याजिनोपि मामिति तदेव योगक्षेमपदयोः पारलौकिकत्वोपपत्त्या ऐहिकत्वानुपपत्तेर्नत्वदभीष्ट सिद्धिः। यदित्व-क्षरोपासकस्य ज्ञानिनः पारलौकिकयोगक्षेमं वहति परमेश्वर इत्युच्यते तदा सविशेषब्रह्मभक्त मुक्तिवदक्षरपरमुक्तेरपीश्वराधीनत्वोपपत्तेः पुनः स्त्वदभीष्टहानिरित्युभयतपाशारज्जुः त्वयाद्वाद शाध्यायव्याख्याने ईश्वराधीनमुक्तिपरमेश्वर-भक्तेभ्यः स्वाधीनमुक्तित्वेनाक्षरोपासकानां दर्शितोत्कृष्टत्वस्यात्रव्याघातात् किञ्च भक्ति-

---

बात "यान्मिमद्याजिनोपिमाम" इस पद से भगवान ने स्पष्ट किया है। अतः योग क्षेम पद का पारलौकिक अर्थ होने से ऐहिकार्थ कथमपि नहीं हो सकता। इससे आपके अभीष्ट की सिद्धि नहीं होगी।

यदि अक्षरोपासक ज्ञानी की पारलौकिक योग क्षेम का वहन परमेश्वर करते हैं, यह यदि आप कहते हैं। तो सविशेष ब्रह्म भक्त की मुक्ति की तरह से अक्षरोपासक की मुक्ति भी ईश्वराधीन ही हुई तो भी आपके अभीष्ट की सिद्धि नहीं हुई प्रत्युत हानि हुई, इसलिये दोनों तरह से बंधन की रज्जु है।

प्रकरणगतत्वादपि न तस्य वाक्यस्याक्षरनिष्ट परत्वमुपपद्यते। तथाहि यदुक्तं नवमाध्यायोप- क्रमेप्रत्यक्षावगमंधर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययमिति ज्ञानविज्ञानयोः प्रत्यक्षावगमत्वादिकत्वमुपपद्यते कुतत्वं तस्य भगवत्कीर्त्तनादिनिष्ठत्वावगमात् तद्गतोर्ज्ञानविज्ञानयोरपितद्भक्तिविषयकत्वतदग्रत नवाक्यानां कीर्तनादिभक्तिपरत्वावगतेः "महा त्मानस्तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिता॥ भज न्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वाभूतादिमव्ययम्। सततं कीर्तयन्तो मां यतंतश्चदृढव्रताः। नमस्यंतश्च

भक्ति के प्रकरणमें वह वाक्य है इससेभी इस वाक्य को अक्षर निष्ठ परत्व उपपन्न नहीं होसकता है, जैसे कि हम बताते हैं नवम अध्यायके उपक्रममें-प्रत्यक्षाऽवगमम्" इस श्लोक से ज्ञान और विज्ञान को प्रत्यक्षका अवगमक है यह प्रतिपादन किया गया है। क्योंकि उसकी भगवत कीर्तनादिकी निष्ठाका बोध कराया गया है अतः ज्ञान विज्ञानकोभी भगवद्भक्ति विष- यता आती है आगेके वाक्यभी कीर्तनादि भक्ति काही बोधन करते हैं। हेपार्थ! दैवी प्रकृतिको आश्रित महात्माजन अनन्य मनसे समस्तभूतोंका आदि भूत अव्यय हम को जानकर भजते हैं निरंतर हमारा कीर्तन करते हैं दृढ़ व्रत होकर हमारी प्राप्ति काही यत्न करते हैं भक्ति पूर्वक हमको नमस्कार करते हैं ऐसे

मां भक्तया नित्ययुक्ता उपासतेइतीत्यादिनां एवम् कीर्तनादिपराणां योगक्षेममहं वहामीत्याह । तत्रैव "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहमिति इदानीं स्वभक्तेः प्रत्यक्षावगमत्वादिके निर्दिशति "पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः,, अस्याः पत्रादिसमर्पणरूपायाः भक्तेः प्रत्यक्षप्रमाणविषयत्वात् । तथा यो यस्मै

ईनित्ययुक्त हमारी उपासना करते हैं। इन वाक्यासे कीर्तनादि भक्ति सिद्ध होती है। इसलिये कीर्तन में परायण भक्तोंका हम योग क्षेम वहन करते हैं इस बातको उसी जगह "अनन्यतया हमारा चितवन करते हुए जो जन सर्वतः हमारी उपासना करते हैं उन नित्यही अभियोगी भक्तों के योग क्षेमको हम वहन करते हैं" इस अंशसे भगवान् ने बताया है। अब इस बातको भगवान् बताते हैं कि हमारे भक्त हमारी भक्ति सेही हमको प्रत्यक्ष कर लेते हैं जैसे "पत्रं पुष्पं फलं तोयम्" पत्र पुष्प, फल, जल, को जो कोई हमको भक्तिमे अर्पण करता है, भक्तिसे दिये हुए उस पदार्थ को मैं प्रयत्न पूर्वक सेवन करता हूं। इस पत्रादि समर्पण रूप भक्ति को प्रत्यक्ष प्रमाण विषयता है; अर्थात् यह पत्रादि समर्पण रूपा भक्ति प्रत्यक्षही है और प्रत्यक्ष के लियेही

निः कामेन पुष्पादिकं ददाति न च ततः किंचि-
द्वांछति सतदुपर्य्यवश्यमेवप्रसीदतीति लोके-
पिदर्शनात् । पुष्पादिसमर्पणेन परमेश्वरोवश्य-
मेवप्रसीदतीतिप्रत्यक्षमीश्वरप्रसादात्मकमवगमं
फलं यस्यतत्प्रत्यक्षावगमं तथा तत् पुष्पादिसम
र्पणस्य परमधर्मत्वाद्धर्म्यत्वमपि सिध्यति एतस्य
पुष्पादिसमर्पणस्यसविशेषब्रह्मचिन्तनस्य च तच्छ्र-
वणकीर्तनादेश्च सुखमनुष्ठेयत्वे न सुसुखं
कर्तुमित्युक्तमप्युपपन्नं भवति तथा तत्फल
स्य भगवत्प्राप्त्यात्मकस्याविनाशित्वादव्यय

प्रत्यक्ष वस्तु दिये जायेंगे। तथा जो जिसके लिये निष्काम भाव से पुष्पादिको समर्पण करता है और उससे कुछ चाहता नहीं है, वह उस प्रतिगृहीता दाता के ऊपर अवश्य प्रसन्न होता है यह लोकमेंभी देखा गया है, इसलिये पुष्पादिके अर्पण करनेसे पर-मेश्वर अवश्यही प्रसन्न होंगे। यह ईश्वर का प्रसाद रूप फल प्रत्यक्षहीहै जोकि प्रत्यक्षसे ज्ञात होताहै तथा वह पुष्पादि समर्पण परम धर्म होनेसे धर्म्यत्वभी सिद्ध होता है। यहपुष्पादि समर्पण तथा सविशेष ब्रह्मचिन्तन और श्रवणकीर्तनादि को सुखमय अनुष्ठान करने योग्य भगवानने बताया है। इस लिये सुसुखंकर्त्तुं, यह जो कहा गया है सो भी उपपन्न होता है तथा भगवत् प्राप्तिरूप उसके फल के विनाशी न होनेसे अव्ययता

त्वमप्युपपद्यते तस्य न चेदं ज्ञानस्योपपद्यते तस्य प्रत्यक्षप्रमाणाविषयत्वात्। ज्ञानफलस्य ज्ञानवृतेः परमानन्दावाप्तेश्च आत्मप्राप्तेर्वा स्व संबोधत्वेनतदन्यस्याप्रत्यक्षात् न तस्य प्रत्यक्षावगमत्वमुपपद्यते नापिसुसुखानुष्ठेयत्वं ज्ञान योग प्रकरणे दुरनुष्ठेयानां मनोनैश्चल्यादीनां ज्ञानसाधनत्वोक्तेः द्वादशे अक्षरोपासकानां क्लेशाधिकतरत्वोक्तेश्चेत्यतो नास्य ज्ञानप्रकरणत्वमुपपद्यते किं च "मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्प-

भी सिद्ध होती है, यह बात ज्ञान की सिद्ध नहीं होती क्योंकि ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय नहीं है। और ज्ञानका फल अज्ञान की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति है। अथवा आत्माकी प्राप्ति है। इस लिये ज्ञान से बोधित अन्य पदार्थ का ज्ञान से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। इसलिये ज्ञान प्रत्यक्ष का अवगमक नहीं है। और सुखपूर्वक अनुष्ठेय भी नहीं है, क्योंकि ज्ञान योग प्रकरण में दुःख से अनुष्ठान करने योग्य निश्चलादिक मनआदिका ज्ञान के साधन तथा प्रतिपादन किया गया है। द्वादशाध्याय में अक्षर की उपासना करने वालोंके लिये क्लेश अधिकतर कहा गया है। अतः यहां पर ज्ञानका प्रकरण नहीं है।

शयण,, इतिभक्तिपरवाक्येनोपसंहाराच्च नास्य तदुपपद्यते इतिभक्तिप्रकरणगत त्वेन भक्ति-परत्वोपपत्तेश्च तदन्तर्गतस्य चिन्तनपदस्य ध्या-नपर्यायस्य सविशेष ब्रह्मभक्ति लिङ्गत्वेनापि ना-नन्यचिन्तनवचनस्याक्षरोपासकपरत्वमुपपद्यते किंचाक्षरोपासकैरपिसविशेषब्रह्मभक्त परत्वेन स्वीकृतं "यदनन्येनैवयोगेन मां ध्यायंत उपासते तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसार सागरात्। भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसामितीदं वाक्यं तेन सहानन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पयु-

दूसरे "मन्मनाभव" इस भक्ति पर वाक्य मेंही प्रकरण का उपसंहार किया गया है इस लिये भी इसको भक्ति परत्व ही माना जायगा, इसलिये भक्ति प्रकरण में इसका प्रतिपादन होने से भक्त परत्वही है उसके भीतरगत ध्यान पर्यायवाचि चिन्तन पदका सविशेष ब्रह्मभक्ति बाधन करने से भी अनन्य चिन्मय वचन को अक्षर उपासक परत्व नहीं हो सकता दूसरे अक्षरो-पासकों ने भी "अनन्ये नैव योगेन" अनन्य योग से जो मेरा ध्यान और उपासना करते हैं उनको मैं मृत्यु संसार सागरसे समुद्धार कर देता हूं--और हेपार्थ! हमारे में आवेशित चित्तवालों को बहुत शीघ्र उद्धार कर देता हूं"। इस वाक्य से सविशेष ब्रह्म भक्त परकही स्वीकार किया है। तथाच-इसी वाक्य के

पासते इत्यस्य तथा "अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यश" इत्यस्य चैकवाक्यतोपपत्तेरपि नानयो र्वाक्ययोरक्षरोपासक परत्वं निष्पद्यते। तत्कथमितिचेत् तत्र श्रूयमाणानां अनन्येति ध्यायन्त इति उपासते इत्येषां पदानामनयोरपि श्रूयमाणत्वेन तस्या नयोश्चैकार्थकत्वावगमात् ध्यायति चिन्तति स्मरतीनामैकार्थकत्वेन पर्याय वाचित्वाच्च किञ्चद्द्वादशोपक्रमेकृतात् एवं सतत युक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते। येचाप्यक्षर-

---

साथ "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां" अनन्य चेताः सततं,, इन दोनों वाक्यों को एक वाक्यता उपपन्न होती है। इसलिये उपरोक्त इन दोनों वाक्यों को अक्षरोपासक परत्व उपपन्न नहीं हो सकता है। किस प्रकार से उपरोक्त इन दोनों वाक्यों को अक्षरोपासक परत्व क्यों नहीं सिद्ध हो सकता है यदि यह शंका करो तो उसका उत्तर है कि उपरोक्त वाक्यों में सुने गये जो अनन्या ध्यायंते, उपासते, इन पदों का इन दोनों वाक्यों में श्रवण होता है। इसलिये उस वाक्य का और इन दोनों वाक्यों की एकार्थकता है। ध्यान, चिंतन, स्मरण इन वाक्यों की पर्य्यायता शाब्दिकों ने मानी है,

किंच द्वादशाध्याय के उपक्रम में "एवं सतत युक्ता ये" इस प्रकार से सतत युक्त होते भक्त जो आपकी उपासना करते हैं

मव्यक्तं तेषांके योगवित्तमा इत्येतस्मादर्जुन प्रश्नादपि एषां सर्वेषां वाक्यानां सविशेषब्रह्मोपासकपरत्वं निष्पद्यते तदपि कथमितिचेत् उच्यते अयमर्जुनस्य प्रश्नः भगवदन्योपासना क्षरोपासना श्रवणं बिनानुपपद्यमान स्वः पूर्वतनग्रंथे द्विविधाप्युपासना भगवन्मुखोक्ताजुनेन श्रुता इति सूचयति । सा चाक्षरोपासनान्यत्राश्रूयमाणा अष्टमे यदक्षरं वेदविदो वदन्तीत्यत्र याजुनेन श्रुता तथाऽनन्योपासनापि अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति

"और जो अव्यक्त अक्षर को उपासना करते हैं उन दोनों प्रकार के भक्तों में आपके मंत से योगवित् कौन है । श्रीकृष्णजी के प्रति किये हुये अर्जुन के प्रश्न से भी इन सब वाक्यों को सविशेष ब्रह्मोपासक परता ही सिद्ध होती है । यदि सन्देह करो कि इस प्रश्न से सविशेष ब्रह्मोपासक ही सिद्ध होता है सो कैसे उसका उत्तर यह है कि यह अर्जुन का प्रश्न भगवदुपासना और अक्षरोपासना के श्रवण के विना अनुपपन्न होता हुआ प्रश्न के पहिले ग्रंथ में दोनों उपासनावों को भगवान् के मुख से अर्जुन ने सुना है, यह सूचित करता है, वह अक्षरोपासना दुसरी जगह तो सुनी नहीं गई है, किन्तु अष्टमाध्यायमें यदक्षरं वेदविदो वदन्ति यहां पर अर्जुनने सुनी है । औरअनन्योपासक

नित्यशः । अनन्याश्चिन्तयन्तो मामित्यादि वाक्योक्ता तेन श्रुतेत्यवगम्यते । नच स्वसन्निहिततरे एकादशान्ते भक्त्या त्वनन्यया शक्यो-ऽहमेवं विधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप इत्युक्ता सा तेन श्रुतेति वाच्यं तत्रानन्यभक्तिलक्षणतदुपासनाप्रकारस्यानुक्तेरेतद्वाक्यमात्रं श्रुत्वा "एवं सतत युक्ताये भक्तांस्त्वाम्पर्युपासते इत्येतादृश प्रश्नस्यानुपपत्तेः । कुतः । सततोपासनपदयोस्तत्रा-

---

भक्तों की उपासना का अनन्य चेताः "अनन्यश्चिन्तयन्तः" इत्यादि वाक्यों से कई जगह अर्जुनने सुना है।

यदि यह शंका करो कि इस द्वादशाध्याय के समीप में ही एकादशाध्याय के अन्तमें भक्त्यात्वनन्यया" हे अर्जुन अनन्य भक्ति से ही इस प्रकार से मैं जानने और देखने योग्य हूं। हे परंतप यथार्थ भावसे प्रवेश भी अनन्य भक्ति सेही कर सकते हैं, यह जो उपासना उसने सुना है। इसीका अनन्योपासना मानकर उसने प्रश्न किया है, यह कहो तो नहीं कह सकते हैं क्यों कि वहां अनन्य भक्ति का लक्षण और अनन्य उपासना प्रकार नहीं कहा गया है केवल ऐसे वाक्य को ही सुनकर "एवं सततयुक्ता" इस प्रकार का प्रश्न हो नहीं सकता है।

क्योंकि सतत और उपासना पदका वहां श्रवण नहीं है

श्रवणात् । तस्मात् अनन्य चेता, अनन्याश्चि न्तयन्त इत्यत्र तदुपासना प्रकारं श्रुत्वा तत्रैव सततं पद मुपासते इति पदं च श्रुत्वार्जुनेन तादृशः प्रश्नः कृतः एवं सततयुक्ता ये त्वा-मुपासते इत्ययमितीत्यवगम्यते भक्तयात्व नन्ययेत्येतद्वाक्यं तु तदुद्देशेनं तत्र भगवत्त स्वबोधकत्वादिविधायकतया तत्फल प्रकाशकं श्रुतं । अनन्यचेताः इत्यत्राऽनन्यपदमुपासना पदं चानन्यभक्त्या त्वनन्ययेतिवाक्येन भक्तिपदा-भ्यामनूद्य भगवत्स्वरूपयाथात्म्यदर्शकत्वादि-तद्धर्मप्रकाशनात् स्वाभाविकस्य तद्धर्मस्य विधा-नानुपपत्तेः) किञ्च भक्तया त्व नन्येतिवचन-स्यानन्यभक्तिलक्षणापेक्षत्वेन किं लक्षणा-

---

इसलिये अनन्य चेता और अनन्याश्चिन्तयन्त इन दोनों वाक्यों के उपासना के प्रकार को सुनकर और वहीं पर सततं उपासते इसपद को भी सुनकर ऐसा प्रश्न अर्जुन ने किया है।

तथा "भक्तयात्वनन्यया।" यह वचन अनन्यभक्ति लक्षणसापेक्ष होने से भक्ति का लक्षण क्या है ऐसा पूछने पर अनन्य चित्त के सतत भगवद्‌र्पण ही भक्ति का लक्षण है' इसी तात्पर्यसे अनन्य

नन्याभक्ति रित्येवं पृष्टे अनन्यचेतस्तया सात-
त्येन भगवच्चिंतनमेव तल्लक्षणं । अनन्यचेता
इति अनन्याश्चिन्तयन्तः इति च द्वये बोध-
कत्वात् तद्वाक्यद्वयमेवानन्य भक्तेः सर्वथा
बोधकमतस्तद्वाक्य द्वयेभक्तिलक्षणश्रवणात् ।
भक्त्यात्वनन्ययेत्यत्र भगवत्स्वरूपयाथात्म्य-
दर्शकत्वादितद्धर्मश्रवणाच्चैतादृशस्याज्ुनप्र-
श्नस्य प्रवृत्तिरिति मन्तव्यं तस्यार्जुनंप्रश्नस्योत्तर-
तया यान्युक्तानि भगवदुपासकविषयाणि अक्ष-
रोपासकविषयाणि च "मय्यावेश्य मनो ये मां

चेताः और अनन्याश्चिन्तयन्तः इन दोनों जगह बोधन किया गया है, अतः ये उपरोक्त दोनों वाक्य अनन्य भक्ति के ही लक्षण जानना चाहिये, 'भक्त्यात्वनन्यया' यहांपर भगवत्स्वरूप को यथार्थतया दिखाने वाले धर्म का श्रवण है । ऐसा समझ कर ही अर्जुन के प्रश्न की प्रवृत्ति है, यह जानना चाहिये । अर्जुनके प्रश्न के उत्तरमें कहे गये भगवत् उपासक विषयक और अक्षरोपासक विषयक निम्नलिखित वाक्य भगवान के प्राप्ति के उपाय होने से समस्त मुमुक्षुओं को अनुष्ठान करने योग्य हैं, ऐसा प्रकाशन किया है "तत्रेति, तद्यथा मय्यावेशित्यादिक, अर्थात् हमारे में मनको लगाकरके परम श्रद्धा से नित्य युक्त होकरके जो हमारी उपासना करते हैं वे ही हमारे मतसे उत्तम

नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।२। ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते। सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवं। संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः। ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः।४।क्लेशोधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।५। ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते।६। तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्। भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित-

---

योगी कहे जाते हैं। "और जो निर्देश रहित अव्यक्त सर्वत्र व्याप्त अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, अक्षर की सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को रोककर सब जगह समान बुद्धि होकर उपासना करते हैं सर्व भूतों के हित करने में तत्पर वे अक्षरोपासक भी हमही को प्राप्त होते हैं। परंच उन अव्यक्त में उपासक्त चित्त-वालों को क्लेश अधिकतर होता है क्यों कि देहधारियों को अव्यक्त की गति दुख से प्राप्त होती है "और जो सम्पूर्ण कर्मों को हमारे में न्यास करके हमारे परायण होकर अनन्य योग से हमारा ध्यान करते हैं हमारी उपासना करते हैं, ऐसे उन हमारे में आवेशित चित्त वाले भक्तों को मैं मृत्युरूप संसार सागर से शीघ्र ही उद्धार कर देता हूं। 'हमारे में ही मनको

चेतसां । ७ । मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय । निवसिष्यसि मय्येव अतऊर्द्ध्वं न संशय इत्यादीनि वाक्यानि । तत्र मय्यावेश्य मन इति वाक्येन स्वोपासकानां युक्ततमत्वमुक्त्वातदुपपत्तये येत्वक्षरमनिर्देश्यमित्यादिभिरक्षरोपासनायाः क्लेशोधिकतरसाध्यत्वेन तत्फलस्य दुखमवाप्त्या चायुक्ततमत्वसूचनद्वारा तस्या अननुष्ठेयत्वं सूचयित्वा तदनन्तरं ममुक्षूणां सर्वेषां स्वोपासनायां प्रवर्तयितुं ये तु सर्वाणि कर्माणीत्यादिना सविशेषब्रह्मचिन्तनस्य सुखसाध्यत्वे-

---

लगावो, हमारेमेंही बुद्धिका निवेश करो ऐसा करनेके बाद आप हमारे में ही सतत वास करने वाले हो जावोगे इसमें सन्देह नही है येही भगवत उपासक और अक्षरोपासक परक वाक्यहै इनवाक्यों में मय्यावेश्य मनः" इस वाक्यसे अपने उपासकोंको भगवान ने युक्तनम कहा है उसकी उपपत्तिके लिये "येत्वक्षर" इत्यदिक वाक्य से अक्षरोपासना को अधिकतर क्लेशसे साध्य बताकर उस उपासना के फल को भी दुखसे मिलना बताकर इस उपासनाको अत्यन्त अयुक्तम की सुचना देते हुए, इसका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये, ऐसा सूचित करके तदनन्तर सब मुमुक्षुओं को अपनी उपासना में प्रवृत्त करने केलिये "ये तु सर्वाणि" इसवाक्य से सविशेष ब्रह्म चिन्तन को

न स्वोपासनाया सुखमनुष्ठेयत्वं तत्फलस्य स्वप्राप्तिरूपस्य स्वसाध्यत्वं च निर्दिश्यानंतरं मय्येव मन आधत्स्वेत्यनेन कण्ठतः स्वभक्तान् प्रति अवश्यं स्वभक्त्यनुष्ठानमाज्ञाप्य निवसिष्यसि मय्येवअत ऊर्ध्वं न संशय इत्यनेन एवं भूतानां मद्भक्तानामस्यैवदेहस्यान्तेऽवश्यं मत्प्राप्तिर्भविष्यतीति प्रतिज्ञाय स्वभक्तेः सुखमनुष्ठेयत्वेन न चिरात्समुद्धर्ता अत उर्ध्वं निवसिष्यसीत्याभ्यां प्रारब्धावसानेऽवश्यं भगवत्प्रापकत्वेन च समस्तमुमुक्ष्वनुष्ठेयत्वं प्रकाशयामास। तदेवमनया-

सुख साध्य होनेसे हमारी उपासना सुखमय अनुष्ठान करने योग्य है, और उसका फल हमारी प्राप्ति रूप है, उस उपासना मे हमही साध्य हैं ऐसा निर्देश कर बाद को मय्येव मन आधत्स्व, इस वाक्य से अपने कंठ रवसे अपने भक्तों के प्रति अवश्य करके हमारी भक्ति का अनुष्ठान करना चाहिये ऐसी आज्ञा देकर निवसिष्यसि मय्येव" इस वाक्यसे एवंभूतहमारे भक्तों को इसी देह के अन्त में अवश्य करके हमारी प्राप्ति हो जावेगी, ऐसी प्रतिज्ञा करके अपनी भक्ति का सुखमय अनुष्ठान होने से, "नचिरात्समुद्धर्त्ता, अत उर्ध्वं निवसिष्यसि इन" दोनों वाक्यों से प्रारब्ध के अन्त में अवश्य करके भगवत्प्रापक होनेसे समस्त मुमुक्षुओंको अनुष्ठान करने योग्यहै। ऐसा बता-

पिरीत्या अनन्यचेताः सततं, अनन्याश्चिन्तयन्त इत्येवमादीनां भगवद्भक्तपरत्वमुपपद्यते। तत्कथमिति चेत् अनन्यचेता इत्यादीनामर्जुनकृतप्रश्नमूलभूतानां तथा "मय्यावेश्य मनःपार्थ ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः। अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त इत्यादीनां सविशेषब्रह्मोपासकपरत्वेन निश्चितानां तत्प्रश्नोत्तरभूतानां चैकार्थपरत्वोपपत्तेः उभयवादिनिश्चितसगुणब्रह्मोपासकपरत्वेनानन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते इत्यनेकवाक्यतामात्रद्वारा तयोः भगवद्भक्तपरत्वं तु पूर्वमेवोपपादितमित्य

या गया है। इस रीति से भी "अनन्य चेता सततं', 'अनन्याश्चिन्तयन्त" इत्यादि वाक्यों को भगवद्भक्तपरता सिद्ध होती है। यदि कहो कि इन वाक्यों को भगवंत् परता कैसे सिद्ध होती है तो यहां अनन्य चेता इत्यादिक अर्जुन के किये-गये प्रश्न के मूल भूत वाक्यों का तथा मय्यावेश्य मन पार्थ" येतु सर्वाणि कर्माणि,' इत्यादिक वाक्यों का सविशेष ब्रह्म उपासक परतया निश्चित प्रश्न और उत्तर भूत वाक्यों को एकार्थ परता सिद्ध होती है उभय वादी से निश्चित सगुणब्रह्म

त्वमिति विस्तरेण। अत्र यस्याक्षरकूटस्थशब्द वाच्यस्योपासना निर्दिष्टा ये त्वक्षरमनिर्देश्यमित्यादिना स तुरीयावस्थास्थो जीवो भवितुमर्हति न तु निर्विशेषं ब्रह्म कुत इतिचेत् यान्यत्र श्रूयन्ते अनिर्देश्याचिन्त्यादीनि तद्विशेषणानि तेषामेव मांडूक्याद्यासूपनिषत्सु तुरीयावस्थास्थकूटस्थाक्षर शब्दाभिधेयप्रकरणे श्रवणात्। किञ्चात्रापि पंचदशेक्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते। उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तम इति

उपासक परक,, अनन्ये नैव योगेन' इस वाक्य के साथ एक वाक्यता के द्वारा उपरोक्त दोनों वर्गों को भगवद्भक्त परत्व ही उपपन्न होता है यह हम पहले भी प्रतिपादन कर चुके हैं, अब हम इस प्रसंगको यहीं छोड़ते हैं विस्तारकी आवश्यकता नहीं है।

यहां पर जिस अक्षर, कूटस्थ, शब्द वाच्य की उपासना "यत्वक्षरमनिर्देश्यम्" इस करके कही गई है वह तुरीयावस्था में स्थित जीव हो सकता है, निर्विशेष ब्रह्म नहीं हो सकता है क्योंकि यहां अनिर्देश्य अचिन्त्यादिक जो विशेषण सुने गये हैं वे माण्डूक्यादिक उपनिषदों में तुरीयावस्था में स्थित और कूटस्थ अक्षर शब्द से कहे गये के प्रकरण में सुने

स्वस्मान्निकृष्टत्वं निर्दिष्टमतः कूटस्थाक्षरशब्द-वाच्योजीवो भवितुमर्हति, श्रीकृष्णादुत्कृष्टत्वेन स्वीकृतस्य निर्विशेषस्य ब्रह्मणस्ततो निकृष्टत्वानुपपत्तेः। एवं षष्ठोक्तज्ञानयोगप्रकरणस्य द्वादशोक्ताक्षरोपासनप्रकरणेनैकार्थ्यंतया तस्यापि तुरीयावस्थास्थजीवपरत्वमुपपद्यते। तत्रैवात्मसंस्थं मनः कृत्वेत्यात्मपदश्रवणात्। तेनैकवाक्य वाक्यतयासुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तंसुखमश्नुते इत्य-स्यात्रत्यो ब्रह्मशब्दोपि जीवपरत्वेन भवितव्यः। ननु तुल्ययुक्तात्मशब्दस्य ब्रह्मपरत्वे

गये है। इसलिये तुरीयावस्थाजीव परक ही है। १५ वें अध्याय में "क्षरः सर्वाणि भूतानि, यस्मात्क्षरमतीतोऽहं, इत्यादि वाक्यों में अपने से निकृष्टतया अक्षर पद वाच्य का निर्देश किया गया है। अतः कूटस्थ अक्षर शब्द वाच्य जीवही हो सकता है, श्रीकृष्णजीसे उत्कृष्टतया स्वीकृत निर्विशेष ब्रह्मको श्रीकृष्णजी छोटापन उपपन्न नहीं हो सकता है। इस प्रकार षष्ठाध्याय में कहे गये ज्ञानयोग प्रकरण की द्वादशाध्याय में कहेगये अक्षरो-पासना प्रकरणके साथ एकार्थकता होनेसे ज्ञानयोग प्रकरणभी तुरीयावस्था जीवपर कही है, वहीं पर तुरीयावस्था जीवपर कही आत्मपद का श्रवण किया गया है, अतः उस वाक्य का ब्रह्म शब्दभी जीवपरक ही है।

मुपपाद्यास्ययोगप्रकरणस्यब्रह्मपरत्वं मान्य मिति चेन्न । प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमं । उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषमित्यस्य वाक्यस्य विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूत इत्यनेन प्राप्तप्रत्यगात्मपरतयानिश्चितेनैकार्थ्यादत्र श्रुतस्य ब्रह्मशब्दस्य जीवपरत्वनिश्चयात् । किञ्च योगिनामपि सर्वेषा-

अब सन्देह यह होता है कि जिस उक्ति से आपने इस प्रकरण को जीव परक माना है उसी युक्तिसे आत्म शब्द को ब्रह्मपरक मानकर इस योग प्रकरण को ब्रह्मपरक ही मानना चाहिये। सो नहीं हो सकता है क्योंकि "प्रशान्त मनसं" अर्थात् प्रशान्त मनवाले इस मार्ग को उत्तम सुख मिलता है, इस वाक्य का "विमुच्यनिर्मम:" निर्मानी विमुक्त होकर शान्त पुरुष ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है इस वाक्य के साथ जोकि प्रत्यगात्मपरतया निश्चय हो चुका है उसके साथ एकार्थकता होने से यहांपर सुना गया ब्रह्म शब्द जीवपरकही है यही निश्चय समझना चाहिये।

किंच योगिनामपि सर्वेषाम्" इसवाक्यसे षष्ठाध्यायमें कहे गये योग से सिद्धों के लिये अपर्ना भक्ति योगमे प्रवृत्त कियाहै इसेभी यह ब्रह्म परक नहीं है यही सिद्ध होता है, निर्विशेष पर ब्रह्म अक्षर परायणों का सगुण ब्रह्म की उपासना अनु-

मित्यनेन षष्ठोक्तयोगसिद्धानां स्वभक्तियोगे प्रवर्तनादपि नास्य परब्रह्मपरत्वमुपपद्यते निर्विशेषपरब्रह्मपराणां सगुणब्रह्मोपासनानुष्ठानायोग्यात्। किञ्च क्षरोपासनाविषयोऽर्जुनप्रश्नोऽप्यन्यथानुपपद्यमानोऽस्मिन् प्रकरणे स्वविषयमनुपलभ्य परिशेषादस्यैव योगप्रकरणस्याक्षरोपासनाप्रकरणमुपपादयति। किञ्च येत्वक्षरमनिर्देश्येत्यादिवाक्ये क्षरोपासनाप्रकारश्रवणेनास्य वाक्यस्याक्षरोपासनानुवादकत्वमात्रनिश्चयेन षष्ठोक्तयोगप्रकरणस्यैव तदुपासनाविधायकत्वमुपपद्यते,

---

ष्ठान करने की अयोग्यता हो है। अक्षरोपासना विषयक अर्जुन का प्रश्नभी दूसरे प्रकार से उत्पन्न न होकर प्रकरण में अपने विषयको न प्राप्त करके परिशेष से इसी योग प्रकरणके अक्षरोपासना प्रकरण का उपपादन करता है।

किंच "येत्वक्षरमनिर्देश्य" इत्यादि वाक्योंमें अक्षरोपासना के प्रकार का श्रवण न होने से इसी वाक्य का अक्षरोपासना के अनुवादक वाक्य का निश्चय करके षष्ठाऽध्यायमें कथित योग प्रकरण को भी अक्षरोपासना विधायक माना जायगा, क्योंकि "यतो यतो निश्चरति" अर्थात् अस्थिर चचल मन जिधर२ जाय उधर २ से उसका नियमन करके आत्मा में वशीभूत करे, आत्मा में मन को स्थिर करके कुछ

यतोयतोनिश्चरति मनश्चंचलमस्थिरं । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ६ । २६ ॥ आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् इति तत्रैव नयेत्, न चिंतयेदित्यादिविधिप्रयोगश्रवणात् । ननुश्रीकृष्णादपकृष्टत्वेन निर्दिष्टस्याक्षरस्य नात्रोपासनानिर्दिष्टा किन्तु परस्तस्मातुभावोन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः । यस्तु सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति । अव्यक्तोक्षर इत्युक्तस्याव्यक्तात्परस्याक्षरस्य यः श्रुतौ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्नपरं किंचि-

---

भी चितवन न करे । इन वाक्यों में ही "नयेत् चिन्तयेत्" इत्यादिक विधि वाक्यों का श्रवण है । अतः यही प्रकरण विधि प्रकरण माना जायगा :

अब यहां यह सन्देह करते हैं कि कृष्णजी से छोटा करके निर्देश किये गये, अक्षर की उपासना यहां पर नहीं बताई गई है किन्तु-परस्तस्मात्तु भावोन्यो" अर्थात् उसभावसे अन्य अव्यक्त सेभी अव्यक्त सनातन परे है जोकि सबभूतों के नाश होजानेपरभी नष्ट नहीं होता इस करके कहेगये अव्यक्त से परे अक्षर की उपासना बताई है श्रुति में भी "महत परम व्यक्त" अर्थात् महान् से परे अव्यक्त है, अव्यक्त से परे पुरुष है पुरुष से परे कुछ नही है, वही काष्ठा है और वही परम गति है इसकरके

त्सा काष्ठा सा परा गतिरित्यस्यामव्यक्तात्परस्थितित्वेन परपुरुषत्वेनोक्तः यस्मात्परत्वमन्यस्य निरस्तं श्रुत्यातस्यातयोरक्षरपुरुषशब्दवाच्ययोरव्यक्तात्परत्वसाम्येनैकत्वोपपत्तेः । यश्च सर्वपरपुरुषशब्दवाच्यः सर्वोत्कृष्टः यद्वै अक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति इत्यत्र अक्षरत्वेन श्रूयते तस्येति चेन्न महानव्यक्ते लीयते अव्यक्तमक्षरे लीयतेऽक्षरं तमसि लीयते तमः परे देवे एकी भवति तथा अक्षरात्परतः परः इत्यादि श्रुतिषु अव्यक्तात्परादप्यक्षरात्परदेवस्य परत्वश्रवणात्

अव्यक्त से भी परात्परतया स्थित परम पुरुष शब्द से कहेगये की उपासना बताई गई है । जिसलिये इसश्रुती में अन्य के परत्व का निषेध किया गयाहै, अक्षर और पुरुष शब्द वाच्य को अव्यक्त से परत्व की साम्यतासे एकत्वभी उपपन्न होताहै । इसलिये अक्षर पदसे यहां परम पुरुषही लिया जायगा । और जो परम पुरुष वाच्य सबसे उत्कृष्ट कहा गया है, वही एतद्वै अक्षरं गार्गि" अर्थात् हे गार्गि इस अक्षरको ब्राह्मण लोग अभिवादन करते हैं, यहां पर अक्षर शब्द से सुना गया है, उसीकी उपासना यहां विहित है सो नहीं कह सकते ? क्योंकि महान् अव्यक्त में लीन होता है, अव्यक्त अक्षर में लीन होता है, अक्षर तमस में लीन होता है और तमस पर देवता में एकीभूत हो

अव्यक्तात्परस्याप्य क्षरस्य जीवोत्वपपत्तेः तदनुरोधेनाव्यक्तात्पुरुषः पर इत्यत्र व्यक्तोऽक्षरइत्युक्तस्याक्षरपर्यायस्याव्यक्तशब्दस्य प्रधानवाचकस्याव्यक्तशब्दस्य च समानरूपत्वेनैकीकरणादव्यक्तशब्देन प्रधानाक्षरयोर्द्वयोरपि बोधात् द्वयोरपि परत्वं पुरुषस्योपपद्यते। अथवा अव्यक्तादित्यत्र सारूप्यात् तंत्रेण द्वयोरव्यक्तयोरुपादानात् प्रधानाक्षराणां परत्वं पुरुषस्योपपद्यते। तस्य पुरुषशब्दस्य वाच्योयं श्रीकृष्णः येनाक्षरात्परत्वमात्मन उक्तं अक्षरादपि चोत्तम इति, येन पुरु-

---

जाता है॰॰पुनः दूसरा वाक्य का अर्थ अक्षर से भी परे पर पुरुष है इत्यादिक श्रुतियोंमें अव्यक्त से परे अक्षर, अक्षर से परे पर देवताका परत्व सुनाजाता है। इसलिये अव्यक्त से पर अक्षरकी जीवसंज्ञा उपपन्न होती है। इसीके अनुरोधसे "अव्यक्तात्पुरुषः परः" (अव्यक्तसे परे पर पुरुष है) यहाँ पर अव्यक्तोक्षर इत्युक्तः (अव्यक्त को अक्षर कहते हैं) अव्यक्त अक्षर का पर्यायवाची शब्द है। अतः अक्षर के पर्याय वाची अव्यक्त शब्द का और प्रधान वाचक अव्यक्त शब्द का समान रूप होने से एकीकरण करने पर अव्यक्त शब्द से प्रधान और अक्षर दोनों कोही बोध होते हैं अतः परम पुरुष दोनों से परे हैं। यह सिद्ध होता है अथवा "अव्यक्तात्पुरुषः परः" यहांपर सारूप्य होनेसे तंत्र

षान्न परं किंचिदिति श्रुत्यैव स्वस्मात्परत्वमन्यस्य निषेधितं मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनञ्जय इति। तदेवं पुरुषपरश्रुतेः श्रीकृष्णपरवाक्यानां चैकार्थ्यात्, पुरुषकृष्णशब्दयोरेकवाचकत्वोपपत्तेः। श्रुत्या पुरुषादन्यपरत्व निषेधात् तस्यैव परकाष्ठत्वपरगतित्वनिर्देशाच्च। एतद्वै अक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति इत्युक्तस्याक्षरस्यापि ततः परत्वानुपपत्तेः। योगवृत्या तस्यैवाक्षरशब्दस्य श्रीकृष्णवाचकत्वोपपत्तेः, तस्यैव विश्वरूपे आकाशादीनामेतत्वयोतत्वस्मृतेश्च अनिर्देश्य वपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक्।

के द्वारा दोनोंही अव्यक्तोंका उपादान है अतः प्रधान और अक्षर से परे पुरुष है यह उपपन्न होता है।

इस पुरुष शब्दके वाच्य यह श्री कृष्णजी ही हैं जिन्होंने अक्षर से परे अपने को बताया है, "अक्षरादपिचोत्तम" इस श्लोक से और जिन्होंने पुरुषात् न परं किंचित्) (पुरुष से परे कुछ नहीं है) इस श्रुति की तरह से मत्तः परतरं नान्यत्० (हे धनजय। हमसे परे कोई चीज नहीं है) इस श्लोक से अपने से परे दूसरे का निषेध किया है इससे पुरुष प्रतिपादिका श्रुतियों से श्रीकृष्ण प्रतिपादक वाक्यों के साथ एकार्थ होने से पुरुष

अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोनंतो धनंजय, इति वि-
ष्णुसहस्रनाम्नि तद्वपुषोनिर्देश्यत्वनिर्देशात्।
तस्यापाररूपलावण्यादेः क्षणे क्षणे नवनवतया
प्रतीयमानत्वेनाद्वितीयत्वेन च चिंतितुमतएव
गृहीतुं केनापि दृष्टान्तेन निर्देष्टुं चातएव ल-
क्षयितुं चाशक्यतयां तत्रैवाचिन्त्याग्राह्यानिर्दे-
श्या लक्ष्यादिपदानां पर्यवसानत्वोपपत्तेः। एष

कृष्ण शब्दों को, एक वाचकता उपपन्न होती है श्रुति से पुरुष से अन्यका परत्वका निषेध होनेसे और उसी पुरुषको पराकाष्ठा और परगति निर्देश होनेसे "एतद्वै अक्षरं गार्गि" इस श्रुति मे कहे गये अक्षर वाच्यकोभी पुरुष से परत्व पद उपपन्न नहीं हो सकता। योगवृत्तिसे अक्षर शब्दको कृष्ण वाचकता हो भी सकती है।

अनिर्देश्य—(अनिर्देश्य शरीरवाले हैं श्रीविशिष्ट हैं अमेय आत्मा हैं महापर्वत को धारण करने वाले। हे धनंजय! विष्णु भगवान अनिर्देश्य शरीर वाले हैं और वीर अनंत हैं यह विष्णुसहस्रनाम में उनके शरीर को अनिर्देश्यतया निर्देश्य किया है, अतः उनके (श्रीकृष्णजी) अपार रूप लावण्यादिकों क्षण २ में नवीन २ प्रतीत होनेसे अद्वितीयतया चिंतन करने के लिये और किसी भी दृष्टान्त से निर्देश्य और लक्षण करने के लिये अशक्य होने से श्रीकृष्ण भगवान में ही, अचिन्त्य अग्राह्य, अनिर्देश्य अलक्ष, इत्यादि पदों की पर्यवसानता होती

गीतोपदेष्टा प्रपन्नस्यार्जुनस्य सारथ्ये स्थितः भक्तवात्सल्येनक्षणेक्षणेऽर्जुनस्यमुखंपश्यन् यथात-ञ्जयो भवेत्तथैव यतमान एवमन्येषामपि स्वभक्तानां यथा कामक्रोधादिपरमशत्रुजयद्वारा परमानन्द-प्राप्तिर्भविष्यति तथा यतिष्या गतिं सूचयति यः स एवोपनिषत्सु अक्षरादिशब्देनोच्यते नेतोऽन्यत किंचिन्निर्विशेषं ब्रह्मभवितुमर्हति यदुपासकोप्यस्यो-पासकादाधिक्यं लभेत् न च तस्योपासना कुत्रा-पि श्रूयते गीताशास्त्रे यस्यत्वक्षरस्योपासना श्रूयते अत्र तस्य श्रीकृष्णादपकृष्टतया तदुपासना-

है क्योंकि यह गीता शास्त्र के उपदेष्टा श्री कृष्ण जी प्रपन्न अर्जुन के सारथी बनकर भक्तवत्सलता से क्षण क्षण में अर्जुन के मुख को देखते हुए जिस प्रकार से अर्जुन की जय होवे उसी प्रकार का यत्न करते थे इसी प्रकार से और भी अपने भक्तों के काम क्रोधादि परम शत्रुओं के जय के द्वारा परमानन्द की प्राप्ति जि-सप्रकार से होगी वैसा यत्न अवश्य करेंगे यह सूचित करते हैं। वेही उपनिषदोंमें अक्षरादि शब्दसे कहे जाते हैं अतः इनको छोड़ कर दूसरा कोई भी निर्विशेष ब्रह्म नही होसकता क्योंकि उपा-सक उपास्य इन श्री कृष्णमे आधिक्य वाला होवे इन श्री कृष्ण से अधिक उपासना कही सुनी भी नहीं जाती है गीताशास्त्र में जिस अक्षर की उपासना कही गई है वे श्री कृष्णसे छोटे होनेसे

या अपि श्रीकृष्णोपासनातोऽपकृष्टतया जीवत्वेन सुष्ठु निर्णीतः सः तेषामक्षरोपासकानां मध्ये यः कश्चित्स्वात्मज्ञानानन्तरं भगवन्तं भजते स परभक्तिद्वारा भगवन्तं प्राप्नोति अन्ये त्वात्मानंदनिमग्नास्तिष्ठंति । तथा हि, योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान् भजते य इत्येकवचननिर्देशात् तथा "मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत" इत्यत्राप्येकवचनात्, सिद्धयोगानां प्राप्तप्रत्यगात्मयाथात्म्यज्ञानानां

उनकी उपासनाभी कृष्णके उपासनासे छोटीही है अतः अक्षरको जीवत्व वही निर्णय होता है यह पूर्णतया प्रतिपादन सिद्ध होता है

इन अक्षरोंपासकों के मध्य में जो कोः आत्मज्ञान के बाद भगवान का भजन करता है, वह परभक्ति के द्वारा भगवान को प्राप्त होता है और जो भजन नहीं करते वे आत्मानन्द में ही निमग्न बने रहते हैं, तथाहि योगिनामपि सर्वेषां०" (सब योगियों में भी हमारे में मनको लगाकरके श्रद्धापूर्वक जो हमारा भजन करता है) इसमें एक वचनका निर्देश किया है और मनुष्यणामिति (सहस्रों मनुष्योंमें कोई सिद्धि के लिये यत्न करता है और यत्न करने वाले सिद्धों में भी कोईही यथार्थ रूपसे हमको जानताहै) यहां परभी एक वचन का

कश्चिदेकः परभक्तिलाभद्वारा भगवन्तं तत्त्वतो वेत्तीति सप्तमोपक्रमे निर्दिश्य, अष्टादशान्ते इममर्थं स्फुटयामास, सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्मतथाप्नोति निबोध मे इत्यारभ्य "विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते। ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां। भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत" इत्यन्तेन। ननु यः षष्ठोक्तयोगानुष्ठानेनात्मानं प्राप्तः स एव परभक्तिलाभद्वारा भगवत्तत्त्वं ज्ञातवानित्यष्टादशे उक्त इति कथमव-

---

निर्देश करने से योगसिद्धि को प्राप्त हुए और प्रत्यगात्मा का जिनको यथार्थ ज्ञान होगया है उनके मध्यमें कोई एक पर भक्ति के लाभ के द्वारा भगवान को यथार्थ जानता है यह सप्तमाध्याय के उपक्रम में निर्देश करके अठारहवें के अन्तमें इस अर्थको सिद्धि प्राप्तो यथा ब्रह्म (सिद्धिको प्राप्त हो ज्ञानी जिस प्रकार से ब्रह्म को प्राप्त करता है सो हमसे सुनो) यहां से आरम्भ कर "यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः" यहां तक स्पष्ट किया है।

अब सन्देह यह होता है कि षष्ठाध्यायोक्तयोग के अनुष्ठान से आत्मा को प्राप्त हुआ ही पुरुष पर भक्ति के लाभ के द्वारा भगवत्तत्व को जानने वाला है, यह अठारहवें में कहा

गम्यत इतिचेत् उक्तैर्वाक्यैर्युक्तिभिश्चेत्युच्यते।
यानि योगसाधनानि एकाकी यतचित्तात्मा निरा-
शीरपरिग्रहः। युक्ताहारविहारस्येत्यादीनि षष्ठ
उक्तानि तेषां योगसाधनानां बुद्ध्या विशुद्धया
युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च। शब्दादीन् विष-
यांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च। विविक्तसेवी
लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः। ध्यानयोगपरोनि-
त्यमित्यादीनामष्टादशेपि दर्शनेनोभयत्रप्रोक्ता-
नां साधनानामैक्यावगमात्। पुनश्च षष्ठे
प्रशान्तमनसंह्येनं योगिनं सुखमुत्तमं। उपैति

गया है, यह कैसे जाना जाता है? इसका उत्तर यह है कि उक्त
वाक्यों से और युक्तियों से यह जाना जाता है। क्योंकि जो
योग के साथ में (जो योग के साधन अकेले चित्तको सावधान
कर निराशी आसन रहित संग्रह रहित .....युक्ताहार विहार...)
आदि षष्ठाध्याय में कहे गये हैं उन्हीं योगसाधनों का (विशुद्ध
बुद्धि से युक्त धैर्य से आत्मा को नियमन कर शब्दादि विषयों
को त्यागकरके रागद्वेषको दूर करके एकान्त सेवी लघु आहार
करने वाला मनवचन शरीर को स्वाधीन रखकर नित्यध्यान
योगमें तत्पर होवे। इत्यादि) अठारहवें अध्याय में भी देखने
से ज्ञात होता है कि दोनों साधनों के साथ ऐक्यता है। और
दूसरे छठे अध्याय में—प्रशान्त मनसं (प्रशान्त मन और शान्त

शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषमित्यत्र प्राप्तात्मसुखो-ज्ञानी येन ब्रह्मभूतशब्देनोक्तस्तेनैव ब्रह्मभूतशब्दे नाष्टादशेऽप्यात्मसुखं प्राप्तोज्ञानी यस्मात्प्रोक्तः, "विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयायकल्पते। ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा" इत्यत्र, तस्मादुभयत्रो-क्तसाधनैक्यनिश्चयात् षष्ठोक्तयोगसिद्ध एव परभक्तिप्राप्तिद्वारा भगवद्याथातथ्यस्वरूपं जानातीत्यष्टादश उक्तमिति निश्चीयते। किञ्च तृतीयाद्युक्तनिष्कामकर्मभिर्विशुद्धान्तःकरणः ज्ञान-योगानुष्ठानेनात्मानं प्राप्तो यः ब्रह्मभूतमक-

---

रजोगुणवाले कल्मष रहित ब्रह्मभूत इस योगीको उत्तम सुखकी प्राप्ति होती है) इसमें आत्म सुखको प्राप्त करने वाले ज्ञानीको ब्रह्मभूत शब्द से जिसने कहा है उसीने अठारहवें अध्याय में भी विमुच्य निर्ममः···इस श्लोक से आत्म सुख प्राप्त ज्ञानीको ब्रह्मभूत शब्द से ही कहा है। इससे ज्ञात होता है कि दोनों जगह साधनों की ऐकयता का निश्चय है। अतः छठवें अध्याय के योग के द्वारा सिद्ध पुरुष ही परभक्ति के प्राप्ति के द्वारा भगवान के यथार्थ स्वरूप को जानता है। यह अठारहवें अध्याय में कहा गया है यह निश्चय होता है।

किंच तीसरे अध्याय में कथित निष्काम कर्मों से जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है और जो ज्ञान योग के

ल्मषमित्युक्तः स एव स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते परामित्यारभ्य ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मे त्यन्तेनानुदित इति मूलानुवादरूपेणाप्युभयोः प्रकरणयोरैक्यावगमात् षष्ठोक्तयोग सिद्धिः कश्चिदधिकारीपरभक्तिलाभद्वाराभगवन्तं प्राप्नोतीत्यष्टादशवाक्यादवगम्यत इति यदुक्तं तदुपपन्नतरं। ये त्वक्षरमात्रोपासकास्ते मूर्द्धन्यात्मनः प्राणमाधाय प्रणवं जपन्तस्तद्वाच्यमक्षरं सर्वदा स्मरन्तो देहं त्यजन्ति ते तमेव सदा स्मृतमक्षरं प्राप्नुवन्तीति। यदक्षरं वेदवि-

अनुष्ठान से आत्मा को प्राप्त होगया है और जो "ब्रह्मभूत मकल्मष" यह पद से कहा गया है, वही "स्वे स्वे कर्मण्यभिरत" यहां से आरम्भ करके "ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा" यहां तक के प्रकरण से अनुवाद किया गया) इसलिये मूल के अनुवादरूप से दोनों प्रकरणों के ऐक्यता ज्ञात होने से यही निश्चय होता है कि छठा अध्याय के उक्त योग साधनों से सिद्ध कोई अधिकारी ही पर भक्ति के लाभ के द्वारा भगवान को प्राप्त होता है" यह अठारहवें अध्याय के वाक्यों से जाना जाता है यह जो पहले कहा गया था सो सिद्ध हो गया।

जो अक्षर मात्र के उपासक हैं वे मूर्द्धन्य नाडी में अपने प्राणको आधान करके प्रणव का जप करते हुए अक्षर का

दो वदन्ति विशंति यद्यतयोवीतरागाः । यदि-च्छन्तोब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये । सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च । मूर्ध-न्या धायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् । ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिमितिवा-क्यतोवगम्यते । अत्र परमागतिशब्देनाक्षरमु-च्यते, अव्यक्तोक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गति-मिति तदनन्तरवचनादवगम्यते । अयमक्षरो पासकः देहं त्यत्वा अक्षरमात्रं स्वोपास्यं प्राप्तः

सर्वदा ध्यान करके देहको त्यागते हैं वे सदा अक्षर को स्मरण करने से अक्षर ब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं।

यह बात "वेद वेत्ता जिसको अक्षर करके जानते हैं वीत रागादि यतिजन जिसमें प्रवेश करते हैं जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करतेहैं उस पदको हम आपको संग्रह से कहते हैं। सब द्वारोंको रोककर मनको हृदय में निरोध करके अपने प्राणको मूर्धन्य नाडी में आधान करके योगी योग-धारणा में स्थित होता है। ॐ इस एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और मेरा स्मरण करता हुआ जो देहको त्यागकर प्रयाण करता है वह परमगति को प्राप्त होता है" इन वाक्यों से ज्ञात होता है। यहां पर परमगति शब्दसे अक्षर ही कहा

सद्योमुक्तिं प्राप्नोति क्रममुक्तिं वा। न प्रथमः, मूर्द्धन्या निसृतस्य सद्योमुक्त्यनुपपत्तेः, यः प्रयाति त्यजन्देहमिति प्रयाति प्रकर्षेण सर्वोत्कृष्टत्वेन यातीत्यनेनार्चिरादिना तद्गतिसूचनात्। उपनिषत्स्वपि अक्षरोपासकानामर्चिरादिगतिश्रुतेस्तदुपपत्तेश्च। तथा च मुंडके श्रूयते तपः श्रद्धे येह्युपवसंत्यरण्ये शांताः विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरंतः सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा, परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः

गया है क्योंकि अव्यक्ताक्षर इत्युक्तस्त माहु परमांगतिम्। इस अनन्तर वाक्य से ज्ञात होता है यह अक्षर मात्र की उपासना करनेवाला पुरुष देहका त्यागकर अपने उपास्य को प्राप्त हुआ सद्यः मुक्त होता है अथवा क्रमसे मुक्त होता है। इसमें प्रथम कल्प तो हो नहीं सकता क्योंकि मूर्धन्य नाडी से निकलकर सद्यः मुक्ति उपपन्न नहीं सकता, क्योंकि "यः प्रयातित्यजन्देहं" यहां प्रयाति का अर्थ है प्रकर्ष से अर्थात् सर्वोत्कृष्ट से जाना अर्चिरादि मार्ग के द्वारा गति का सूचन करता है।

इससे उपनिषदों में भी अक्षरोपासकों की अर्चिरादि के द्वारा गति सुनी जाने से अक्षरोपासक का अर्चिरादि के द्वाराही जाना उपपन्न होता है। तथा च, मुण्डकोपनिषदमें सुना जाता

कृतेन तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं। तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय ... येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं तां प्रोवाच तत्वतो ब्रह्मविद्यामिति प्रथममुंडकं। अत्र तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्तीति शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरंत इति संन्यासिन उक्तास्तेषां ब्रम्हनिष्ठगुरूपसत्याब्रम्हविद्यां प्राप्तानां सूर्यद्वारगमनोपलक्षितार्चिरादिनाब्रम्हलोकगति निर्दिष्टा भवतीति विचार्य्य तत्र ये विद्वांसोभैक्ष्यचर्यां चरन्तोऽरण्ये विविक्तदेशे तपःश्रद्धे-

---

है कि "शान्तविद्वान् लोग भिक्षाचरण करते हुए अरण्य में श्रद्धा तप की उपासना करते हैं वे सूर्य द्वार से विरज होकर जहांपर अमृत, अव्यय, आत्मा पुरुष है वहां जाते हैं। कर्मचित लोकों की परीक्षा करके ब्राह्मण वैराग्य को प्राप्त होवे, क्योंकि कर्म से अकृत की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः उस अकृत अर्थात् मोक्ष के जानने के लिये समिधा को हाथ में लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास जाये, वह विद्वान् आचार्य पास में प्राप्त हुए अच्छी प्रकार से प्रशान्त चित्त उस शिष्य के लिये यथार्थतया उस ब्रह्मविद्या को कहे जिससे वह शिष्य अक्षर पुरुष का यथार्थ जान जावे" यहां पर "तपः श्रद्धे" इस मन्त्रमें सन्यासी कहे गये हैं क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाने से

ह्युपवसन्त उपासते ते विरजाः संतः सूर्यद्वारेण यत्रामृतः पुरुषोह्यव्ययात्मा तत्र यांतीत्यर्थो पपत्तेः। तपःश्रद्धयोर्भैक्ष्यचर्यावत्सन्यास्यनुष्ठेयत्वसिद्धेः, मनसश्चेन्द्रियाणां चैकाग्र्यं परमं तपः इत्युक्तेन बाह्यांतरिन्द्रियैकाग्र्यार्थकेन तपःशब्देन शमदमोपरतितितिक्षाणां चतसृणामर्थं संगृह्य श्रद्धाशब्दं च स्फुटमुक्त्वा तपःश्रद्धाभ्यां शान्तो-दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्ये-

---

ब्रह्मविद्या को प्राप्त हुए उन्हींका सूर्य द्वार रूपी अचिरादि मार्गके द्वारा ब्रह्मलोक की गति निर्देश की गई है। यह विचारना चाहिये। क्योंकि जो विद्वान् भिक्षाचर्या का आचरण करते अरण्य अर्थात् एकान्तदेश में तप श्रद्धा की उपासना करते है वे विरज होकर सूर्य के द्वार। जहा पर अव्यय आत्मा, अमृत पुरुष है वहा जाते हैं इससे उपपन्न होता है। तप और श्रद्धा के भिक्षाचर्या की तरह से सन्यासियों के अनुष्ठानकी सिद्धि होती है। अर्थात् (भिक्षाचर्या सन्यासीके अनुष्ठेय हैं उसी तरह तपः श्रद्धाभी संन्यासी से अनुष्ठेय है)। 'मन और इन्द्रियों का एकाग्र होनाही परम तप है'' इस कथन से बाह्य और अन्तर इन्द्रियों के एकाग्र के अर्थ को प्रतिपादन करने वाले तपशब्द से शम, दम, उपरति, तितिक्षा इन चारों के अर्थ को संगृहीत करके श्रद्धा शब्द को साफ २ कहकर तप- और श्रद्धा से शम

वात्मानं पश्येदिति श्रुत्युक्तं शमादिसाधनं संगृह्य तदुपासकानां सन्न्यासिनां सूर्यद्वारोपलक्षितेनार्चिरादिमार्गेण गतिरुक्ताभवतीति ज्ञेयम्। तथैव तृतीयमुण्डकेऽपि श्रूयते देवयानेन मार्गेण ब्रह्मविदां गतिः आत्मक्रीडः आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्य्येण नित्यं, अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रोयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पंथा

दम उपरति तितिक्षु श्रद्धा धनवाला होकर हमारी तरह आत्मा को देखता है" इस श्रुति में कहे गये शमादि ज्ञान साधन का संग्रह करके तदुपासक सन्यासियों की सूर्य द्वार रूपी अर्चिरादि मार्ग से गति कही गई है यह जानना चाहिये।

इसी प्रकार तृतीय मुण्डकोपनिषद्में देवयान मार्ग के द्वारा ब्रह्मवेत्ताओं की गति सुनी जाती है। "आत्मा में क्रीड़ा और आत्मा में रति करता है और इसीको क्रियावान् है यही ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ है। परमात्मा के साक्षात्कार में उपकरण विशेषों का विधान करती हुई श्रुति कहती है कि सत्य, तपस्या, सम्यक् ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य से यह आत्मा प्राप्त होता है जो शरीरके भीतर ज्योतिर्मय शोकमोहादि मालिन्य रहित वर्तमान है जिसको निर्मल चित्त वाले योगिजन देखते

वितनोदेवयानः येनाक्रमन्ति ऋषयोह्याप्तकामाः यत्र सत्सत्यस्यपरमं निधानं बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति, दूरात्सुदूरेतदिहान्तके च पश्यत्स्विहैष निहितं गुहायां, न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा, ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः एषोणुरात्मा चेतसा

है। उक्त उपकरणों में से सत्य प्रधान होने से सत्यकी स्तुति श्रुति करती है। सत्य की ही जय होती है अनृतकी नहीं जो विस्तृत देवयान है वह सत्यसे ही मिलता है जिससे द्वारा आप्त काम ऋषिलोग सत्य के परम निधान स्वरूप परमात्मा जहां है वहां को आक्रमण करते हैं उसी को देवयान मार्ग कहते हैं।

(जिस देशमें देवयान मार्ग के द्वारा ऋषि लोग जाते हैं वह परिच्छिन्न है अथवा विकारी है यह सन्देह को निराकरण करती हुई श्रुति उस स्थान का निर्देश करती है कि) जो सत्य का परम निधान है वह बृहत् है और दिव्य है अर्थात् परिणामी नहीं है अचिन्त्य रूपवाला है सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्मतर है दूरसे भी अतिदूर और देखने वालों के गुहामें यहांही अत्यन्त समीपमें है, क्योंकि जो योग साधन के द्वारा साक्षात् करने की सामर्थ्य वाले होते हैं वे इसी शरीर में हृदय गुहामेंहा

वेदितव्यः यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेश, प्राणै-
श्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धविभव-
त्येष आत्मा, यंयं लोकं मनसा संविभाति विशु-
द्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्, तं तं लोकं जयते
तांश्च कामास्तस्माद् त्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकाम इ-
त्यात्मप्रकरणं समाप्य अथ परमात्मप्रकरणमार-
भ्यते सवेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्रविश्वं निहित

देखते हैं (जब वह गुहामें संनिहित है तो सब कोई उसको क्यों नहीं देखता क्यों कोई कोई ही देखता हैं इस शंका का निराकरण करती हुई श्रुति कहती है कि यह आत्मा (परमात्मा) चक्षु से गृहीत नहीं होता न वचन से न अन्य देवताओं से और तपस्या तथा कर्म से भी गृहीत नहीं होता किन्तु ज्ञान प्रसाद से विशुद्ध सत्व वाला जो पुरुष है वही निष्कल उस पुरुष के ध्यान करने पर देखता है। (ज्ञान प्रसाद से ही जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है तो जीवात्मा में ज्ञान है ही है उसे परमात्मा का साक्षात्कार हो जाना चाहिये इस शंका का समाधान करती हुई श्रुति कहती है कि देहाद्यभिमान वश जीवात्मा का ज्ञान कलुषित होगया है अतः परमात्मा को नहीं देखपाता इसलिये पहले जीवात्मा अपने स्वरूप को समझे श्रुति जीवात्माके स्वरूप को बताती है कि) यह आत्मा अणु है, विवेक शीलमनसे जानना चाहिये .जिस जीवमें प्राण वायु

भाति शुभ्रं, उपासते पुरुषं येह्यकामास्ते शुक्रमेत-
दितिवर्तन्तधीराः। कामान्यः कामयते मन्यमानः
सकामभिर्जायते तत्र तत्र पर्याप्तकामस्य कृतात्मनः-
स्तुइहैव सर्वेप्रविलीयन्ति कामाः, नायमात्मा प्रव-

पांचरूप बनाकर उपकरणतया प्रविष्ट हुआ है जिस जीव में प्रजाओं के प्राणों के सहित स्व चित्त ओत प्रोत है। ऐसे जिस विशुद्ध जीवात्मामें यह पूर्वोक्त परमात्मा प्रकाशित होता है। विशुद्ध सत्व वाला जीवात्मा मन से जिस २ लोक का संकल्प करता है और जिस २ कामको चाहता है उस २ लोक को जीत लेता है और उन २ कामों को प्राप्त करलेता है इस लिए ऐश्वर्यकामी पुरुष को चाहिये कि आत्मज्ञ पुरुष की पूजा करे। आत्मवित् की पूजा का मोक्ष फल दिखाती हुई श्रुति कहती है कि जिसमें सम्पूर्ण जीव समुदाय निर्मल स्व प्रकाश हो कर भासित होता है उस सर्व कामास्पद धाम शब्द वाच्य पर ब्रह्म को वह आत्मवित् जानता है। जो पुरुष अकाम होकर आत्मज्ञ पुरुष की मुमुक्षु होकर उपासना करते हैं वे शुक्र को अति क्रमण करके वर्तते हैं अर्थात् जन्म शून्य होजाते हैं और जो कामों को भोग्यतया मानता हुआ कामो (देव मनुष्या-दि भोज्य पदार्थों की) कामना करता है, वह तत् तत् काम परतन्त्र होकर वहां २ पैदा होता है और जो पर्याप्त काम होकर (ब्रह्ममें ही है कामना जिसकी ऐसे विदित आत्मतत्त्व वाले पुरुष के) इसी जन्ममें सब कामनायें लीन होजाती हैं। इस

चनेनलभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन यमेवैष वृ-णुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्, नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तप-सोवाप्यलिङ्गात् एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वाँस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम। इतोऽग्रे ज्ञानिनां ब्रह्मलोकगातिमाह संप्राप्यैनं संप्राप्यैनं ऋषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ते स-

परमात्मा की प्राप्ति केवल प्रवचन, मेधा, बहुश्रुत से नहीं होती है किन्तु यह परमात्मा जिस उपासक को वरण कर लेता है उसी वरणीय से प्राप्य है उसी उपासक को यह परमात्मा अपनी आत्मा का प्रकाश कर देता है, अर्थात् अनुभव करा देता है। यह परमात्मा बलहीन (चंचलमन) से प्राप्त नहीं हो सकता है और प्रमादी से प्राप्त नहीं होसकता और आश्रम के चिन्हों से रहित पुरुष को भी प्राप्त नहीं होता किन्तु इन पूर्वोक्त उपायों से जो विद्वान् इस आत्मा की प्राप्ति के लिये यत्न करता है वह उस परमात्मा को प्राप्त कर लेता है (अर्थात् वही जीव परमात्मा के धाम में प्रवेश करता है,) इसके आगे ज्ञानी के ब्रह्मलोक की गति का श्रुति वर्णन करती है। "जे ऋषि ज्ञान से तृप्त हैं और कृत कृत्य होगये हैं रागों से रहित हैं अत्यन्त शान्त हैं वे इस परमात्मा को प्राप्त करके वे धीर पुरुष सबमें व्याप्त सब जगह प्राप्त होने वाले ब्रह्म को सर्वत्रही

र्वगं सर्वतः प्राप्यधीराः युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति, वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः, ते ब्रह्मलोकेषुपरान्तकाले परामृता परिमुच्यन्ति सर्वइति । अत्र आत्मक्रीड आत्मरतिः एष ब्रह्मविदां वरिष्ठ इत्यनेनात्मयाथात्म्यज्ञस्य पंथा विततोदेवयानइत्यनेनार्चिरादिमार्गेण येनाक्रमन्ति ऋषयोह्याप्तकामा इत्यनेन योह्यकाम आप्तकामः आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैवसमवलीयन्त इत्युक्तस्याप्यर्चिरादिना गतिं सूचयित्वा वेदान्तविज्ञानसुनिश्चतार्था इत्यादिना ब्रह्मप्राप्त्यनंतरं ब्रह्मणा सह मुक्तिर्निर्दिष्टा भवतीति ध्येयं । किञ्च-

प्राप्त होने वाले ब्रह्मको सर्वत्र ही प्राप्त कर लेते हैं अतः युक्तात्मा वे महात्मा सब में प्रवेश कर जाते हैं अर्थात् सब वस्तु का अनुभव एकही जगह से कर सकते हैं। जिन्होंने वेदान्त के विज्ञान से अर्थ का निश्चय कर लिया है तथा काम्य कर्मों के सन्यास से जिनका अन्तः करण शुद्ध होगया है। वे जितेन्द्रिय महापुरुष अन्तकाल में ब्रह्मलोक में प्राप्त होते हैं तब ब्रह्मा के प्रसन्न होने से सबसे मुक्त होजाते हैं।"

तपः श्रद्धावतां संन्यासिनां सूर्यद्वारपदेन देवयानपदेन यार्चिरादिका गतिः सूचितामुण्डके—सातेषां स्फुटं श्रूयते बृहदारण्ये य एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते ते र्चिरभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरन्ह

यहां "आत्म क्रीड आत्म रतिः एष ब्रह्मविदां वरिष्ठ" इस वाक्यमें आत्म याथात्म्य ज्ञाता के "पन्थाविततो देवयानः" इस अर्चिरादि मार्ग से "येनाक्रमन्त्यृषयो ह्यात्मकामाः" इस वाक्य से (जो अकाम है आप्त काम है आत्म कामी है उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते किन्तु यहीं पर लीन हो जाते हैं) इस मंत्र से कहे गये योगि की भी अर्चिरादि गति का सूचित करके "वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः" इत्यादि से ब्रह्म प्राप्ति के बाद ब्रह्मा के साथ मुक्ति का निर्देश किया गया है यह जानना चाहिये।

किंच तपः श्रद्धा वाले संन्यासियों की सूर्य द्वार देवयान पद से अर्चिरादि गति, मुण्डक में सूचित की गई है वह उन संन्यासियों की स्पष्टतया बृहदारण्यक में सुनी जाती है "जो इस प्रकार जानते हैं, औरजो पुरुष अरण्यमें स्थित होकर श्रद्धा पूर्वक सत्य शब्द वाच्य परमात्मा की उपासना करते हैं वे (उत्क्रमण समय पर) अर्चि के अभिमानी देवता से संगत होते हैं वहाँ से दिनके अभिमानी देवता से मिलते हैं, वहां से शुक्ल पक्ष के अभिमानी देवता से मिलते हैं वहां से शुक्ल पक्ष के अभिमानी देवता को प्राप्त होकर उत्तरायण छः महीना के

आपूर्य माणपक्षाद्यान्षण्मासानुदङादित्य एतिमासेभ्यो देवलोकं देवलोका दादित्य मादित्याद्वैद्युतं तान् वैद्युतान् पुरुषोऽमानव एत्य ब्रह्मलोकान्नयति ते तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परवन्तो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिरिति। तदेवमत्र येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं तां प्रोवाच तत्त्वतो ब्रह्मविद्यामित्यनेनाक्षरोपासकानपि संगृह्य तेषामप्यर्चिरादिगतिसूचनात्, तपःश्रद्धेये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः सूर्यद्वारेण तेयान्तीति इत्यन्तेन, विविदिषावतां संन्यासिनां

अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं वहांसे सम्वत्सराभिमानी देवता को प्राप्त होकर देवलोक को प्राप्त होता है अर्थात् वायु लोक में जाता है वहांसे आदित्य लोक वहाँ से चन्द्रलोक को प्राप्त होता है, चन्द्रलोक से विद्युत लोक में जाता है विद्युत लोकसे अमानव पुरुष इनको ब्रह्मलोक में प्राप्त करता है। ब्रह्म लोक में प्राप्त हुए वे पुरुष असंकुचित ज्ञान वाले होकर अपने को सनाथ मानते हुए सुख पूर्वक निवास करते हैं, उनकी पुनः आवृत्ति नहीं होती है" इस मन्त्र में "येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं ताम् प्रोवाच तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्" इससे अक्षरोपासकों का भी संग्रह करके उनकी भी आर्चिरादि गति सूचित की है

आत्मक्रीडः आत्मरति एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः सत्येन पंथाविततोदेवयानः येनाक्रमंत्यृषयोह्याप्तकामा इत्यन्तेनात्मानं प्राप्तानामाप्तकामानां चार्चिरादिगतिसूचनात् । ये चामी अरण्येश्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभि सम्भवन्तीत्यादिना तत्स्फुटीकरणाच्च । सर्वेषामक्षरादिपराणां संन्यासिनामप्यर्चिरादिद्वारैव गतिर्नान्यथेति दृढीकृतं भवति ।

ननुयोऽकाम आप्तकाम आत्मकामः न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयंत इत्युक्त-

---

"तपः श्रद्धेयेह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसोभैक्ष्यचर्यां चरंतः ते सूर्यद्वारेण यांति" इस मंत्र से विविदिषा वाले संन्यासियों के और "आत्म क्रीड, आत्मरतिः एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः सत्येन विततो पंथादेवयानः येनाक्रमंति ऋषयोह्याप्तकामाः" इससे आत्मा को प्राप्त आप्तकामों की अर्चिरादिगति सूचित करने से, तथा "ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यं मुपासते ते अर्चिरभिसंभवन्ति" इस मंत्र से अर्चिरादि गति स्पष्ट करने से सभी अक्षरादि पर संन्यासियों की अर्चिरादि के द्वारा ही गति होती है दूसरी प्रकार से नहीं होती है यह दृढ़ किया गया है ।

स्य नार्चिरादिनागतिरुपपद्यते न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति श्रुतेरितिचेन्न। आत्मक्रीड आत्मरत ऋषयो ह्याप्तकामा येनाक्रमन्तीत्यात्मानं प्राप्तानामाप्तकामानामप्यर्चिरादिना गतिश्रुतेस्तत्समानार्थकत्वेन तद्वाक्योदितस्याप्याप्तकामादेरर्चिरादिगत्युपपत्त्या न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते इत्युक्तस्यान्यथा सिद्ध्युपपत्तेरितीममर्थं स्पष्टीकरिष्याम्यग्रे।

अत्र निर्विशेषत्वादिभिर्मूर्द्धन्या ध्यायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणामित्यत्राक्षरोपासका

यदि कहो कि जो अकाम, आप्तकाम, पुरुष है उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते किन्तु यहीं पर लीन हो जाते हैं, उसकी अर्चिरादि के द्वारा गति उपपन्न नहीं हो सकती क्योंकि "न तस्य प्राणा उत्क्रमन्ति" यह श्रुति कहती है, सो नहीं कह सकते। क्योंकि "आत्म क्रीड आत्मरतिः ऋषयो ह्याप्तकामाः येनाक्रमन्ति" इत्यादि मंत्रों से आत्मा को प्राप्त आत्मकाम पुरुषों की भी अर्चिरादि से गति श्रुत है। पूर्व वाक्य के समानार्थक उस वाक्य से कहे गये आप्तकाम पुरुष की भी अर्चिरादि के द्वारा गति उपपन्न होती है, और "न तस्य प्राणा उत्क्रमन्ति" इसकी सिद्धि दूसरे प्रकार से होती है इसका स्पष्टीकरण आगे चलकर करेंगे।

नामपि मूर्द्धन्या नाड्या गतिः सद्योमुक्तिविरोधित्वेन स्वपक्षहानिकारीति श्रुत्वातद्भयेनयदक्षरं वेदविदोवदन्तीत्यादयोपि त्रयः श्लोकाः सगुणोपासकपरत्वेन व्याख्याताः। कथमितिचेत् उच्यते। सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति। यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतदिति श्रुत्या यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागा यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण प्रवक्ष इतीत्यस्य श्लोकस्यैकार्थ्यं नि

यहां पर निर्विशेष वादियों ने "अपने प्राण को मूर्द्धा में आधान करके जो योग धारणा में स्थित है" इस मंत्र में अक्षरोपासकों की भी मूर्द्धन्य नाड़ी से गति सद्यः मुक्ति की विरोधी होने से अपने पक्ष की हानि करने वाली जानकर उसके भय से "यदक्षरं वेद विदो वदन्ति" इत्यादि तीन श्लोक सगुनोपासक परक करके व्याख्या की है। किस प्रकार व्याख्या की है सो सुनिये—"सम्पूर्ण वेद जिस पद को मनन करते हैं और सम्पूर्ण तप जिसको कहते हैं तथा जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस पद को संग्रह से आपसे कहता हूं कि वह पद है ॐ" इस श्रुति से "यदक्षरं··· जिस

देशेन यः पुनरेतत् त्रिमात्रेणोमित्यनेनैवाक्ष रेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तमधिगच्छतीत्य नया श्रुत्या तु "ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्" इत्यस्यैकार्थ्यनिर्देशेन चेत्येवमिति तन्नोपपद्यते कुतः विशन्ति यद्यतयोवीतरागा इत्युक्तानां यतीनां यत्नशीलानां संन्यासिनां वीतारागाणां निस्पृहाणां अतएव सिद्धानां तव मते सगुणप्रवेशानुपपत्त्या तद्विषयकाणां यदक्षरं वेदविदोवदन्तीत्यादिश्लोकानां निर्विशेष ब्रह्मपरत्वोपपत्तेर्निर्विशेषपरैरेभिःश्लोकैः सवि-

---

अक्षर को वेद वेत्ता कहते हैं वीतराग होकर यति जिसमें प्रवेश करते हैं, जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उस पद को संग्रह से कहता हूं" इस श्लोक से एकार्थकता का निर्देश होने से और "यः पुनरेतत् जो इस ॐकार रूप त्रिमात्रिक अक्षर से पर पुरुष का ध्यान करता है वह उस पुरुष को प्राप्त होता है" इस श्रुति मे गीता के "ॐ मित्येकाक्षरं······ॐ इस एकाक्षर ब्रह्म का व्याहरण करता हुआ जो हमारा स्मरण करता है वह हमको प्राप्त होता है" इस श्लोक के साथ एकार्थ है इस प्रकार समन्वय करते हुए सगुणोपासक परक इन श्लोकों की व्याख्या की है सो यह व्याख्या

शेषपरयोः सर्वे वेदायत्पदमामनन्तीति यः पुन रेतत् त्रिमात्रेणोमित्यनेनेत्यनयोः श्रुत्योरेकवाक्यतानुपपत्तेः। पुनश्च स याति परमां गतिम् अव्यक्तोऽक्षरइत्युक्तस्तमाहुः परमांगतिमित्यत्राक्षरोपासकस्याक्षरप्राप्तिस्मृतेः य ओँ मित्यनेन परं पुरुषमभिध्यायीत सतमधि गच्छतीत्यत्र परपुरुषोपासनया परपुरुष प्राप्तिश्रुतेः तयोः श्रुत्योः फलविरोधाच्चैकार्थ्यानुपपत्तेः। अत्रापि पुरुषः सपरः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्ययेत्यनेनाक्षरतः भक्तिलभ्यस्य परपुरुषस्य पृथङ्

ठीक नहीं है, क्योंकि—विशन्तियतयो वीतरागाः" इसे कहे गये, यत्नशील निस्पृह संन्यासी अतएव सिद्ध के आपके मत में सगुन ब्रह्म में प्रवेश की उपपत्ति नहीं हो सकती, और तद्विषयक "यदक्षरम्" इत्यादिक श्लोकों को निर्विशेष ब्रह्म परत्व उपपन्न है।

अतः निर्विशेष पर इन श्लोकों के साथ, सविशेष ब्रह्म परक "सर्वे वेदाः······यः पुनरेतत्त्रिमात्रेण ·····इन दोनों श्रुतियों की एक वाक्यता उपपन्न नहीं हो सकती। दूसरे "सयाति परमां गतिम्" अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्माहु परमागतिम्" यहां पर अक्षरोपासकों अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति स्मृत होने से

निर्देशाच्च पुनः सगुणोपासकानामक्षरप्राप्त्य श्रुतेरस्मृतेरनुपपत्तेश्च त्वयाप्यनंगीकाराच्च मदंगीकारेक्षरभिन्नप्राप्यान्तरालाभेन तवाधिक यत्नवैयर्थ्यापत्तेश्च।

द्वादशे तु सगुणोपासनतोक्षरोपासनायाः पृथग्वर्णनेन निर्विशेषपराणामक्षरोपासना स्फुटीकरणाच्चातोत्र यदक्षरं वेदविदो वदन्तीत्यादिभिः एतद्वै अक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनणवह्रस्वदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसंगमरसमगंधमचक्षु

"यः ॐ इत्यनेन परमं पुरुषमभिध्यायी सतमधिगच्छति" यहां पर परम पुरुष की उपासना से पर पुरुष की प्राप्ति श्रवण होने से उक्त दोनों श्रुतियों के फल का विरोध होने से एकार्थ उपपन्न नहीं हो सकता और यहां गीता में भी "पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया" इस श्लोक से अक्षर पद वाच्य से भक्ति लभ्य पर पुरुष का पृथक् निर्देश किया गया है। पुनः सगुनोपासकों को अक्षर प्राप्ति कहीं भी नहीं सुनी गई है न कहीं स्मरण की गई है। अतः सगुनोपासक को अक्षर की प्राप्ति अनुपपन्न है। आप भी इस बात को स्वीकार नहीं करते, यदि आप स्वीकार कर लेवेंगे तो अक्षर से भिन्न दूसरा

स्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममा-
त्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तद-
श्नाति कश्चन एतस्य क्षरस्य प्रशासने गार्गि
सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः एतस्य वाक्षरस्य

प्राप्य है नहीं, अक्षर से भिन्न प्राप्यान्तर के न होने से आपका अधिक यत्न व्यर्थ हो जायगा।

द्वादशाध्याय में सगुणोपासना से अक्षरोपासना का पृथक् वर्णन करने से निर्विशेष ब्रह्मोपासकों के लिये अक्षरोपासना का स्पष्टीकरण किया गया है। अतः यहां पर "यदक्षरं वेद विदो वदन्ति" इत्यादि श्लोकों से हे गार्गी! यह वही है जिसको तुम पूछती हो वह अक्षर है इसको ब्रह्मवेत्ता इस प्रकार कहते है, कि स्थूल, अणु, ह्रस्व, दीर्घ से विलक्षण है, रूप, रस, स्नेह के रहित है, छाया तथा तम से रहित है वायु और आकाश के धर्म से रहित है, संग वर्जित है रस और गंध से रहित है, चक्षु और श्रोत्र की अपेक्षा से इसको ज्ञान नहीं होता है किन्तु (इन्द्रिय निरपेक्ष ज्ञान वाला है) तेज और प्राण से रहित है। मुख रहित है, मात्रा रहित है, भीतर बाहर के विभाग रहित है, न तो वह कुछ खाता है न उसको कोई खाता है। हे गार्गी! इसी अक्षर के शासन में सूर्य चन्द्रमा निराधार आकाश में धारण किये हुए स्थित है इसी अक्षर के शासन में द्यु और पृथ्वी स्थित है, इसी अक्षर के शाशन में हे गार्गी! निमेष, मुहूर्त, अहोरात्र, अर्द्धमास, मास, सम्वत्सर स्थित है, इसी अक्षर के शासन में श्वेत पर्वतों से अर्थात्

प्रशासने गार्गि प्राच्योनद्यः स्यंदते द्यावापृथिव्यौ विधृतौ तिष्ठतः एतस्यवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा ऋतवः सम्वत्सरा इति विधृतास्तिष्ठंत्येतस्य वाअक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्यो न्यानद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योन्यायांयां च दिशमन्वेतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतोमनुष्याः प्रशंसन्ति यजमानं देवार्वी पितरोन्वायत्ता इति श्रुत्युदितस्याक्षरस्य ये उपासका येनाक्षरं पुरुषं वेद तां प्रोवाच तत्वतो ब्रह्मविद्यामिति श्रुत्या निर्दिष्टास्तेषां या गतिरुक्ता इत्येव गम्यते

हिमालयादि प्रभृति पर्वतों से प्राची, प्रतीची आदि दिशाओं की नदियां जिस जिस दिशा को बहती हैं वे सब इसी अक्षर की आज्ञा से अनुसरण करती हैं। दान देते हुए यजमान की जो प्रति गृहिता (दान लेने वाले) प्रशंसा करते हैं सो इसी अक्षर के शासन से, पुनः इसी अक्षर के शासन से देवता यजमान की पितृगण होम की प्रशंसा करते हैं" इस श्रुति से कहे गये अक्षर के जो उपासक "येनाक्षरं पुरुषं वेद……इस श्रुति से निर्देश किये गये हैं उन्हीं की यह गति कही गई है ऐसा

एतद्वै अक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्तीति श्रुत्युपक्रमस्य यदक्षरं वेदविदोवदन्तीत्यस्य चैकार्थ्यात् श्रुत्यर्थानुवादेनास्य ब्रह्मचारिणां यतीनां च तदुपासनयोगधारणादिप्रकाशनाच्च यतीनां तत्रैव प्रवेशोपपत्तेश्च एतदुक्ताक्षरस्योपासनाविधानं विना तत्पराया एतस्याश्रुतेररण्यरोदनत्वापत्तेश्चेति। अस्मिन्पक्षे अक्षरशब्दस्य परमात्मपरत्वमुपपद्यते तस्मिन्नेतस्मिन्नक्षरस्य परमात्मविषयत्वोपपादकपक्षे अष्टमेऽत्र भगवन्मुखाच्छ्रुतामक्षरोपासनां स्मृत्वा द्वादशोपक्रमेऽर्जुनो भगवदुपासकाक्षरोपासकयोः युक्ततम-

---

ज्ञात होता है। क्योंकि "एतत् वै अक्षरं गार्गी ब्राह्मणाअभिवदन्ति" इस श्रुति के उपक्रम के साथ "यदक्षरं वेद विदो वदन्ति" इसकी एकार्थता है। श्रुति के अर्थ के अनुवादक इस वाक्य से ब्रह्मचारी और यतियों के उपासन योग धारणादि का प्रकाशन किया गया है। अतः संन्यासियों का प्रवेश वहीं उपपन्न हो सकता है। इस कही हुई अक्षर के उपासना के विधान के बिना 'तत्पर' इस श्रुति के अरण्यरोदनापत्ति हो जायगी।

त्वज्ञानाय भगवन्तं पृष्टवान् "येचाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः" इतीत्यवगम्यते । यदक्षरं वेदविद इति स्मारकवाक्ये येचाप्यक्षरमव्यक्तमिति तदनुवादके चोभयत्राक्षरपदश्रवणेन तयोरेकार्थपरत्वोपपत्तेः जीवपरमात्मनोः सेवकस्वामित्वेन तदुपासनयोः प्रत्यक्षनिकृष्टत्वोत्कृष्टत्वयोर्युक्ततमत्वायुक्ततमत्वप्रश्नानुपपत्त्या तुल्योपासनयोर्युक्ततमत्वायुक्ततमत्व प्रश्नस्योपपत्तेश्च, ।

इस पक्ष में अक्षर शब्द को परमात्म परत्व उपपन्न होता है, इस अक्षर के परमात्म विषयक उपपादक पक्ष में अष्टमाध्याय में श्रीभगवान के मुख से सुनी हुई अक्षरोपासना का स्मरण करके द्वादश के उपक्रम में ही अर्जुन भगवत् उपासक और अक्षरोपासकों के मध्य में कौन युक्ततम है और कौन अयुक्ततम है इस बात के ज्ञान के लिये भगवान से पूछते हैं "येचाप्यक्षरम्" (और जो अव्यक्त अक्षर की उपासना करते हैं उनमें योगवित्तम कौन है ?) यह प्रश्न किया है। इसे जाना जाता है। "यदक्षरं वेद विदो वदन्ति" इस स्मारक वाक्य में और "ये चाप्यक्षरमव्यक्तम्" इस अनुवादकवाक्य में दोनों ही जगह अक्षर पद का श्रवण होने से दोनों ही वाक्यों के एकार्थपरत्व उपपन्न होता है। जीव और परमात्मा के

किंच अस्मिन् पक्षे षष्ठोक्तयोगिनां मध्ये यः कश्चिद्भगवन्तं भजते स अष्टादशोक्तरीत्या परभक्तिद्वारा भगवन्तं प्राप्नोतीति पूर्वमुपादितं अयंत्वष्टमद्वादशोक्ताक्षरोपासकः सदाभ्यस्तयोगोन्तकालेपि योगधारणया देहं त्यक्त्वा सुषुम्नया निर्गत्यार्चिरादिना स्वप्राप्यमक्षरं गच्छति। कुतः अत्र मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमित्युक्तेः। मुण्डकोपनिषद्यपि अर्चिरादिप्रकरणे येनाक्षरं पुरुषंवेद सत्यं तां प्रोवाच तत्वतो ब्रह्म

सेवक स्वामि भाव होने से दोनों की उपासना में प्रत्यक्ष सेही निकृष्ट और उत्कृष्ट होने से युक्ततमं और अयुक्ततम का प्रश्न अर्जुन से हो ही नहीं सकता है अर्थात् जब अर्जुन इस बात को जानताही है कि जीव सेवक है, परमात्मा स्वामि है तब फिर युक्तायुक्त का प्रश्न नहीं कर सकता है। अतः तुल्य उपासना में ही युक्तायुक्त का प्रश्न होसकता है।

किंच इस पक्ष में षष्ठाध्यायोक्त योगियों के मध्य में जो कोई भगवान का भजन करता है वह अष्टादशाध्यायोक्त प्रकार से परभक्ति के द्वारा भगवान को प्राप्त होता है यह पहले ही उपपादन कर दिया है। तथा यह जो अष्टम और द्वादशाध्याय में कहा गया अक्षरोपासक है जो सदा अक्षर की उपा-

विद्यामित्यक्षरविद्योपदेशश्रवणेन तदुपासकाना मर्चिरादिगत्युपपत्तेः। पुनश्च सत्येन पन्था विततोदेवयानः येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामाः । यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानं बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं । सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति इत्यत्र येनाक्षरं पुरुषं वेदसत्यमित्युक्तस्य ब्रह्मविद्यावेद्यस्य सत्यस्य पुरुषस्य सत्येन पंथा विततोदेवयान इत्यादिना येन देवयानमार्गेण यत्रतत्सत्यस्य परमं निधानं तत्राक्रमन्ति गच्छन्तिऋषयो ह्याप्तकामा। इत्येवमन्वयेनार्चिरादिमार्गेणाप्तकामऋषिप्राप्यत्वद्योतनाच्च। तत्रैव बृहच्च तद्दिव्यमचि

सना करते २ योग सिद्ध हो गया है। वह अन्तकाल में भी योग की धारणा से देह को छोड़ कर सुषुम्ना नाड़ी से निकल कर अर्चिरादि मार्ग के द्वारा स्वप्राप्य अक्षर को प्राप्त होता है। क्योंकि यहां पर "मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणम्" यह कहा है। तथा मुण्डक उपनिषद् में भी अर्चिरादि प्रकरण में "येनाक्षरं पुरुषं वेद" इस अक्षर विद्योपदेश के श्रवण से अक्षरोपासकों की ही अर्चिरादि गति उपपन्न है। तथा (सत्येनेति सत्य से देवयान सत्य से वितत देवयान मार्ग मिलता है जिससे आप्तकाम ऋषिगण प्रयाण करते हैं, जहां पर उस

न्त्यरूप मित्याद्यक्षर पुरुष लिङ्गश्रवणाच्च । पुनश्च तपः श्रद्धे येह्यु पवसन्त्यरण्ये शांता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः सूर्य द्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति इत्युक्तानां साधक सन्यासिनां आत्मक्रीडः आत्मरतिं एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः सत्येन पंथा विततो देवयानः इत्युक्तानां सिद्धानां च वेद विद्वरिष्ठत्वेन सर्वथा परमात्माक्षरो पासकत्वोपपत्तेश्च कूटस्थाक्षरप्रत्यगात्मोपासकत्वे तेषांवेद विद्वरिष्ठत्वानुपपत्तेश्चेत्यलंपुनःपुनः तद्धठकरणेन ।

सत्य का परम निधान है जो बृहत् दिव्य, अभिनयरूप है सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म भासित होता है) यहां पर येनाक्षरं पुरुषं वेद" इसे कहे गये ब्रह्म-विद्या-वेद्य सत्य पुरुष के "सत्ये न पन्था विततो देवयानः" इसमे जिसे देवयान मार्ग के द्वारा "यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानं तत्र क्रमन्ति ऋषयोह्याप्त कामाः" ऐसाही अन्वय करने से अर्चिरादि 'मार्ग' के द्वारा आत्मकाम ऋषियों के प्राप्य स्थान का प्रकाशन किया गया है । और वहीं पर बृहत् दिव्य अचिन्त्य रूप इत्यादि अक्षर पुरुष के चिन्ह भी श्रुत हैं ।

तत्किमक्षरोपासकप्राप्यं यदर्चिरा दिना यातीति चेत्, सदा तेन ध्यातं तदक्षरमेव किंच यदक्षरं वेद विदो वदन्तीत्यस्य ये चाप्यक्षरमव्यक्तमित्यस्य च मूलतदनुवादत्वादुभयत्राक्षरशब्दश्रवणाच्चोभयोर्वाक्ययोरेकत्वोपपत्तेः। द्वादशे अक्षरोपासकेभ्यो भगवदुपासकानामुत्कृष्टत्वोक्तेश्च तदुपास्यादक्षरादपि भगवत उत्कृष्टत्वमुपपद्यते; मत्तः परतरं नान्यदित्यन्यपरत्वनिषेधाच्च। किंच शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितं नाति

तथाच तपः अद्वेत्यादि से कहे गये साधक संन्यासी आत्मरति इत्यादि से कहे गये सिद्ध योगि के वेद वेत्ताओंमें वरिष्ठ होने से सर्वथा ही परमात्मा अक्षरोपासक ही उपपन्न होता है, यदि वे कूटस्थ अक्षर प्रत्यगात्मा के उपासक होवें तो वेदवित् वरिष्ठत्व उपपन्न नहीं होसकता है। (इत्यलम् पुनः विष्ट पेषन से) अक्षरोपासक के लिये प्राप्य स्थान कौन है जिससे वह अर्चिरादि के द्वारा जाता है। यदि यह पूछो तो सदा जिसका ध्यान किया उसी अक्षर को प्राप्त होता है।

किंच "यदक्षरं वेद विदो वदन्ति" इसके और येचाप्यक्षरमव्यक्तं इसके मूल और तदनुवादक होने से) अर्थात्

नीचं चैलाजिन कुशोत्तरं। तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः । उपविश्यासनेयुञ्ज्याद्योग मात्मविशुद्धये । समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः । अत्र शुचौ देशे इत्यादिनाऽऽसन-मुक्त्वा प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः" इत्यनेन यमनियमाः सूचयित्वा प्राणायामं

यदक्षर इन मूलय वाक्यों का येचाप्यक्षर यह अनुवादक वाक्य है) और दोनों जगह अक्षर शब्द श्रवण होनेसे दोनों वाक्यों में एकार्थ प्रति-पादकत्व उपपन्न होता है, और द्वादशाध्याय में अक्षरो पासकों से भगवत उपासकों को उत्कृष्ट कहा गया है अतः अक्षरो पासक से उपास्य अक्षर से भगवद् भक्त से उपास्य भगवान को उत्कृष्टत्व उपपन्न होता है तथा हमसे पर दूसरा नहीं है ऐसा कहकर भगवान ने अपने से अन्यके परत्व का निषेध भी किया है।

किंच "पवित्र देशमें न बहुत ऊँचे न बहुत नीचा हो, ऐसा नीचे कुश ऊपर मृगचर्म उसके ऊपर वस्त्र बिछा स्थिर आसन बिछाकर स्थिरता से बैठकर वहाँ पर एकाग्रमन होकर चित्त और इन्द्रियों की क्रिया को रोककर समान शरीर और ग्रीवा को अचल स्थिर धारण करता हुआ आसन पर बैठकर आत्म विशुद्धि के लिये योग का साधन करे" यहां पर "शुचौ देशे" इससे आसन को बताकर प्रशान्त आत्मा विगतभी इससे यम, नियम, सूचित कर प्राणायाम के बिना मन स्थिर

विना मनसः स्थैर्यानुपपत्तेः, मनः संयम्येति प्राणायामं सूचयित्वा मच्चित इति ध्यानधारणे सूचयित्वा मत्पर आसीदिति समाधिं च सूचयित्वा अष्टांगयोग उपदिष्टो भवति। तथा च षष्ठोक्ताष्टांगयोगिनां यावज्जीवमभ्यस्तयोगानामन्तकालेपि योगधारणापूर्वकं मूर्द्धन्या नाड्या गत्युपपत्तेः। यदि षष्ठोक्तयोगिनां मध्ये ये भगवन्तमभजमानाः यावज्जीवमभ्यस्तयोगास्तेषामंतकालगतिसूचकं अष्टमोक्तं "यदक्षरं वेद विदो वदन्तीत्यारम्य, यः प्रयाति

नहीं होसकता। अतः मनः संयम्य इस से प्राणायाम सूचित करके मच्चित्तः" इससे ध्यान और धारणा को सूचित करके मत्परः आसीत्" इससे समाधि सूचित कर अष्टांग योग का उपदेश कलित होताहै। अतः षष्ठाध्यायोक्त अष्टांग योगियों को जिन्होंने जीवन पर्यन्त योग का अभ्यास किया है उनके अंतकाल में भी योग धारणा पूर्वक मूर्द्धन्य नाडीमें गति उपपन्न है। यदि षष्ठोक्त योगियों के मध्य में जिन्होंने यावज्जीवन योगका अभ्यास किया है परंच भगवान का भजन नहीं किया उनके अन्तकालके गति का सूचक अष्टाध्याय का "यदक्षरं वेद विदो वदन्ति ..... प्रयाति परमांगतिम्" यह वाक्य होता,

त्यजन्देहं सयाति परमां गतिमितीदं वाक्यं स्यात् । तदनुवादकंच द्वादशोक्तं "येत्वक्षर मनिर्देश्यमित्यादिकं स्यात्" । सर्वथाप्यक्षरोपासकानां मूर्द्धन्या नाड्यैव गतिरुपपद्यते । तेषां सर्वेषा मक्षरोपासकानां यदक्षरं वेद विदोवदन्ति नाप्युपपद्यते । यस्तु षष्ठोक्तयोगी "योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान् भजते योमामित्युक्तरीत्या भगवन्तं भजतेयेच महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिता इत्याद्युक्तरीत्या भगवन्तं भजन्ते तेषां सर्वेषांमन्त

और उसीका अनुवादक द्वादशाध्यायोक्त "येत्वक्षरमनिर्देश्यम" इत्यादि वाक्य होता, तो सर्वथाही अक्षरो पासकों काही मूर्द्धन्य नाड़ीसे गति उपपन्न होती, सभी अक्षरो पासकों और भगवद्भक्तों की "यदक्षरं वेद विदः..... इसमें सम्मान्य गति उपपादन नहीं करते।

जो योगि षष्ठाध्यायोक्त "योगि नामपि सर्वेषां.....इस कथित प्रकार से भगवान का भजन करते हैं, तथा जो महात्मानस्तु माम् पार्थ .....इस रीति से जो भगवान का भजन करते हैं उन सभी के अन्तकाल की गति का सूचक "अनन्य चेता सततं" यह अष्टमाध्यायोक्त वाक्य है यह सिद्ध होता

कालगतिसूचनपरं "अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः" इतीदमष्टमोक्तं वाक्यं उपपद्यतेऽस्य वाक्यस्य तदन्तकालगतिपरत्वं अक्षरोपासकान्तकालगतिपरवाक्यानन्तर्यादस्य वाक्यस्य तदनन्तरं च "मामुपेत्य तु कौन्तेय दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः" इत्यस्य स्वप्राप्तभक्तापुनरावृत्तिद्योतकस्य च दर्शनात् अक्षरोपासकान्त-कालस्व-प्रयत्न-साध्य-प्राणोर्द्ध्वनयनाद्यतिक्लेशदोपायप्राप्याक्षरापेक्षया स्वभक्तानां

है। क्योंकि अक्षरोपासक के अंतकाल गतिपरक वाक्य के अनन्तर ही इस वाक्य को उल्लेख किया गया है। और उसके बाद "हमको प्राप्त हुये पुरुष हे कौन्तेय अनित्य दुख के घर इस संसार को प्राप्त नहीं होते क्योंकि वे महात्मा परमसिद्धि को प्राप्त होगये हैं। इस वाक्य से अपने को प्राप्तभक्त की "अपुनरावृत्त" का द्योतन किया है यह देखा गया तथाच अक्षरोपासक को अन्तकालमें अपने प्रयत्न से साध्य प्राण को ऊपर लेजाना आदि अतिकाय-क्लेश को देने वाले उपाय से प्राप्य

स्वत्प्रयत्नं विनैवाऽनायासतः स्वप्राप्ति - सौलभ्यनिर्देशकत्वाच्चाऽस्य वाक्यस्य वक्ष्यति च स्व - भक्तानामनायासतः स्वप्राप्तिं तेषामहं समुद्धर्त्ता भवामीति । सोपि तेषां संसारोद्धारो स्यैव देहस्यावसाने इत्यपि सूत्रयिष्यति "भवामि न चिरात्पार्थ अतऊर्द्ध्वं न संशय" इत्यारभ्यमिति । तदेवं गीताशास्त्रे समानार्थकपूर्वापर वाक्यानामेक-वाक्यता-करणेन सर्वेषामुत्तमाधिकारिणामक्षराद्युपासकानां च मूर्द्धन्या निर्गत्यार्चिरादि-मार्गेणैव गतिरवगम्यते । शुक्लकृष्णो

अक्षर की अपेक्षा आपके भक्तों के अपने प्रयत्न के विनाही अनायास से अपने से प्राप्य परमात्मा का सौलभ्य का निर्देश किया है क्योंकि आगे चलकर के हमारे भक्त को अनायास से ही हमारी प्राप्ति होजाती है इस बात को "तेषा महं समुद्धर्ता" इस वाक्य से सूचित करते हुए वह भक्त इसी देह के अन्त में संसार से उद्धार हो जायगा इस बात को सूचित करेंगे । इस प्रकार से गीता शास्त्र में सामानार्थक पूर्वापर वाक्यों की एक वाक्यता करने से सभी उत्तमाधिकारियों और अक्षरादि उपासकों की मूर्द्धन्य नाड़ी से निकलकर अर्चिरादि मार्ग से गति होती है" यह निश्चय होता है । क्योंकि "शुक्ल कृष्णे गति ह्येते" यहां ब्रह्म विद्या और कर्म के अधिकारियों

गतीह्येते जगतः शाश्वते मते इत्यत्रैव ब्रह्म-विद्याकर्माधिकारिणो जगतः सर्वस्यापि शास्त्र-ज्ञस्य द्विगति-स्मरणात्। उक्तगत्यनधिका-रिणां पापिनां छान्दोग्येजाये स्वम्रिप स्वेति अति-निकृष्ट-तृतीय गति श्रुतेश्च न चतुर्थी गतिः कस्यापि श्रूयते स्मर्य्यते वा नाप्युपपद्यते छान्दोग्यस्यार्चिरादिपरवाक्येनैवोपसंहारात् "न सपुनरावर्त्तते नसपुनरावर्त्तते" इतितथैव सकलश्रुतिगूढार्थ निर्णायकब्रह्मसूत्रात्मक शा-स्त्रेणैवस्याप्यर्चिरादिपरे सूत्रेणोपसंहाराच्चा-

---

के सम्पूर्ण जगत की और सर्वस योगि की दो गतियों का स्मरण किया गया है। तथा उक्त गति के अनधिकारी पापियों की छान्दोग्य में "पैदा होओ, मरो" इस श्रुति मे अति नीच तृतीय गति बताई गई है, इन तीन गतियों के अतिरिक्त चौथी गति न तो कहीं श्रुति में है न स्मृति में है न उपपन्न हो हो सकती है। छान्दोग्य में अर्चिरादि पर वाक्य से उप संहार किया गया है 'न स पुनरावर्तते······" इसी प्रकार सकल श्रुतियों के गूढ़ अर्थ के निर्णय करने वाले ब्रह्मसूत्र में भी "अनावृत्ति शब्दात्······" इस अर्चिरादि पर सूत्र मे ही उप-संहार किया है।

नावृत्तिः शब्ददनावृत्तिः शब्दादिति । यदि ज्ञानिनामन्या कापि गतिः स्यात्तदा तस्याः सर्व-श्रेष्ठत्वात् तत्परेणैव वाक्येणोपनिषच्छास्त्रयो रुपसंहारः स्यान्नार्चिरादिपरेणेतिबोध्यम । भवत्वित्थंगतिभगवदुपासकानामस्माकंतुवैदिकानां तत्त्वमसीथि महावाक्य-जन्याभेद-ज्ञानेन "सद्योमुक्तिरुपपद्यते यो कामो निष्काम आप्त आत्म कामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवनीयंत" इत्यात्मकामस्य प्राणानुत्क्रान्ति श्रुत्यार्चिरादिगत्यनुपपत्तेरिति चेन्न। तत्त्वमसीतिवा-

यदि ज्ञानी को दूसरी भी कोई गति होती, तो उस गति को सर्वश्रेष्ठतया प्रतिपादन करते और उसी गति पर वाक्य से उपनिषद और ब्रह्मसूत्र का उपसंहार करते, अर्चिरादि पर वाक्य से उपसंहार न करते यह जानना चाहिये।

पूर्व पक्ष अब सन्देह करता है कि इस प्रकार की गति भगवत उपासक केलिये है, हम सब वैदिको की तो तत्त्वमस्यादि महा वाक्य जन्य अभेद ज्ञानसे सद्यः मुक्ति "योकामः निष्कामः······नतस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" इस मंत्रसे आत्म काम पुरुष के प्राणो के अनुत्क्रांति बताकर यहांहा लीन हो जाते हैं, अतः हमारी अर्चिरादि के द्वारा हमारी गति उपपन्न नही है। ऐसा यदि आप कहे सो नहीं कह सकते। क्योंकि

क्यस्य विशिष्टाद्वैतार्थपरत्वोपपत्तेः। आत्मकाम-
प्राणानुक्रान्तिश्रुतेरन्यथासिद्धेश्च तत्कथमेति-
चेदुच्यते। सुषुप्तिप्रलययोः साविद्यकस्य जीवस्य
ब्रह्मणि लीनस्य तत्पृथक्त्वादर्शनात् सुषुप्ति-
प्रलयकालावसाने च ततस्तन्निःसरणश्रवणात्त-
थैवानुभवाच्च। मध्येप्यंतर्याम्यधीनत्वात् भग
वदधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्युपपत्ते जीवस्य तदपृथ-
क् सत्ताकत्वेन प्राणाधीनस्थितिप्रवृत्तीन्द्रियाणां
प्राण शब्दव्यपदेशेन प्राणरूपत्ववत् जीवस्य-

तत्वमस्यादि वाक्य अद्वैत परक नहीं है किन्तु विशिष्टाद्वैत परक है। और "आत्मकामः····· प्राणानुक्रामन्ति यह श्रुति दूसरे प्रकार से सिद्ध है। सो किस प्रकार से सिद्ध है सो बताते हैं। सुषुप्ति और प्रलय कालमें अज्ञानी जीवके जो कि ब्रह्ममें लीन है उसका पृथक् दर्शन हो नहीं सकता, सुषुप्ति और प्रलय काल के अवसान में भी उस ब्रह्म से ही निकलना श्रुति ने प्रतिपादन किया है और ऐसाही अनुभवभी है, अतः मध्य में भी अन्तर्यामि के आधीन होनेसे जीव की सर्वथा भगवत् आधीनही स्वरूप की स्थिति प्रवृत्ति की उपपत्ति है। जीवकी ब्रह्म से भिन्न सत्ताके न होने से प्राणों के आधीन स्थिति प्रवृत्ति वाली इन्द्रियों को प्राण शब्द से कहने से कारण जैसे प्राण रुकता है उसी प्रकार जीव के भगवत शब्द वाच्यत्व

भगवच्छब्दव्यपदेश्यत्वं तद्रूपत्वं च तद्व्याप्यतया च शरीरस्थितिप्रवृत्योर्जीवाधीनत्ववत् चिदचित्स्वरूपस्थितिप्रवृत्योः परमात्माधीनतया तदपृथक् सत्ताकत्वेन तद्रूपत्वं च जीवस्य मत्वा तादृशज्ञानोपदेशाय तत्वमस्यादिवाक्यप्रवृत्तिरभूदिति तत्प्रकरणपूर्वापरवाक्याविरुद्धार्थविचारादवगम्यते। तथाहि। छान्दोग्येषष्ठप्रपाठके "श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तँ हपितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सौम्यास्मत्कुलीनोनब्रह्मबन्धु नूच्य रिव भवतीति सह द्वादशवर्ष उपेत्य

है, और तद्रूपता भी है क्योंकि जैसे जीव के व्याप्य शरीर की स्थिति प्रवृत्ति जीव के आधीन है उसी प्रकार चित् और अचित् की स्वरूपस्थिति प्रवृत्ति परमात्मा के आधीन होने से उससे पृथक् सत्ता के अभाव से ब्रह्मरूपता जीव की मानकर ऐसे ज्ञान का उपदेश देने के लिये "तत्वमस्यादि" वाक्य की प्रवृत्ति हुई, यह बात उस प्रकरण के पूर्वापर वाक्यों के अविरुद्धार्थ विचार से जानी जाती है।

तथाहि—छान्दोग्यषष्ठप्रपाठ (अरुण कुलोत्पन्न एक श्वेतकेतु था, उससे पिताने कहा! कि हे श्वेतकेतु तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो क्योंकि हे सौम्य! हमारे कुल का अविद्वान

चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामनाः अनूचानमानीस्तब्ध एयाय तं हपितोवाचश्वेत-केतो यन्नुसोम्येदं महामनाः अनूचानमानीस्त-ब्धोस्युततमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति । यथा सौ-म्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिके-त्येव सत्यं । यथा सौम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो

ब्रह्मबन्धु की तरह कोई नहीं भया । बारह वर्ष वाला वह बालक ब्रह्मचर्य में प्राप्त होकर २४ वर्ष की अवस्थामें सब वेदों को पढ़कर बड़ा मनस्वी अपने को बड़ा व्याख्याता का अभि-मानी और स्तब्ध होकर पिता के पास आया । उसे पिताने कहा हे श्वेत केतु ! सौम्य ! जो तुम इस तरह से अभिमानी अपनी आत्मा को पंडित माने हुए कृत कृत्य मानते हो तो तुमने उससे उपदेश पूछा था ? जिसके जान लेने से अश्रुत भी श्रुत हो जाता है । और अमत मत होजाता है, जो नहीं ज्ञात है वह भी विज्ञात होजाता है (ऐसा पूछने पर श्वेतकेतु ने कहा) हे भगवन् ! वह आदेश कैसा है । (श्वेतकेतु के पिताने कहा) कि हे सौम्य ! जैसे एक मट्टी के पिण्ड जान लेने पर सबही मृण्मय वस्तु ज्ञात होजाती है । व्यवहारकाही आरंभक विकार

नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् । यथा सौम्यैकेन-नखनिकृंतनेन सर्वं कृत्स्नायसं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृत्स्नायस-मित्येव सत्यं । एवं सोम्य स आदेशो भवतीति न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदि-ष्यन्कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवांस्त्वेवमेतद्ब्रवी-त्विति । तथा सौम्येति होवाच ।१। सदेव सोम्ये-दमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तद्धैक आहुरस-

नामधेय है। वास्तवमें तो मृत्तिका ही सत्य है। हे सौम्य! जैसे एक लोहमणि के ज्ञात हो जाने से सबही लोह मय पदार्थ ज्ञात हो जाते हैं, विकार और नाम केवल व्यवहार का ही आरं-भक है लोह ही सत्य है, जैसे एक नखनिकृंतन के ज्ञात हो जाने पर सम्पूर्ण लोहमय पदार्थों का ज्ञान होजाता है, विकार और नामधेय केवल व्यवहार काही आरंभक है, लोह पिण्ड ही सत्य है, इस प्रकार वह आदेश है॥ ६॥ पुत्रने कहा कि हमारे गुरु लोग इस आदेश को नहीं जानते थे, यदि वे जानते होते तो हमारे लिये अवश्य कहते। इस लिये हे भगवन् आपही हमको उस आदेश को कहिये? पिताने कहा! कि बहुत अच्छा मैं कहता हूं सुनो। इति प्रथम खण्ड। हे सौम्य! यह विभक्त नाम, रूप, बहुत्वावस्थापन्न जगत् सृष्टि के पहले एक अर्थात् अविभक्त नाम रूप होने से एकत्व अवस्था में था और अद्वि-

देवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् तस्मात्दसतः सज्जायत कुतस्तु खलु सोम्येव स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं । तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत (अव्यक्तमक्षरे लीयतेऽक्षरं तमसि लीयते तमः परे देवे एकं भवतीत्यस्यानुरोधात् यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपमित्यादि वाक्यानुरोधाच्च स्वस्मिन् लीनां रोहितादिरूपां प्रकृतिं प्रकटीकृत्य तद्द्वाराकाशवायू सृष्ट्वा तत्तेजोऽसृजत इत्यर्थः) तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपो

तीय अर्थात् दूसरे अधिष्ठाता से शून्य सत्पद वाच्य ही था। कोई कहते हैं कि सृष्टि के पहले एक अद्वितीय असत् ही था उस असत् से सत् की उत्पत्ति हुई। (इस असत् से सत् कार्यवादी नैयायिक मतका खण्डन श्रुति करती है की ?) हे सौम्य ! ऐसा क्यों होताहै कैसे असत् से सत् की उत्पत्ति होती है, अर्थात् असत् से सत् की उत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती है। किन्तु। हे सौम्य ! सृष्टि के पहले एक अद्वितीय सत् ही था। उस सत् ने इच्छा किया कि मैं बहुत हो जाऊं, तब उसने तेज की सृष्टि की, तेज ने इच्छा की कि हम बहुत

सृजत तस्माद्यत्र क्वचन शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजसएव तद्ध्यापो जायन्ते ताः आप ऐक्षंत बह्व्यः स्यामप्रजायेम हीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्वचन वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवति अद्भ्य एव तद्ध्यन्नाद्यं जायते । २ । तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्ति अण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति सेयं तद्रूपा देवतैक्षत हंताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे

होजाऊं तब तेज ने जल की उत्पत्ति करी इससे जहाँ भी कहीं पुरुष शोच करता है तो उसको पसीना आजाता है। इसलिये जल तेज से ही पैदा होते हैं उस जलने इच्छा की कि मैं बहुत होजाऊं तब जल ने अन्न को उत्पन्न किया । इसीलिये जहां कहां जल वर्षता है, वहीं बहुत अन्न पैदा होता है। अतः जलसे ही अन्न पैदा होते हैं। इति दूसरा खण्ड । इन सब भूतों के तीन बीज होते हैं अण्डज, जीवज, और उद्भिज्ज इस सत्पद वाच्य देवता ने इच्छा किया, कि इन तीन देवता में इस जीव रूप आत्मा से अनुप्रवेश करके नाम रूप व्याकरण करूं उन तेज, जल, और अन्नों के एक एक को त्रिवृत २ किया। उस सच्छब्द वाच्य देवता ने अपने संकल्प के अनुसार, तेज, जल, अन्नमय देवताओं में जीवरूप से प्रवेश कर नाम रूप को व्याकरण

व्याकरवाणीति तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकांकरवाणीति सेयं देवता इमास्तिस्रोदेवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोत् यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत् त्रिवृदेकैका भवन्ति तन्मे विजानीहीति । ३ । यदग्नेरोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नाम-

---

किया, और उनको एक २ को त्रिवृत् २ किया। हे सौम्य! जिस प्रकार यह तीनों देवता एक २ त्रिवृत् २ होगया है। उसको हम बताते हैं सुनो। इति तीसरा खण्ड। अग्नि का जो यह शुक्ल (लोहित) रूप है वह तेज का है और यह शुक्ल रूप है वह जल का है जो कृष्ण रूप है वह अन्न का है। अग्नि का अग्नित्व (अग्नि का धर्म) दूर कर दिया जाय तो विकार और नामधेय व्यवहार मात्र है। इसे तीन ही रूप सत्य हैं। तात्पर्य यह है कि जो पामर अग्नि को तेज, जल, अन्नादि की अवस्था से भिन्न पदार्थ मानते हैं, वह मानना भूल है, वस्तुत तो द्रव्यत्रय सामूहिक अवस्था को ही अग्नि कहते हैं। सूर्य का जो लोहित रूप है। वह तेज का है, जो शुक्ल है वह जल का है, जो कृष्ण है वह अन्न का है। तेज, जल, अन्न, में आदित्य के अवस्था नाशक सामग्री के संनिधान होनेपर आदित्य

धेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यं यदादित्यस्य रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत् कृष्णं तदन्नस्य अपागादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यं यच्चन्द्रमसो रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यं यद्विद्युतो रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं

अवस्था का नाश होजाता है, इसलिये विकार और नामधेय व्यवहार मात्र है, वास्तव में तीन ही रूप सत्य है। चन्द्रमा का जो लोहित रूप है वह तेज का है, शुक्लरूप जलका है, कृष्णरूप अन्न का है। चन्द्रत्वावस्था नाशक सामग्री के उपस्थित होनेपर चन्द्रावस्था नष्ट होजाती है, अतः विकार और नाम धेय वचन पूर्वक व्यवहार मात्र के लिये है। तेज जल, अन्न, स्वरूपही चन्द्रमा है यही सत्य है जो विजली में लोहित रूप तेज का है, शुक्ल जल का है, कृष्ण अन्न का है, बिजली के विद्युत्वावस्था के नाश होजाने पर विकार और नाम धेय व्यवहार मात्र के लिये है। 'उपादान से उपादेय भिन्न नहीं होता, इस स्वरूप के जानने वाले महा गृहस्थ सर्व वेदान्त वेत्ता पूर्वाचार्यों ने कहा है। तेज, जल, अन्न के जानने वाले

तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणी-त्येव सत्यं एतद्धस्म वै तद्विद्वांस आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुत-ममतमविज्ञात मुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो वि-दांचक्रुर्यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूप-मिति तद्विदांचक्रुर्यदुशुक्लमिवाभूदित्यपां रूपमिति तद्विदांचक्रुर्यदुकृष्णमिवाभूदित्यन्न-स्य रूपमिति तद्विदांचक्रुर्यदविज्ञातमिवा भूदित्येतासामेवदेवतानां मिश्रीभावः समासइति तद्विदांचक्रुर्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रोदेवताः

हम लोगों के वास्ते उक्त त्रिकुटी से अतिरिक्त अश्रुत, अमत, अविज्ञात वस्तुको कोई भी उदाहृत नहीं करेगा। यह सम्पूर्ण जगत् तेज, जल, अन्न, से ही बना है, ऐसा उनलोगोंने जाना क्योंकि जो लोहित रूपकी तरह दिखाई पड़ा, वह तेज का रूप है, ऐसा उन्होंने जाना। और जो शुक्ल रूपकी तरह भासित हुआ वह जलका रूप है, ऐसा जाना। जो कृष्ण रूपकी तरह भासित होता है, वह अन्न का रूप है, ऐसा जाना। जो भी उन लोगों को अविज्ञात हुआ वह इन तेज, अप, अन्न देवताओं के समास रूपही है, ऐसा जाना। हे सोम्य ! यह तीनों देवता पुरुष

पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानी-
होति ॥ ४ ॥ अन्नमशितं त्रेधा विधीयते
तस्य यः स्थविष्टोधातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्य-
मस्तन्मांसं योणिमस्तन्मनः । आपः पीतास्त्रेधा
विधीयन्ते तासां योस्थविष्ठोधालुस्तन्मूत्रं भवति
यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः तेजो-
ऽशितन्त्रेधा विधीयत्ते तस्य यः स्थविष्ठोधातु-
स्तदस्थि भवति योमध्यमः स मज्जा यो योणि-

को प्राप्त होकर एक २ जिस प्रकार त्रिवृत २ होजाता है, उसको हमसे सुनो······इति चतुर्थ खण्ड। खाया हुआ अन्न तीन प्रकार से परिणत होता है, उसका जो मोटा भाग होता है वह पुरीष होजाता हैं, और जो मध्यम भाग है वह मांस होताहै, तथा जो सूक्ष्म भाग है वह मन होता है। अर्थात् अन्न का सूक्ष्म अंश मनका आप्यायक होताहै। पिया हुआ जल तीन रूप से विभक्त होता है, उसका स्थूलांश मूत्र मध्यमांश लोहित और सूक्ष्मांश प्राणका आप्यायिक होता है, इसी प्रकार खाया हुआ तेज (तैल घृतादि) तीन रूप से विभक्त होता है, उसका स्थू-लांश हड्डी, मध्यमांश, मज्जा और सूक्ष्मांश वाणी का आप्यायिक होता है। हे सौम्य! इस प्रकार से अन्नमय मन है, जलमय प्राण, और तेजोमयी वाणी है। इसने पिता के उपदेश को सुन कर श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन्! फिरभी हमको विज्ञापन

ष्ठः सा वागन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ५ ॥ दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स उद्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवत्येवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स उद्ध्वः समुदीषति तन्मनोभवत्यपांसो सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स उद्ध्वः समुदीषति स प्राणोभवति तेजसः सोम्याश्यमानस्य योऽणिमा स उद्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति अन्नमयं हि सोम्य मनः आ-

---

कीजिये, अर्थात् पुनः दृष्टान्तों के द्वारा इसी अर्थ को दिखाइये। पिताने कहा बहुत अच्छी बात है। इति पंचम खण्डः। पिताने कहा हे सौम्य! दही के मथनेपर जो सूक्ष्म अंशहै वह ऊपर चला आता है वही घृत होता है, इसी प्रकार हे सौम्य! खाये हुए अन्न का जो सूक्ष्म भाग ऊपर को चला आता है वह मन होजाता है, अर्थात् मनका आप्यायिक होजाता है, पिया गया जलका अणिमांश जो ऊपर चला आता है, वह प्राण का आप्यायिक होता है, खाये हुए तेज का अणिमांश जो ऊपर चला आता है, वह वाणी का आप्यायिक है, इसलिये हे सौम्य! मन को अन्न मय, प्राण को आपोमय, वाणी को तेजोमय कहते हैं। श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् पुनः इस अर्थ को दृष्टान्त से

पोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ६ ॥ षोडशकलः सोम्य पुरुषः पंचदशाहानि माशीः काममपः पिबाऽऽपोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यत इति स ह पंचदशाहानि नाऽऽशाऽथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सोम्ययजूंषि सामानीति स होवाच न वैमा प्रतिभांति भो इति। तं होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोंगारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोपि न बहु दहेदेवं सोम्य ते

समझाइये। पिताने तथास्तु कहकर कहना आरंभ किया—इति षष्ठ खण्डः। हे सोम्य! षोड़श कला वाला यह पुरुष है; तुम पन्द्रह दिन तक मत खाओ, जल को पूर्णतया पीते रहो, जलके पीने से जलमय प्राण का विच्छेद नहीं होगा, ऐसी पिता की आज्ञा को सुनकर श्वेतकेतु ने पन्द्रह दिन तक भोजन नहीं किया, सोरहवें दिन पिता के पास आया और कहा कि हे भगवन्। मैं क्या कहूं, पिता ने कहा हे सौम्य! कंठस्थ किये हुये, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद को सुनाओ, इस आज्ञा को सुनकर पुत्र ने कहा कि हे पिताजी वेद हमको इस समय भासित नहीं होते हैं। पिताने पुत्र से कहा—हे सौम्य! जैसे बहुत इंधन से जलती हुई अग्नि के शान्त हो जाने पर केवल एक

षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टा स्या-
त्तयैतर्हि वेदानानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्य-
सीति सहाशाथहै न मुपससाद तं यत्किञ्च
पप्रच्छ सर्वं ह प्रतिपेदे। तं होवाच यथा सोम्य
महतोऽभ्याहितस्यैकमंगारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं
तं तृणैरुपसमाधाय प्राज्वलयेत्तेनेत ततोऽपि बहु-
दहेदेवं सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाति
शिष्टाभूत् साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीत्तयै-

छोटी सी चिनगारी रह जाती है उससे बहुत इंधन ही जलता है, इसी प्रकार हे सौम्य ! यह मन षोड़श कला वाला है तिसमें एक कला अवशिष्ट रह गई है, उस एक कला से आप वेदों का अनुभव नहीं कर सकते, इसे अब जाओ पूर्णतया भोजन करो। उसके बाद तुमको वेद सब उपस्थित हो जायेंगे। इसके बाद वह गया और भोजन किया और पिताके पास पुनः आया। पिताने जो २ मंत्र इसे पूछा वह सब मंत्र उसको उपस्थित हो गया। पुन पिताने उससे कहा कि हे सौम्य ! इंधन से बढ़ा हुई अग्नि के शान्त होजाने पर खद्योत मात्र अंगार शेष रह जाने पर उसको तिनकाओं के ऊपर रखकर जलाके तब उससे बहुत जल सकता है इसी प्रकार हे सोम्य ! मन की इस षोड़श कलाओं में से एक कला रह गई है, उसको अन्न रूपी तृण से प्रज्वलित करो, उस प्रज्वलित हुए मनसे समस्त वेदों का अनु-

तर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयं हि सोम्य मनः आप-
मयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजिज्ञा-
विति तद्धास्य विजिज्ञाविति ॥ ७ ॥ उद्दाल-
कोहारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्ते मे
सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम
सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो
भवति तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते स्वं ह्यपीतो
भवति स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं

भव होता है अतः हे सोम्य ! अन्नमय मन, आपोमय प्राण, तेजोमयी वाक् है इस तरह बताने पर उसको ज्ञान होगया। इति सप्तम खण्डः। एक विज्ञान से सर्व विज्ञान की सिद्धि के लिये ब्रह्म व्यतिरिक्त तेजोबन्नात्मक सकल अचेतन वर्गका ब्रह्मोपादेयत्व प्रतिपादनकरके चेतनवर्गके भी ब्रह्मोपादेयता प्रतिपादन करने के लिये प्रस्तुत करते हैं कि आरुणिउद्दालकने श्वेतुकेतु नामक अपने पुत्र से कहा कि हे सौम्य ! हमसे स्वप्नान्त (सुषुप्ति) को जानो । स्वप्नान्त उस को कहते हैं कि जिस अवस्था में यह पुरुष सोता ह यह कहा जाता उसीको स्वप्नान्त कहते हैं, उस समय यह जीवात्मा सत् के साथ संगत होजाता है । विभक्त नामरूपात्मक ब्रह्म अविभक्त नाम रूप वाला होजाता है, इसीलिये 'स्वपीति' ऐसा कहा जाता है। क्योंकि स्वपद वाच्य ब्रह्म में लीन होजाताहै, जैसे पक्षी बंधा हुआ सूत्र से

दिशमतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बंधनमेवो-पाश्रयते एवमेव खलु सोम्य तन्मनो (मन उपा-धिकोजीव) दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनम-लब्ध्वा प्राणं सच्छब्दवाच्यं प्राणमेवोपाश्रयते प्राणबन्धनं हि सोम्य मनः इत्यशनापिपासे मे सोम्य बिजानीहीति यत्रै तत्पुरुषा अशिशि-षति (अशितुं भोक्तुं मिच्छति) नामाप एव तद-शितं नयन्ते तद्यथा गोनायोश्वनायः पुरुषनाय

प्रत्येक दिशा में दौड़ता है परंच दूसरी जगह कहीं स्थान न प्राप्तकर बंधन का ही आश्रयण कहता है इसी प्रकार हे सोम्य ! यह मन औपाधिक जीव प्रत्येक दिशा में दौड़कर भी अन्यत्र घर न पाकर प्राण काही आश्रयण करता है, क्योंकि हे सौम्य ! मन का प्राण ही बंधन है हे सौम्य ! हमारे वाक्य से भूख, और प्यास को समझो। जिस समय "यह पुरुष भोजन करता है" ऐसा लोग जिसको कहते हैं, उस खाये हुए पदार्थ को जल जीर्णता को प्राप्त करके रस रूप से शरीर भाव को प्राप्त कर देते हैं, इसीलिये खाया हुआ पदार्थ पच जाने पर पुनः खाने की इच्छा हो जाती है। जैसे गौ, को ले जाने वाला गो-नाय कहा जाता है, अश्व का लेजाने वाला अश्वनाय, पुरुष को ले जाने को पुरुष-नाय कहते है, इसी तरह (आशित खाये हुए पदार्थ) ले जाने वाले जलको स्नाय कहते हैं। जलसे रसभाव

इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतं कार्यं तच्छुंगमुत्पतितं सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यति तस्य क्वमूलं स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुंगेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्यशुंगेनतेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः। अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोना-

---

को प्राप्त हुए अन्न में उत्पन्न शुंग सदृश इस शरीर को कार्य रूप से जानो, यह शरीर भी अमूलक नहीं है, अर्थात् इस शरीर रूप कार्य का भी कोई कारण अवश्य है। अन्नके विना दूसरा कौन कारण हो सकता है? क्योंकि अन्नही परिणत होता हुआ शोणित, मज्जादि अवस्थाको प्राप्त होकर शरीर पद वाच्य होजाता है। हे सौम्य! जैसे शरीर रूप कार्य से अन्न रूप कारण का निश्चय हुआ, इसीप्रकार अन्न रूप कार्य से जल रूप कारण का निश्चय करो, और जल रूप कार्य से तेजो रूप कारण का निश्चय करो, तथातेजरूप कार्य से सन्मूल रूप कारण को जानो। हे सौम्य! यह सबकी सबप्रजा सन्मूलक है, और सतही इनका आयतनहै, और सतमें ही प्रतिष्ठा है। हे सौम्य! जब यह पुरुष पियासा है, ऐसा जब कहा जाता है तब पिये हुए उस जलको तेज परिणत कर देते हैं, जैसे गोनाय, अश्व-

घोश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्टे उदन्येति तत्रैतदेवशुंगमुत्पतितं सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति तस्य क्व मूलं स्याद-न्यत्राद्भ्योऽद्भिः सोम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य (त्रिस्थूलमध्यसूक्ष्मांश विभागैः) त्रिवृत् त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेवभवतीति।

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तँ ह पितोवाचे

नाय, पुरुषनाय, कहा जाताहै। इसी तरह तेज ही "उदन्येति" इस शब्द से व्यवहरित होता है, उसतेज से सुखाये हुए जल में उत्पन्न हुआ यह देहाख्य शुंग को जानो। यह भी विना मूल का नहीं है। जल से भिन्न दूसरा इसका मूल नहीं है। इस तरह हे सौम्य! जैसे-इस शुंग से तेज रूप कारण का निश्चय किया है, उसी प्रकार तेजो रूप कार्य से सत्पद वाच्य कारण का निश्चय करो। क्योंकि हे सौम्य! यह सम्पूर्ण प्रजा सन्मूल, सदायतन, सत्प्रतिष्ठा, वाली हैं। तथा हे सौम्य तेज, जल, अन्न, रूप तीनों देवता पुरुष को प्राप्त होकर एक एक त्रिवृत २ हो जाता है, यह पहलेही कह चुके हैं।'

स्यारभ्य तद्धोक्तं पुरस्तादेवभवतीदेतावत्पर्यंतेन तत्वमसि-वाक्य-पूर्वतनेन ग्रन्थेन श्वेतकेतो वसब्रह्मचर्यं मिति पित्राज्ञापितः सन्द्वादशवर्ष उपेत्य यावच्चतुर्विंशतिवर्षो बभूव तावत्सर्वान् चतुरोपि वेदानधीत्य तदर्थं च बुध्वा अनूचान-मानी अनूचानमनुवचनसमर्थमात्मानं मन्यते इत्येवं शीलं यस्य सोनूचानमानी, तं स्तब्धं गृहमेवायातं तादृशं दृष्ट्वातदपनुत्तये तत्पिता ह्यलकः श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामनाः अ-नूचानमानी स्तब्धोस्युतं तमादेशं आदिश्यते

श्वेतकेतुः हारुणेय आस" यहां से लेकर "तद्धोक्तं पुर-स्तादेव, यहां तक "तत्वमस्यादि वाक्य के पूर्व तन ग्रंथ से श्वेत केतु ब्रह्मचर्य का पालन करो ऐसा पिता से आज्ञप्त हो-कर १२ वारह वर्ष पर्यन्त जबतक वह २४ वर्षका हुआ तब तक चारो वेदों का अध्ययन कर और उनके अर्थों को जान अनु वचन में अपने को परम समर्थ मानता हुआ घर में आया। ऐसे उस अभिमानी पुत्रको देखकर उसके अभिमान को दूर करने के लिये उसके पिता उद्दालकने यह कहा—कि हे श्वेत-केतु! जो तुम इस तरह से महामना अनूचान मानी स्तब्ध हो क्या तुमने उस उपदेश को गुरुओं से पूंछा था कि जिस एक विज्ञान से सबका विज्ञान होजाता है। इस प्रकार से उस श्वेत-

अनेन इत्यादेशः प्रशास्ता स्वगुरुमप्राक्ष्यः पृष्टवानसीत्यादिनैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानबुभुत्सामुत्पाद्याथ तेन तथाभूतेन श्वेतकेतुना कथं नु भगवःस आदेशो भवतीति प्रार्थित उद्दालको यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यादित्यादिना सामान्यतस्तद्विज्ञानमुपदिश्य पुन विशेषन स्तद्विज्ञानाय न वै नूनं भगवन्तः पूजावन्तो मम गुरवो ये ते एतत्त्वदुक्तं वस्तु अवेदिषुर्न ज्ञातवन्तो नूनं यत् यदि ह्यवेदिष्यन् विदितवन्त एतद्वस्तु कथं मे गुणवते भक्ताय

केतु को एक विज्ञान से सर्व विज्ञानकी जाननेकी इच्छा को उत्पादन कियाइस सर्व विज्ञानके जाननेकीइच्छा वाले श्वेतकेतुने "हे भगवन् वह आदेश कौन है" ऐसा प्रार्थना करनेपर उद्दालकने "यथा सौम्य एकेन मृत्पिण्डेन इत्यादि वाक्य से समान रूप से सर्व विज्ञान का उपदेश देकर पुन विशेष रूपसे उस सर्व विज्ञान को बोधन करनेके लिये श्वेतकेतुने उद्दालक से प्रार्थना किया कि हे भगवन् पूज्य हमारे गुरु वर्य। यदि आप से कहे हुए इस उपदेश को जानते होते तो गुरुभक्त मेरे लिये अवश्य करके कहते, अतः उनलोगों से अज्ञात इस वस्तुको आपही हमसे कहिये। जिसको जानकर हमारेमें सर्वज्ञता हो जावे।"

नाविद्यन् नोक्तवन्तः अतस्तदज्ञातं वस्तु भग-
वांस्तु एवमे मह्यंब्रवीतु यज्ज्ञात्वा मे सर्वज्ञता स्या-
दित्येवं प्रार्थितः सोद्दालकः तथैव तद्विशेषबो-
धाय तथा सोम्येति होवाच सदेव सोम्येदमग्र
आसीदित्यारभ्य तद्धास्य विजिज्ञाविति वि-
जिज्ञावितीत्यन्तेदं तात्पर्यमुवाच ।

तत्र च जगन्मूलकारणमच्छब्दवाच्येन म-
हान् अव्यक्ते लीयतेऽव्यक्तमक्षरे लीयतेऽक्षरं
तमसि लीयते तमः परे देवे एकीभवतीति
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णवर्णां बह्वीं प्रजां ज-
नयंतीं सरूपामित्यनयोः श्रुत्योरनुसारात् यदग्ने-
रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लंतदपांयत्कृष्णं

श्वेतकेतुके ऐसी प्रार्थना करनेपर "उद्दालकने विशेष बोध करने केलिये, तथा सौम्येति होवाच सदेव सौम्येद मग्रआसीत्" यहाँ से आरंभकर "तद्धास्य विजज्ञौ" इस ग्रंथ पर्यन्त उपदेश दिया। और उस ग्रंथ में जगत्का मूल कारण सच्छब्द वाच्यसे (महान् अव्यक्त में लीन होता है, अव्यक्त अक्षरमें, अक्षर तममें, तम परदेवतामें एकीभूत हो जाता है लोहित, शुक्ल. कृष्ण, वर्णवाली बहुत सी प्रजाको उत्पन्न करनेवाली अजा, एका, स्वरूप को)

तदन्नस्येत्यादि श्रुत्यनुरोधाच्च स्वस्मिन् लीनां तमः शब्दवाच्यां लोहितादि वर्णामाकाशादि समस्तजगज्जननीस्वेक्षण मात्रेण बहिः कृत्यत- द्वारा सृष्टानां तेजोऽबन्नानां स्वत्रिवृत्कृतानां अण्डजजीवजोद्भिज्जात्मकजगदाकारेणावस्थितां निर्दिश्याथ सेयं देवतेत्युक्तं सदाख्यं ब्रह्म इमास्तिस्रो देवतेयुक्तेषु तेजोबन्नेषु अनेन पूर्वसिद्धेन जीवेन आत्मनाचेतनेन सहानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोदित्युक्त्वाथ यदर्थं पुत्रेणप्रा-

इन दोनों श्रुतियों के अनुसार और "यदग्ने रोहितं रूपम् तेजसस्तद्रूपं" इत्यादि श्रुतियों के अनुरोध से अपने में लीन, तमः शब्द वाच्या, लोहितादि वर्णवाली, आकाशादि समस्त जगतकी जननी प्रकृति को अपने ईक्षण मात्र से अपने से बाहर कर उसी के द्वारा उत्पन्न किये गये, तेज, अप, और अन्न जोकि त्रिवृत कृत हैं और अण्डज, जीवज, उद्भिज्जात्मक, जगत के कारणावस्था का निर्देश करके अथ सेयंदेवता इत्यादि से कहे हुए सत्पद वाच्य ब्रह्मनेईमास्तिस्त्रो देवता इत्यादि से कहे गये, तेज, जल, अन्न में पूर्व सिद्ध जीव रूप आत्मा चेतन के साथ प्रवेश करके नाम, रूप, का व्याकरण किया ऐसा कहकर जिस अर्थ के लिये पुत्र ने उद्दालक से प्रार्थना किया था उस अर्थको प्रत्यक्ष करने के लिये उद्दालकने "यदग्ने रोहितं रूपम् तेजसस्त-

र्थितं सत्प्रत्यक्षीकर्तुं यदग्ने रोहितं रूपं तेज-
सस्तद्रूपमित्यादिना तेजोबन्नानां त्रिवृत्कृतानां
सं स्थानविशेषात्मकस्याग्न्यादित्य-चन्द्र-विद्यु-
तादि-रूपस्य कृत्स्नस्य जगतः तेजआदिकारण-
रूपेण सत्यत्वं उपादानकारणव्यतिरेकेण कार्य-
स्य वाचारम्भणतया नामधेयमात्रत्वादसत्यत्वं
रोहितादीनां तेज आदिरूपाणां सत्यत्वं चोक्त्वा
घटशरावादीनां मृदेव कार्याणां मृद्विज्ञानेन वि-
ज्ञानवत् जगत्कारणतेजआदिविज्ञानेन सर्वं ज-
गद्विज्ञानं प्रत्यक्षीकृत्याथ एतद्ध स्म वै तद्विद्वांस

द्रूपं" इत्यादि से त्रिवृत कृत तेज, जल, अन्न के सं स्थान विशे-
षात्मक अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युतादि, रूप समस्त जगत के
तेज आदि कारण रूप से सत्यत्व उपादान कारण से भिन्न
कार्य के व्यवहार मात्र होने से विकार नामधेय मात्र होने से
असत्यत्व तेज आदि के रोहितादि रूपों के सत्यत्व को कहकर
मट्टी ही एक कारण है जिनकी ऐसे घट शरावादि-
कों के मट्टी के विज्ञान से सब मट्टी के कार्यों का
जैसे ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार जगत के कारण
तेज आदि के विज्ञान से सब जगत का विज्ञान हो जाताहै। इस
बात को प्रत्यक्ष करके "एतद्धस्य वै तद्विद्वांस आहुः" यहांसे

आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोद्य कश्चनाश्रुतमित्यारभ्यैतासामेव देवतानां समासमिश्रीभाव इत्यन्तेन तेजआदिविज्ञानेन सर्व जगद्विज्ञानस्यैव कारणविज्ञानेन सर्व विज्ञानत्वं सार्थाधीतसर्व वेदतदध्यापकबहु-विद्वज्जन सम्मत्या दृढीकृत्य बाह्यकार्य वर्णनं समाप्याथान्नमशितं त्रेधा विधीयत इत्यादि वाक्येन मनसोन्नमयत्वांपो मयत्वं वाचस्तेजोमयत्वमुक्त्वा-थ षोडशकलः सोम्यपुरुष इत्यादि वाक्येनान्वय व्यतिरेकाभ्यां मनस ऋगादि वेदानुभवान-

---

आरंभ कर " एतासामेवदेवतानां समासः" यहां तक के ग्रंथसे तेज आदि विज्ञान से सब जगत के विज्ञान के ही कारण विज्ञान से सब विज्ञान हो सकता है। इस बात को अपने साथ में अध्ययन करने वाले और वेद के अध्यापक बहुत से विद्वानों की सम्मति से दृढ़ करके बाहर के कार्य जात के वर्णन को समाप्त करके "अन्न मासि तं त्रेधा विधीयते" इत्यादि वाक्य से मन को अन्नमयत्व, प्राणको जल मयत्व, वाक को तेजो मयत्व, कहकर षोड़शकलः सोम्य पुरुषः इत्यादि वाक्य से, अन्न के अन्वय व्यतिरेक से मनके ऋगादिवेद के अनुभव और अन्य अनुभव दिखाकर मनको अन्नमय सिद्धकर

नुभवदर्शनेन तस्यान्नमयत्वं निर्दिश्य अन्नमयं हि सोम्य मनः आपोमयः प्राणः तेजोमयीवागितिमन आदीनामन्नादिमयत्वमुक्त्वा चाथोद्दालकोहारुणिः श्वेतुकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं स्वप्नस्यान्तेऽवसाने भवं स्वप्नस्यान्तः समाप्तिर्वा यस्मिन् तत्स्वप्नान्तं सुषुप्तं मे सोम्य विजानीहीत्यादिना मनसः प्राणाधीनत्वमन्नस्या वाग धीनत्व मपस्तेजो धीनत्वं निर्दिश्यानन्तरं जगत्कार्येण लिङ्गेन तन्मूलस्य अन्नस्यान्वेषणं, अन्नेन लिङ्गेन तन्मूलायामन्वेषणं अपशुंगेन तन्मूलस्य तेजसोन्वेषणं तेजसाशुंगेन तन्मूलस्य सतोन्वेषणमुप-

---

"अन्नमयं हि सोम्य मनः इत्यादि वाक्य से मन, प्राण, वाक् को अन्नमय आपोमय तेजोमयका निर्देश करके "अथोद्दालको हारुणिः श्वेतकेतु पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे विजानीह" इत्यादि मंत्र से मनका प्राणाधीनत्व, जलको तेजाधीनत्व को निर्देश करके अनन्तर जगत के कार्य रूपलिंग से तन्मूलक अन्न का अन्वेषण, और अन्न रूपलिंग से तन्मूलक जलका निश्चय कर जल रूप कार्य से तन्मूलक तेज

दिश्याथ सदेव सोम्येदमग्र आसीदित्यारभ्य सन्मूला इत्यस्य पूर्वतनेन ग्रंथेनोक्तमर्थं पिंडीकृत्य ज्ञापयितुं सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः इत्येतैः त्रिभिः पदैः प्रजाशब्दवाच्यस्य चिदचिदात्मकस्याशेषस्य जगतः सदेव सोम्येदमग्र आसीदितीदं शब्द-निर्दिष्टस्येमाः प्रजाः इति स्फुटी कृत्य प्रलया-वसाने सतोनिःसृतत्वेन यज्जान्यत्वात्सन्मूलत्वं स्थितिकाले सदेकरक्ष्यत्वात्तदेकाधारत्वाच्च सदा-यतनत्वं तस्मिन्नेव स्थितिकालेऽहन्यहनि सुषु

का अन्वेषण कर तज रूप कार्य से तन्मूलक सत का अन्वेषण करना चाहिये, ऐसा उपदेश रकर, "सदेव सौम्येदमग्रआसीत्" यहां से आरंभकर "सन्मूला:" यहां तकके पूर्व तन ग्रंथ से कहे हुए अर्थ को समेटकर समझाने के लिये "सन्मूला: सौम्येमाः प्रजाः सदा यतनाः सत्प्रतिष्ठाः" इन तान पदों से प्रजा शब्द वाच्य चिद् चिदात्मक समस्त जगत जो कि "सदेव सौम्यदअग्र आसीत्" इस वाक्य में इदं शब्द से निर्दिष्ट था, "उसीका "इमाः प्रजा:" इस शब्द से निर्देश करके प्रलय के अवसान में सत मे ही सब जगत के निकलनेमे सतमे जाय-मान होने मे सन्मूलकता और स्थिति कालमें एक सतमे रक्ष्य होने से सदेकआधारतय होने मे सदा यतनत्व का निर्देश किया

स्मौ प्रजायाः सदेक विश्रामस्थानत्वात्सदा यतत्वं च। प्रलयकाले तु वृक्षलीनविहंगानामदर्शनवत् सल्लीनत्वेनाद्दष्टानां स्वरूपतोभेदेपि वृक्षैकत्वापन्नविहंगानामिव सदेकत्वमापन्नानामत एव मदेवेति सच्छब्द-व्यपदिष्टानां प्रकृष्टस्थानत्वेन सन्नसत्प्रतिष्ठां तंप्रति त्वंप्रति प्रलयं प्रजा विश्राम स्थानत्वाद्वासतस्तत्प्रतिष्ठात्वं जीवलयाधार शरीरवत् प्रजालयाधारमूर्तित्वाद्वा सतस्तत्प्रतिष्ठात्व मिति संक्षेपेणोपदिश्यानन्तरं तमेवार्थं सर्वथा

और स्थिति कालमें ही प्रतिदिन सुषुप्ति में सम्पूर्ण प्रजा उसी एक सत् में ही विश्राम स्थान का भी निर्देश किया है, इस लिये भी सदायतन है, प्रलय काल में तो वृक्ष में बैठे हुए (छिपे हुए) पक्षियों का जैसे दर्शन नहीं होता उसीप्रकार सत में लीन होने से दिखाई न पड़ने वाली प्रजा के स्वरूपत भेद रहने परभी वृक्षमें एकता को प्राप्त हुए पक्षियों की तरह से सत् के साथ एकत्व को आपन्न अतएव "सदेव सौम्येदमग्र-आसीत्" इस वाक्य में सत् शब्द से कही गई प्रजाके, सत्प्रतिष्ठात्व का सक्षेप से उपदेश देकर (प्रकृष्ट स्थान होनेसे वा प्रलय में प्रजाके विश्राम स्थान होनेसे जीवके लयाधार शरीर की तरह से प्रजाके लयाधार मूर्ति होने से सत् को प्रजाप्रतिष्ठात्व का निर्देश्य है) अनन्तर इसी अर्थ को श्वेतकेतु के प्रति

तंप्रतिबोधयितुं अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयते वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणः तेजसि तेजः परस्यां देवतायां स य एषोऽणिमा एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतइत्यारभ्य तद्धास्य विजिज्ञाविति विजिज्ञाविती त्येदन्तमुवाच। तत्र च नवभिर्वाक्यैर्नवधा कृत्वेममर्थं बोधितवान् तेषु सर्वेषु वाक्येषु स य एषोऽणिमा एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसीत्येतद्भागस्य समानत्वश्रवणात् तद्भिन्नभागस्य दृष्टान्तत्वावचमाच्च तैस्तै दृष्टा-

---

बोधन करने के लिये "अस्य सौम्य पुरुषस्यप्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते (हे सौम्य ! इस पुरुष के मरते हुए वाक मनमें लीन होती है, मन प्राण में प्राण तेज में और तेज पर देवता में लीन होजाता है । ऐसा वह सच्छब्द वाच्य अणिमा है, एतदात्मक यह सम्पूर्ण जगत् है वह सत्य है, वही आत्मा है, हे श्वेतकेतु ! तुमभी तदात्मक हो । यहां से आरंभ कर "तद्धास्य विजज्ञौ" यहाँ तक कहा है, यहां नव, बार वाक्यों से इसी एक विज्ञान से सर्व विज्ञान का बोधन किया है क्योंकि उन नवों वाक्योंमें "स य दोषोऽणिमा पैतदात्ममिदं सर्वं तत सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" इतना भाग समान ही सुना

नैरेतदर्थस्यैव स्फुटीकरणादेतद्भागमात्रार्थोपदेशे तात्पर्यावगमात् स य एष इत्यादि सर्वं वाक्यं मुख्यं न तु तत्वमसीत्येतावन्मात्रमित्यवगन्तव्ये तस्मिन्नेतस्मिन् वाक्ये तत्वमसीति तच्छब्देन किं परामृश्यते तत्पूर्वतनआत्मशब्दवाच्य इति चेन्न स आत्मेति तस्यापि तच्छब्दपूर्वकत्वेन स्वान्य-परामर्शकत्वोपपत्तेः। तर्हि स य एषोऽणिमेत्युक्तः परामृश्यते इति चेन्न समानलिङ्गे योग्ये परामर्शे सन्निहिते सति भिन्नलिङ्गस्य व्यवहितस्य परामर्शानुपपत्तेरत

गया है। इससे भिन्न जो भाग है, वह दृष्टान्त के लिये है, ऐसा जाना जाता है। अतः उन दृष्टान्तों से "उपरितन" इसी अर्थका स्पष्टिकरण दिया गया है अधस्तन भागमात्र के अर्थ के उपदेश में तात्पर्य के अवगम में ही स, य, एष इत्यादि वाक्यों की मुख्यता है। केवल तत्वमसि" एतने मात्र वाक्य में नहीं है।

उक्त वाक्य में "तत्वमसि" यहाँ पर तत् शब्द से किसका परामर्श होता है। यदि पूर्वतन कथित आत्मशब्द वाच्य का परामर्श होता है सो नही कह सकते। क्योंकि "सआत्मा" इसे आत्मा भी तत् शब्द पूर्वकही है अतः अपने से अन्य का पराम-

एतदात्म्य मित्युक्तोर्थस्तेन परामृश्यते इति वाच्यं परामर्श्य परामर्शकयोः समानलिङ्गत्वात् इदं सर्वमित्युक्तस्य जगतोऽन्तर्गतत्वात् श्वेतकेतोरपि सर्वजगत्सामान्यधर्मवत्त्वेन श्रुत्युक्तसर्वजगत्साधारणसाम्यतदात्म्यत्वोपपत्तेश्च । तत्रैवं सति-स य एषोऽणिमा स आत्मा एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं तत्त्वमसीत्येवमन्वय उपपद्यते । तत्रापि शब्दानामनेकार्थत्वेनात्मशब्दस्याप्यनेकार्थत्वोपपत्तेः तत्तच्छब्दार्थप्रकाशकेषु मध्येश्रुतीनां स्वतन्त्र प्रमाणत्वाच्च सदेव सोम्येति वचनस्य

र्शक होगा । यदि कहो कि "स य एषोऽणिमा" इस पद मे कहे गये का परामर्श होगा ? सो नहीं कह सकते । क्योंकि समान लिङ्गमें योग्य परामर्श के योग्य सन्निहित रहने पर भिन्न लिङ्ग व्यवहित (दूरस्थ) का परामर्श नहीं हो सकता अतः "एेतदात्म्यं" एतद्रूप्रद वाच्य" का परामर्श होगा । परामर्शी और परामर्शकमें समान लिङ्ग होने से इदं सर्वं, इसे कहे गये जगदन्तर होने से । श्वेतकेतु के भी सर्वजगत समान धर्म वाला होने से श्रुति से कहे गये

इस प्रकार परामर्श करने पर "स य एषोऽणिमा स आत्मा एेतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं तत्वमसि" एेसा ही अन्वय उपपन्न होता है । वहां पर शब्द अनेकार्थक होने से आत्म शब्द

एकमेवेत्यस्य च सत्प्रतिष्ठाः प्रजाइत्यस्य च तेजः परस्यामित्यस्य च श्रुतिवचनस्यानुरोधात् सत्सदाख्यः य एषोऽणिमा परदेवताशब्दाभिहितः एतदात्म्यं एषः आत्मा आधारः संहर्त्ता सर्वजगदाहृत्य स्वस्मिन् लयकर्ता यस्य सर्वस्यचराचरात्मकस्य जगतस्तदेतदात्म्य एतदात्मैवैतदात्म्यमिदं सर्वं अत्र सदेव सोम्येदमित्युक्तं । इदं शब्दस्य विवृणोति सर्वमिति सल्लीनत्वेन सदधीनस्वरूप स्थितिप्रवृत्तीत्यर्थः । पुनश्च तदैक्षत एकोहं बहुस्यांतत्तेजोऽसृजदित्यस्य सन्मूलाः सोम्येमाः

को भी अनेकार्थ उपपन्न होता है तत् तत् शब्द के अर्थ के प्रकाशको के मध्यमें श्रुतियों को स्वतन्त्र प्रामाण्य हैं। सदेव सौम्य" इस वचन के और एकमेव इस वचन के सत्प्रतिष्ठा प्रजा" इसके और तेज परस्याम्, इस श्रुति के वचन के अनुरोध से वही सत्पद वाच्य, और य एषोऽणिमा पर देवता आदि शब्दों से कथित एतदात्म्यं, अर्थात् यही आत्मा आधार है। सब जगत को संगृहितकर अपने में लीन करने वाला, सम्पूर्ण चराचर आतमक जगत का वही एक आत्मा है, तदामक ही सम्पूर्ण जगत है यहां पर पूर्व में जो सदेव सोम्येदं करके कहा गया था उसीका विवरण सर्व इस पद से कहा गया है। क्यों कि सत में लीन होने से सत के आधीन ही स्वरूप स्थिति

प्रजा इत्यस्य च वचनस्यानुरोधात् स सदाख्योय एवोऽणिमा परदेवताख्य आत्मा उत्पादकः स्रष्टा यस्य तदेतदा त्म एतदात्मै वैतदात्म्यमिदं सर्वं तदेक स्रष्टत्वेनापि तदाधीन स्वरूपस्थिति प्रवृत्ती त्यर्थः । पुनश्च सदाय तनाः सर्वाः प्रजा इत्यस्या नुरोधात् हंताहमिमास्ति स्रोदेवता अनेन जीवे नानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीत्यस्यापितद-र्थत्वाच्च अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानामिति एष एव साधुकर्मकारयति य मूर्द्धवंमुन्निनीषती-त्यादि श्रुत्यन्तराच्च एष सदाख्य आत्मा प्रति सुषुप्तं सर्व विश्रामस्थानं जाग्रति च सर्वस्य तत्तत्कर्मसु प्रवर्त्तकोयस्य तदेतदात्म एतदात्मै-वैतदात्म्य मिदं सर्वं तदेकप्रवर्त्यत्वेन तदधीन

प्रवृत्ति वाला सम्पूर्ण जगत है । पुनश्च "तदैक्षत, एकोहं बहुस्याम, तत्तेजोऽसृजत, इसके और सन्मूला सौम्ये इमा प्रजाः" इस वचन के अनुरोध से वही सदाख्य ब्रह्म जो कि एषोऽणिमा पर देवता वाच्य है । वही आत्मा अर्थात् उत्पादक है । अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत सदेक स्रष्ट होने से सदाधीन स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति है । पुन. एतदात्म्य शब्द का सदा यतनाः

स्वरूपस्थितिप्रवृत्तीत्यर्थः। एवं सर्वस्य इदं शब्दनिर्दिष्टस्य चराऽचरात्मकस्य जगतः सत्सृष्टत्वादिना सर्वदा तदधीन स्वरूपस्थिति-प्रवृत्तिकत्वं निबोध्य श्वेतकेनोऽपि तथा भूतजगदन्तर्गत्वात्तद्धर्मकत्वं ज्ञापयति तत्त्वमसीति तत् एतदात्म्यं सत्सृज्यत्वादिधर्मवत्त्वेन तद-धीनस्वरूपस्थितिप्रवृतिकत्वमप्यसीत्यर्थः। न-न्वीश्वरकर्तृकजगत्सृष्ट्यादेः प्रसिद्धत्वात् वा

इस वचनके अनुरोध से हंताह मिमास्ति स्त्रो देवता इसके अनु-रोधसे और अन्तः प्रविष्टः शास्त जनानां, एषएव साधुकर्म कारयति यं उर्ध्वं निनीषति इत्यादि श्रुत्यन्तरों से यह सदाख्य आत्मा सुषुप्ति अवस्था में सबका विश्रामस्थान और जागृति अवस्थामें सबकी तत् तत् कर्मों में प्रवर्त्तक होनेसे एतदात्मक जगत है अर्थात् सदेक प्रवर्त्तकतामे सम्पूर्ण जगत सदाधीन स्वरूप स्थिति प्रवृति वाला है।

इसप्रकार इदं शब्द निर्दिष्ट सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत के सत् से सृष्टित्वादि होनेसे सर्वदा सत केही आधीन स्वरूप स्थिति प्रवृति है, ऐसा बोधन करके श्वेतकेतुकेभी तथा भूत जगतके अन्तरगत होनेसे तत् धर्मकता को ज्ञापन करता है तत्वमसि यह वाक्य। अर्थात् तत् माने एतदात्म्यं,, सत्पद वाच्य से उत्पत्ति धर्मक होनेसे सतके आधीन स्वरूप स्थिति

क्यान्तर ज्ञातत्वात् अनेन वाक्येन कि मपूर्व ज्ञापितं येनानधिगतार्थबोधक कत्वे नास्य प्रामाण्यं स्यादिति चेत् औपाधिक स्त्रष्टभोग-दात् नियंतृमात् पित् स्त्री राजादिवास्तव शप-त्वं मन्यमानं प्रति इश्वरैक सृष्टत्वादिना तन्नि-त्यनियम्यत्वे न च तत्प्राप्यत्वे न च तन्निरुपाधिक शेषत्वं सर्वजगन्निष्ठं श्वेतकेतुनिष्ठं चानेन वाक्येन ज्ञापितमित्यवगम्यते कथमितिचेत् यथा क्षेत्रावपनादिनायं क्षेत्र्यस्य क्षेत्रस्य स्वामी। इति निश्चीयते तथा जगत्सृष्ट्यादि व्या

प्रवृति वाले तुम हो, ऐसा ज्ञापन किया, यही तत्वमसि स्वरूप का अर्थ होता है।

अब सन्देह करते हैं कि ईश्वर कर्तृक जगतकी सष्टि प्रसिद्ध है और दूसरे वाक्यों से ज्ञातही है, तब इस वाक्य से किस अपूर्व अर्थका ज्ञापन कियाकि जिस ज्ञापनसे अप्राप्त अर्थ के बोधन करने से इस वाक्य को प्रमाण्य हो ?। उत्तर करते है। औप्राधिक सृष्टि कर्तृत्व, भोग दातृत्व, नियन्तत्व, और माता पिता, स्त्री, राजादि के वास्तव से सत्व को मानने वाले के प्रति एक ईश्वर से ही यह सम्पूर्ण जगत श्रेष्ठ है, इस कथन से ईश्वर नित्य नियम्य होनेसे और तत्प्राप्य होनेसे ईश्वर निरु

पारैरयं जगत्स्वामीति निश्चेतुं शक्यत्वात् सृष्ट्यादीनामनादित्वेन तत्स्वामित्वशेषत्वयोरप्यनादित्वोपपत्तेश्च । सृष्ट्याद्यौपाधिकमिति चेन्न अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां वह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपां । अजोह्येषोजुषमाणोनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः । गौरनाद्यंतवती सा जनयित्री भूतभाविनी । एष सर्व भूतान्तरात्मा अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां, प्रकृतिं पुरुषं चैवविध्यनादी उभावपीत्यादिश्रुतिस्मृतिषु चिदचिदीश्वराणामजत्वेन नित्यत्वश्रवणात्

पाधिक शेषता सम्पूर्ण जगत में है, और श्वेतकेतु में भी है; इस वाक्य से यही ज्ञापन दिया है; यह जाना जाता है। कैसे जाना जाता है? जैसे क्षेत्र के काटने से खेत का काटने वाला ही क्षेत्रका स्वामी है यह निश्चय होता है, उसी प्रकार जगत के सृष्ट्यादि व्यापारों से यह जगत का स्वामि है, यह निश्चय होसकता है। सृष्ट्यादिकों के अनादि होनेसे ईश्वर में स्वामित्व और जगत में शेषत्वभी अनादि सिद्ध होता है। यदि कहो कि सृष्ट्यादिक औपाधिक हैं? सो नहीं कह सकते।
क्योंकि "अजामेकां······अजोह्येषोजुषमानः······गौरनाद्यंतवती······एष सर्व-भूतान्तरात्मा······प्रकृति पुरुषं चैव···

जीवानामीश्वरनियम्यत्वश्रवणाच्च । नित्यानां नियंतृनियम्यसम्बन्धस्यापि नित्यत्वोपपत्तेस्तत्स्वामित्वशेषत्वयोरपि नित्यत्वेन वास्तवत्वोपपत्तेः ।

न च देवतान्तराऽमृतत्ववचनवदिदमपि प्रकृतिपुरुषविषयमजत्ववचनं सापेक्षिकमिति वाच्यं तयोरजत्वेन सादित्वे विषमसृष्टिकृतेश्वरवैषम्यनैघृण्ययोर्दुर्निवारात् । जीवतत्कर्मणां

इत्यादि श्रुति स्मृतियों में चित्, अचित् और ईश्वरके अज होने से नित्यत्व का श्रवण है । और जीवों के ईश्वर नियमत्व का भी श्रवण है, नित्यों का नियंतृ, नियमत्व, सम्बंध भी नित्यही होगा, और नित्यों का स्वामित्व शेषत्व सम्बन्धके नित्य होनेसे वास्तवही है यह सिद्ध होता है । यदि यह सन्देह करो कि जैसे देवतान्तरो में अमृतत्व का वचन है अर्थात् जैसे अन्य देवता अमर पद से भी कहे जाते व उनका अमृतत्व सापेक्षिक है, अर्थात् मनुष्योंकी अपेक्षा देवशरीर बहुत काल तक रहता है । इसी लिये मनुष्योंके अपेक्षा उनको अमर कहते हैं इसी प्रकार प्रकृति और पुरुषको अजतया प्रतिपादन करनेवाला वचनभी सापेक्षिक है । अर्थात् ब्रह्मादिकों के अपेक्षा वे बहुत कालतक रहते है । सो नहीं कह सकते । क्योंकि प्रकृति पुरुषके अजत्व को यदि सापेक्ष मान लेंगेतो विषम सृष्टि करनेवाले ईश्वरमें वैषम्य, नैर्घृण्य नामक दो दोष अवश्य करके आजायेंगें । जिसका

निरपेक्षाऽनादित्वमङ्गीकृत्यैव तद्वैषम्यनैर्घृण्यापाकरणाच्च । सूत्रकारेण न वैषम्य-नैर्घृण्येन सापेक्षत्वादिति न कर्मणामनादित्वादिति चाभ्यां । किंच यथा राज्ञो ऽत्यन्त भिन्नस्य भृत्यस्य तच्छेषत्वं न तथा जीवानां किन्तु सदाऽविनाभूतानामेवेदमपि एतदात्म्यमिदमिति वचनादवगम्यते । कथं एष चासावात्मा च एतदात्मा तस्य भावः ऐतदात्म्यं एतदात्म-प्रकारभूतं गोः प्रकारस्य गोत्वस्य तदपृथक्सिद्धिवत् तत्प्रकारत्वेन तदपृथक्सिद्धमिदं सर्वत्वमपीत्यर्थः ।

निवारण होही नहीं सकता है । क्योंकि जीव, और जीवके कर्मों को निरपेक्ष अनादि मानकरके ही ईश्वर के वैषम्य नैर्घृण्य दोष का अपाकरण किया है । भगवान श्रीवेद व्यास जीनेभी "नवैषम्य नैर्घृण्येऽनसापेक्षत्वात्, न कर्मणामनादित्वात्, इन दो सूत्रों से उपरोक्त विषय का ही प्रतिपादन किया है ।

किंच जिस प्रकार राजासे अत्यन्त भिन्न सेवक के राज शेषत्व है उस प्रकार से ईश्वर शेषता जीवों में नही है । किन्तु सदा (अविनाभूत, कभी भी अलग न होने वाले) जीवों को ही ईश्वर शेषता है, यह बातभी "एतदात्म्यं" इस पद से ज्ञात होती है । क्योंकि, एष चासौ आत्मा च एतदात्मा तस्य भावः

तदेतदेतदात्म्यं नोपाधिकं किन्तु वास्तवमि-
त्याह तत्सत्यमिति तदेतज्जीवानां परदेवशेषत्वं
सत्यमबाधितमित्यर्थः । तथा च यथा राजा
भृत्यस्य यथा चाचार्य आचार्याभिमानिनः
शिष्यस्य यथा च जीवः स्वाधीनस्य शरीरस्य यो-
गक्षेमौ करोति तथा मत्स्वामी मच्छरीरी परमात्मा-
वश्यं ममैहिकपारलौकिकयोगक्षेमौ करिष्यतीति
दृढ़ विश्वासेन निर्भरो निर्भयः सन् भगवदेक-
चिन्तनपरो यो भविष्यति तस्यैहिकं पारलौकिकं
च योगक्षेमं स सत्यप्रतिज्ञो भगवानवश्यं करि-

ऐतदात्म्यं एतदात्म प्रकार भूतं, ऐसी व्युत्पत्ति करने से गौ का प्रकार (गौ का विशेषण) गोत्व, जैसे गौ से अपृथक् सिद्ध है। उसी प्रकार सत् प्रकारक होनेसे यह सम्पूर्ण जगत् सत् से अपृथक् सिद्ध है। इसलिये यह ऐतदात्म्य औपाधिक नहीं है; किन्तु यथार्थ वास्तविक है। यह तत् सत्यम् इस पद से निश्चय किया है इस प्रकार सब जीवों में परमात्म-शेषत्व सत्य है। इसका कभी बाध्य नहीं होसकता।

तथाच—जैसे राजा अपने सेवक का आचार्य आचार्याभिमानी शिष्य का जीव अपने आधीन शरीर का योग क्षेम करता है। उसी प्रकार हमारा स्वामि हमारा शरीरी, परमात्मा

ष्यतीतिगीताकारवचनादवगम्यते "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषांनित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्मित्येतस्मात्।

ननु सदेवेत्यवधारणात्, एकोहं बहुस्यां प्रजायेयेत्येकस्य बहु .भवनत्वश्रवणाच्च सत एवाज्ञानमाश्रित्य जीवत्वं प्राप्य विस्मृतस्वरूपत्वेन संसरतो वास्तवं स्वरूपं बोधयति श्रुतिस्तत्त्वमसीति। यथा सोम्येकेन मृत्पिण्डेनेत्यादि निदर्शनैरपि ब्रह्मात्मैकत्वज्ञापनात् तत्तेजोऽसृजदित्यादि सृष्टिवाक्यानामपि घटादिदृष्टा-

---

भी अवश्य करके हमारे ऐहिक, और पारलौकिक योगक्षेमों को करेगा। ऐसे दृढ़ विश्वास से निर्भर और निर्भय हुआ, भगवान काही एक चिंतवन करने वाला जो होगा उसके लौकिक-पारलौकिक दोनों ही योगक्षेमो को सत्य प्रतिज्ञ भगवान अवश्य करेंगे। यह गीता के वचनोंसे जाना जाता है। "अनन्याश्चितयन्तोमाम्"······इस वचनसे

अब सन्देह यह होता है कि सदेव सोम्य० इस वचन में एवकार अव धारणार्थक होने से और "एकोहं बहुस्याम्:" यहां पर एकही को बहुभवनके संकल्प का श्रवण होने से सत् पदवाच्य ही अज्ञान का आश्रयण कर जीव भाव को प्राप्त हो

न्तेनविमतं ब्रह्मा भिन्नं कार्यत्वाद्धटादिवदित्येवं तदेकत्वोपपादकत्वाच्चेति चेन्न। यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपमित्यादि श्रुतिभिः अग्न्यादि जडांशरोहितादिरूपाणां तत्कारणतेज आदिरूपत्वदर्शनेन कारणविज्ञानकृत कार्यविज्ञानस्यान्यथासिद्धिदर्शिनत्वात्। पुनः शुद्धचेतनताव-न्मात्रस्य त्वयापिकारणत्वाऽनंगीकारात् तदंगीकारे कदापि जीवसंसृत्यनिवृतिप्रसंगाच्च तत्परबद्धमुक्तिवचनवैयर्थ्यापत्तेश्च चेतनमात्रस्य जडपृथिव्यादिरूपत्वानुपपत्तेश्चानुमाने सर्वज्ञ

कर विस्मृत स्वरूप हो जाने से संसार में संहार कर रहा है, उसीके वास्तविक स्वरूप को तत्वमस्यादि श्रुतिवेधन करती है। यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन, इत्यादि दृष्टान्तों से भी ब्रह्मात्मैकत्व का ज्ञापन करती है। तथा "तत्तेजोऽसृजत" इत्यादि सृष्टि वाक्यों के भी घटादि दृष्टान्त से "विमतं ब्रह्माभिन्नम् कार्यत्वात् घटादिवत्" इत्यादि अनुमान से भी ब्रह्मात्मैकत्व प्रतिपन्न होता है? सो नहीं कह सकते। क्योंकि; "यदग्नेरोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं" इत्यादि श्रुतियों से अग्न्यादि, जडांश, रोहितादि, रूपों के कारण तेज आदि के रूपों के दर्शन से यह ज्ञात होता है कि कारणके विज्ञान से कार्य का विज्ञान की सिद्धि

सर्वशक्तिमच्चेतनत्वस्योपाधित्वात् दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैरूप्याच्च । न घटादि-दृष्टान्तेन सृष्टिवाक्यैर्ब्रह्मात्मैक्यमुपपद्यते जीवानां यदि तु चेतनमात्रं जगत्कारणं स्यात् तदा मृदवयव-घटादिदृष्टान्तेनतदैक्यमुपपद्यतेतदातु मृदो घटो भवतीत्यत्र कारण विषयक प्रधानमृच्छब्दान्वयि-क्रियापदप्रयोगवत् तत्वमसीत्यत्रापि कारण पर तत्पदान्वयिनोवाचकस्य प्रयोगः स्यात् तत्त्व-मसीत्याऽऽकारकः कुत इति चेत् शाब्दिकैः क्रिया-पदस्य प्रधान-पदान्वयत्वोक्तेः वाचकः

होती है, यह सिद्धान्त दिखाया गया है। पुनः शुद्ध चतेन को आपभी कारण नहीं मानते, यदि अंगीकार लेंगे तो जीव की संसृति निवृत्त नहीं होगी, और बद्ध, मुक्त, वचन भी व्यर्थ हो जायेंगे। तथा चेतन मात्र को जड़ पृथिव्यादि रूपत्व की अनुपपत्ति है, अर्थात् चेतन मात्र पृथिव्यादि रूप हो ही नहीं सकता अनुमान में सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमत्चेतनता के औपाधिक होने से, दृष्टान्त, दार्ष्टान्त, में वैरूप्य होने से, घटादि दृष्टांत से सृष्टि वाक्यों से ब्रह्मात्मैकत्व कथमपि उपपन्न नहीं हो सकता। यदि चेतन मात्र जगत् का कारण हो तो मृद, अवयव, घटादि दृष्टान्त से तदैक का उपपादन करे तब तो मृद्, घटो, भवन्ति, (मट्टी घट हो जाती है) यहां पर जैसे कारण विषयक प्रधान

प्रकृतेः संज्ञां गृह्णाति विकृतेर्नत्विति मृदोघटो भवतीत्यादिवाक्येऽपि तथैव दर्शनात् तथोपपत्तेश्च ।

किंच मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः । अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपां । गौरनाद्यंतवती सा जनयित्री भूतभाविनी । ममयोनि महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।

मत् शब्द के साथ में क्रिया पदका अन्वय होता है, उसी प्रकार तत्वमसि यहां पर भी कारण पद वाच्य के ही साथ क्रियापद का अन्वय पूर्वक प्रयोग होता है। तत्व मसि ऐसा प्रयोग होता ऐसा प्रयोग क्यों होता ? यदि पूछो तो शाब्दिकों (वैयाकरणों) ने क्रियापद का अन्वय प्रधान पद के ही साथ में माना है। क्योंकि वाचक प्रकृतिही संज्ञा को ग्रहण करता है, विकृतिका नही यह उनका नियम है। और इसी नियम के अनुसार मृदो, घटाः, भवन्ति इत्यादि वाक्यमें भी वैसाही अन्वय देखा जाता है। और उपपन्न भी उसी तरह से होता है।

किंच प्रकृति को माया जानना चाहिये, और महेश्वर को माया का स्वामि जानना चाहिये, "हम सब को मायी पैदा करता है और विश्वकोभी वही पैदा करता है, इस विश्व में

सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत। प्रकृति पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि। विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति-सम्भवानित्यादि श्रुति-स्मृतिष्वीश्वरस्य मायाद्वारा जगत्कारणत्व-श्रवणात् विकाराणां महदादीनां जगदाकारेण परिणतानां प्रकृति-कार्यत्वश्रवणाच्च, अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामिति। यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्न-

---

अन्य जो जीवात्मा है वह माया से अवरुद्ध है" "अजा एक लोहित शुक्ल कृष्ण वर्णवाली, बहुतसी प्रजा को पैदा करनेवाली प्रकृति है, और अनाद्यन्तवती, भूतों को पैदा करनेवाली है। भूत भाविनी भी है" "हमारी एक महद्योनि है अर्थात् प्रकृति रूपा हमारी महत् योनि है उसमें ब्रह्म स्वरूप जीवको गर्भरूपतया हम आधान करते हैं तब उससे सब भूतों का संभव होता है, प्रकृति और पुरुष यह दोनों अनादि हैं हे अर्जुन विकार और गुण प्रकृति से पैदा होते हैं, ऐसा आप जानो" इत्यादि श्रुति स्मृति के वाक्यों से माया के द्वारा जगत कारणता ईश्वरको ही सिद्ध है। क्योंकि जगदाकार से परिणत महदादि विकारों की उत्पत्ति प्रकृति से ही होती है ये सब महदादिक विकार प्रकृति के ही कार्य है, क्योंकि अजा मेकां··· यदग्नेरोहित···इन दोनों श्रुतियों की एकार्थकता होने से तेज, जल और अन्नों की प्रकृति

स्येत्यन्वयः । श्रुत्योरेकार्थकत्वेन तेजोऽबन्नानां प्रकृतिसमानरूपत्वश्रवणेन प्रकृतिकार्यत्वोपपत्तेश्च। अस्मान्मायी सृजते विश्वं । मम योनिर्महद्ब्रह्मेत्यत्र ब्रह्मणोमायाद्वारा जगत्कारणत्वश्रवणाच्च । सदेव सोम्येदं, तत्तेजोऽसृजदित्यत्रापि गुणोपसंहाररीत्या ब्रह्मणोमायाद्वारा तेजआदिजनकत्वोपपत्तेश्च । अपूर्वमपरमितिश्रुत्या शुद्धस्य कार्यकारणत्वनिषेधाच्च । न शुद्धस्य केवलस्याद्वारकस्य ब्रह्मणः स्वस्वरूपेण जगत्कारणत्वमुपपद्यते; येनोपपन्नं ब्रह्मात्मैक्यं

ही समान रूप से श्रवण होने की वजह से प्रकृति के ही कार्य हैं, यही सिद्ध होता है तथा अस्मान्मायी···ममयोनि···यहां पर माया द्वारा ब्रह्म को जगत् कारणता श्रवण की गई है, सदेव सोम्येदं··तत्ते जोऽसृजत ··यहां पर भी गुण के उपसंहार की रीति में ब्रह्मको ही माया के द्वारा तेज आदि पदार्थों की जनकता उपपन्न है क्योंकि अपूर्व अपर · इस श्रुति से शुद्धको कार्य कारण का निषेध किया गया है, इसलिये केवल शुद्ध ब्रह्म को बगैर किसी के द्वारा अपने स्वरूप से ही जगत् कारणत्व उपपन्न ही नहीं हो सकता है कि जिस शुद्ध ब्रह्म के साथ जगत् कारणता को उपपादन करके ब्रह्मजीव के

तत्त्वमसीति वाक्यं बोधयेत् तस्मात् मृद् घटादिवत् ब्रह्मजोवयोः कार्यत्वकारणत्वानुपपत्तेः शुद्धचैतन्यस्य कथमपि संसारित्वानुपपत्तेश्च। ब्रह्मात्मैक्योपदेशप्रयोजनाभावात् तत्त्वमस्यादिवाक्यानां कथमपि तदैक्यपरत्वानुपपत्तेः। पूर्वोक्तरीत्या जीवनिष्ठपरमेश्वरशेषत्वबोधपरत्वमेव तत्त्वमस्यादीनामुपपद्यते। अस्मत्पक्षे शाब्दशास्त्रविरोधाप्रसक्तेश्च। कुतः परशेषत्वस्य जीवधर्मत्वात्, तत्पदस्य तद्विषयकत्वात्, धर्मतो-धर्मिणः प्राधान्यात् धर्मिपरत्वं पदान्वयिनोऽसि-

---

साथ में ऐक्य को तत्व मस्यादि वाक्य बोधन करें। इस लिये मट्टी और घड़ा की तरह ब्रह्म और जीव कार्य कारण भाव नहीं हो सकता शुद्ध चैतन्य किसी प्रकार से भी संसारी हो हीं न सकता तत्वमस्यादि वाक्यों से ब्रह्मात्मैक्य का उपदेश हो नहीं है, क्योंकि कोई प्रयोजन नहीं दिखाता है अतः तत्वमस्यादि वाक्य किसी प्रकार सेभी जीव, ब्रह्मैक्य परक नहीं हैं, किन्तु पूर्वोक्त रीति से जीव में परमेश्वर से सत्व ही तत्वमस्यादि वाक्य बोधन करती हैं, यही उपपन्न भी होता है, इस हमारे पक्षमें शब्दशास्त्र के साथ कोई विरोध भी नहीं है। क्योंकि पर-शेषत्व जीव का धर्म हैं। तत्पद तद्विषयक है,

पदस्य प्रयोगदर्शनात् ।

ननु अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मीत्यत्र ब्रह्मात्माऽभेदावगमात् एतद्वाक्यानुरोधेन तत्त्वमसीत्यस्यापि ब्रह्मात्मैक्यपरत्वोपपत्तेः युक्तिभिस्तस्यान्यार्थकत्वकल्पनमयुक्तं तं त्वौपनिषदं पृच्छामः, नावेदविन्मनुते तं बृहंतमिति वेदैकगम्यस्य तर्कविषयत्वनिषेधात् नैषामतिस्तर्केणापनेया, तर्काप्रतिष्ठानादिति श्रुतिसूत्राभ्यामिति चेन्न आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्योमन्तव्य

धर्मसे धर्मी प्रधान होता है अतः पद के साथ अन्वय करने वाले असि, पदका प्रयोग धर्मी परकही देखा जाता है।

अब सन्देह यह करते हैं कि "अयमात्मा ब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि" यहां पर ब्रह्म और आत्माके साथ अभेद का अवगम होने से इसी वाक्यके अनुरोध से तत्वमसि वाक्यका भी ब्रह्मात्मैक्य परत्वही उपपन्न होनेसे युक्तियों के द्वारा उसके अन्य अर्थ कल्पना करना अयुक्त है, क्योंकि तम् त्वौउपनिषदम् पुरुषं परीक्ष्याम ना वेद विन्मनुते तं बृहन्तं,, इस श्रुति से एक वेद सेही जानने योग्य ब्रह्म को तर्क विषयता का नैषा मति तर्केनाऽपनेया" इस श्रुति से और "तर्काप्रतिष्ठानात्" इस सूत्रसे निषेध किया गया है।

समाधान—

इति ब्रम्हदर्शनस्य श्रुत्यनुकूलतर्कजन्यत्वश्रव-णात् तन्निषेधस्य श्रुतिप्रतिकूलतर्कविषयकत्वो-पपत्तेः भेदाभेदार्थपर-श्रुतीनां परस्परविरुद्धार्थ-कत्वेनेव प्रतीयमानानां युक्त्यवष्टंभं विना एकवाक्यत्वानुपपत्तेः श्रुत्यर्थानुग्राहकत्वेनतद-नुकूलयुक्तीनामवश्यमंगीकारात् श्रुत्यनुकूलयु-क्तिभिरुपपादितस्य तत्त्वमस्यर्थस्य निर्बाधात् । अहं ब्रह्मास्मीत्यस्य विशिष्टार्थपरत्वं यथास्ति तथाग्रे दर्शयिष्यामः ।

तत्वमसिवाक्यार्थनिरूपणानन्तरं इदानी

आत्मा वारे द्रष्टव्यः......इस ब्रह्म दर्शन का श्रुति के अनुकूल तर्क के द्वारा भी विधान किया गया है, अर्थात् श्रुति के अनुकूल तर्क से ब्रह्मका दर्शन होता है। तर्क के द्वारा ब्रह्म दर्शन के निषेध का तात्पर्य यह है कि श्रुति के प्रतिकूल तर्ककी विषयता ब्रह्म में नहीं है। भेद और अभेद परक श्रुतियों का जो कि परस्पर में विरुद्धार्थ सी प्रतीत होती है उनका युक्ति का अवलम्बन लिये बिना एक वाक्यता उपपन्न ही नहीं हो सकती अतः श्रुति के अर्थ के अनुग्राहक होने के कारण से श्रुति अनुकूल युक्तियों को अवश्य अंगीकार करना ही होगा इसलिये श्रुत्यनुकूल युक्तियों से उपपादित तत्वमसि वाक्य का अर्थ निर्बाध है। अहं ब्रह्मास्मि इस वाक्यको विशिष्टार्थ परता

द्विर्बद्धं सुबद्धमितिन्यायेन तत्वमसीति वाक्यस्य विशिष्टार्थपरत्वदाढर्याय पुनः सदेव सोम्येदमग्र-आसीदेकमेवाद्वितीयमिति मूलवाक्यं विचार्य्यते किमिदं वाक्यमादिसृष्टिविषयमवान्तरसृष्टिवि-षयं वा आदिसृष्टिविषयमिति चेत्तर्ह्यनभिव्य-क्तनामरूपयोर्नित्ययोश्चिदचितोरभिव्यक्तनाम-रूपात्मिका सृष्टिः। अथवा पूर्वमसतोस्तयोः स्वरूपोत्पत्ति-पूर्वकं तत्स्थूलरचनात्मिका। आद्येन ब्रह्मोपादानत्वं चिदचितोः निष्पद्यते, अवान्तरसृष्टाविवादिसृष्टावपि अनभिव्यक्तनाम-

---

जिस प्रकार है वह प्रकार आगे दिखायेंगे तत्वमसि वाक्य के अर्थ के निरूपण के बाद।

इस समय द्विर्बद्ध, सुबुद्ध न्याय से तत्वमसि इस वाक्य का विशिष्टार्थ परत्व दृढ़ करने के लिये पुनः सदेव सोम्येदमग्र ... इस मूल वाक्य का विचार करते हैं, कि—क्या यह वाक्य आदि सृष्टि विषयक है अथवा अवान्तर सृष्टि विषयक है, यदि आदि सृष्टि विषयक है तो नाम रूप, अभिव्यक्ति रहित नित्यचिद् और अचिद् की नाम रूप अभिव्यक्ति रूप सृष्टि का वर्णन है, अथवा पहले जो नहीं थे उन दोनों के स्वरूपोत्पत्ति पूर्वक उस स्थूल रचनात्मिका सृष्टि पर विचार

रूपयोस्तयोः सूक्ष्मरूपेण सदवस्थितयोरेव त-न्नामरूपाभिव्यक्त्यात्मकस्य तस्य स्थूलरूपत्वस्य सृष्टिशब्दाभिधेयत्वोपपत्त्या मृद्घटादिवद्ब्रह्म-जगतोरेकरूपत्वानुपपत्तेः । द्वितीये चिदेकर-सस्य ज्ञानस्वरूपस्य सर्वज्ञस्य सर्वशक्तिमतोऽज्ञा-नावृतजीवरूपत्वधारित्वे ज्ञान-स्वरूपत्वहानिः सर्वज्ञत्वादितद्धर्महानिः अज्ञानपारवश्येनानीश्वर त्वप्रसक्तिः, तत्तत्कर्मतत्तद्भोगभोगस्थानवैषम्य-कृतवैषम्यनैर्घृण्यप्रसक्तिश्चेत्यादयोदोषाद्रष्टव्याः तस्य प्रकृतिरूपधारित्वे जडांशत्वापत्त्या चिदेक-

---

किया है। यदि पहला पक्ष माना जांय तो चिदचित् को ब्रह्मो-पदानता सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि अवान्तर सृष्टि की तरह आदि सृष्टि में भी अनभिव्यक्त नाम रूपवाले उन दोनों के सूक्ष्म रूप से सत में अवस्थित थे उन्हींका नाम रूपकी अभिव्यक्ति होकर स्थूल रूप होना ही सृष्टि शब्द से कहा जाता है, इस उपपत्ति से मृद् घट की तरह ब्रह्म जगत् में एक रूपता नहीं हो सकती।

यदि दूसरा पक्ष माना जाय तब चैतन्य एक रस रहने वाला ज्ञान स्वरूप सर्वज्ञ सर्वशक्तिवाले ब्रह्म को अज्ञानावृत जीवरूप धारी मानेंगे तो ज्ञान स्वरूप की हानि हो जायगी,

रसत्वहानिः विकारित्वापत्तिश्च तदा द्वितीया-भावेन सृष्टेः स्वार्थकत्वोपपत्त्या अनाप्तकामत्वा-पत्तिश्चेत्यादय उहनीयाः ।

किंच किमिदं जीवत्वं प्राप्तं ब्रह्मप्रतिबिंब-त्वं प्राप्तबिंबवदिति चेत्तर्हि ब्रह्मस्वरूपोपमर्देनो-त्पन्ना विद्या जीवोपाधिभूता किं खपुष्पवत्तुच्छ-रूपा किं वा प्रमाणान्तरबाध्यमानशुक्तिरजतव-न्मिथ्याभूता किं वा घटस्थ जलादिवत्सद्रूपा ।

और सर्वज्ञत्वादि रूप ब्रह्म के धर्म की हानि हो जायगी। तथा अज्ञान पर वश होने से अनीश्वरता भी ब्रह्म में आजायगी, और तत्तत् कर्म तत्भोग भोगस्थान इनकी विषमता होने से वैषम्य, नैर्घृण्य आदि दोष आजायगें। प्रकृति रूप धारी होनेपर जड़ांश आजाने से एकरसता की हानी हो जायगी, और ब्रह्म विकारी हो जायगा। उस समय सृष्टि के आरंभ में दूसरे किसी के न होने से सृष्टि को ब्रह्म ने अपने स्वार्थ से बनाया है, यह स्वार्थ आजाने से ब्रह्म की आप्त कामना का नाश हो जायगा इत्यादि दोषों की ऊहा करनी चाहिये।

किंच—जीव भाव को प्राप्त हुआ ब्रह्म किस प्रकार से हो जाता है, यदि कहें कि ब्रह्म जीवत्वावस्थामें प्रतिबिम्ब सदृश हो जाता है जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है। तब हम आपसे यह पूछते हैं? कि ब्रह्म के नाश हो जाने से उत्पन्न

नाद्यः अभावस्य प्रतिबिंबाधारत्वादृष्टेः, नापि द्वितीयः रजतस्य शुक्तिसंस्थानविशेषत्ववत् अविद्याया अपिस्वाधिष्ठानब्रह्मसंस्थानविशेषत्वोपपत्तेः। ब्रह्मप्रति बिंबत्वेन ब्रह्मोपाधिकत्वेन च ब्रह्मवत् जीवस्यापि सर्वदा ज्ञानरूपत्वसर्वज्ञत्वापत्तेः। नापि तृतीयः कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसंगात् कुतः एकस्मिन्नेवोपाधौ क्षणे क्षणे तदुप–

अविद्या ही जीव रूप उपाधिभूता हो गई। अथवा आकाश पुष्प की तरह तुच्छ भूत है, किंवा? प्रमाणान्तर से बाध्यमान शुक्तिरजत की तरह मिथ्याभूत है, अथवा अलीकादि की तरह सद्रूपा है। इन सब पक्षों में पहला पक्ष नहीं हो सकता क्योंकि अभाव प्रतिविम्बका आधार नहीं देखा गया है, द्वितीय पक्ष भी नहीं बन सकता है क्योंकि रजत का जैसे सुक्त संग स्थान विशेष ही होता है, उसी प्रकार अविद्य को भी अपना अधिष्ठानभूत ब्रह्म–संस्थान-विशेषता आ जायगी। यदि जीव को ब्रह्म का प्रतिविम्ब माने अथवा ब्रह्मोपाधिक मानें तो ब्रह्म की तरह जीव में भी सर्वदा ज्ञान रूप सर्वज्ञत्व आजायगा। तीसरा पक्ष भी नहीं बन सकता। क्योंकि कृतनाश अकृताभ्यागम हो जायगा। क्योंकि एक ही उपाधिमें क्षण २ में तदुपहित जीवों में भेद हो जायगा। पूर्वक्षणोपहित जीव से ज्ञात पदार्थों का और पूर्वक्षणोपहित जीवके किये हुए कर्मों का तदुत्तर–क्षणोपहित जीवको अज्ञात और अभोक्तृत्व हो जायगा

हित-जीवानां भेदप्रसंगात् पूर्वक्षणोपहितजीव-ज्ञातपदार्थस्य तत्कृतकर्मणां च तदुत्तरक्षणोप-हितजीवाज्ञातत्वाऽभोक्तृत्वप्रसंगाच्च तत्पदार्थ-ज्ञातुःकर्मकर्तुर्जीवस्योत्तरक्षण उपाधिविनिर्मुक्त्या मोक्षापत्तेः जीवान्तरस्य तदकर्तृत्वेन तदभोक्तृत्वोपपत्तेश्च उक्तज्ञानकर्मणोर्वैयर्थ्यापत्तेः। अप-रंच पूर्वतनजीवज्ञातपदार्थादेः उत्तरतने ज्ञातृत्व भोक्तृत्वस्वीकारे उत्तरतनजीवस्य समस्तजीव-भेदान्यं पूर्वतन-जीव-भेदसामान्यात् सर्वजीव कृत कर्मणां परस्परं सर्वजीव भोग्यत्वप्रसंगात्

क्योंकि तत्तत् पदार्थ का ज्ञाता और तत्तत् कर्मों के करने वाले जीव की उत्तरक्षण में उपाधि के नाश हो जाने से उसका मोक्ष समझा जायगा। उत्तर क्षणोपहित जीव का वह कर्म किया हुआ नहीं है अतएव उसका वह उपभोक्ता भी नहीं होगा। इसलिये ज्ञान और कर्म में वैयर्थ्य आ जायगा। दूसरा दोष यह भी है कि पूर्व-तन जीव से ज्ञात पदार्थों का उत्तर तन जीव में ज्ञातृत्व और भोक्तृत्व स्वीकार करें तो उत्तर तन जीव का समस्त जीवों के भेदाभाव होने से पूर्व तन जीव के साथ भी भेदाभाव सामान्य होने से सब जीवों के किये हुए कर्मों की परस्पर में सब जीवों को भोग्यता की प्राप्ति होगी। दोष इसमें यह होगा कि एक जीव को ज्ञान हो जानेसे सब जीवोंका

ततश्च एककृतज्ञानेन सर्वजीवमोक्षप्रसंगात् । किंच ज्ञानं विनैवोत्तरक्षणउपाधिविनिर्मुक्तया सर्वजीवमुक्तिप्रसंगात्; उपाधिबाहुल्यनिरन्तरत्वस्वीकारे तेषां सर्वेषां ज्ञानेन युगपन्नाशस्वीकारे तु उत्तरक्षणमोक्षोपपत्त्यभावेऽपि एकजीवकृत-कर्मणां सर्वजीव भोग्यत्वप्रसक्तिवत् एकजीव-कृतज्ञानेन सर्वमोक्षप्रसक्तिर्दुर्वारा ।

तत्कथमिति चेच्छृणु यथाकाशप्रदेशान्तर-स्थस्य घटादेः क्षणान्तरे तत्प्रदेशान्तरनीतस्य पूर्वेण स्वांतर्गताकाशप्रदेशेन व्यापकतयाह्यच-

---

मोक्षहो जायगा । किंच ज्ञानके विनाही उत्तर क्षणमें उपाधिकी नाश हो जानेसे सब जीवोंकी मुक्तिका प्रसंग आ जायगा । निर-न्तर उपाधियों के अधिकता मानने पर और उन सब उपाधियों की ज्ञान से एक साथ में नाश मानें तो उत्तर क्षण में मोक्षकी उत्पत्ति न भी स्वीकार करें । तथापि एक जीवकृत कर्मों का सब जीवों को भोग्यता की प्रसक्ति जिस प्रकार होती है उसी प्रकार एक जीव कृत ज्ञान से सब जीवों को मोक्ष की प्रसक्ति दुर्वार है । यदि पूछो कि एक जीव के ज्ञान से सब जीवों की मोक्षकी प्रसक्ति कैसे होगी? तो सुनो।—जैसे आकाश प्रदेश में स्थित घटादि पदार्थ को क्षणान्तर में द्वितीय प्रदेश में ले जाने

लेन विभागः उत्तरदेशीयेनाकाशप्रदेशेन बहि-
रन्तः संयोगश्च भवति अत्यन्तसारूप्याद्द्वयोरा-
काशप्रदेशयोरैक्याच्च भेदो न लक्ष्यते च तथा
देहादेरपि देशान्तरगतस्य स्वांतर्गतचेतने-
न सर्वव्यापकत्वादनंतत्वादनवच्छिन्नत्वादचलेन
विभाग उत्तरोत्तरदेशीयेन चेतनेन तद्बहिरन्तः
संयोगश्चानिवार्यः त्वया महाकाशघटाकाशयो
रिवब्रह्मजीवयोर्भेदाभेदांगीकारात् । तथा सति
पूर्वचेतनांशस्याविद्याविमोकः कृतविनाशादिश्च
उत्तरदेशीयैश्चेतनांशैः क्षणे क्षणे उपाधिस-

पर पूर्व का घटान्तर-वर्ति आकाश प्रदेश के व्यापक होने से अचल है पूर्व से विभाग होगा और उत्तर देशीय आकाश प्रदेश से बाहर भीतर संयोग होगा, इन दोनों आकाश प्रदेशों में अत्यन्त सारूप्यता (समानरूपता) होने से ऐक्य है, भेद नहीं दिखाई पड़ता है उसी प्रकार देहादिक जो किसी देश विशेष में है उनको भीतर रहने वाला चेतन के सर्वत्र व्यापक होने से और अनन्त अनवच्छिन्न होने से अचल है उससे विभाग होगा और उत्तर देशीय चेतन के साथ भीतर बाहर संयोग होना अत्यन्त अनिवार्य है। क्योंकि आप महाकाशघटाकाश की तरह जीव ब्रह्ममें भेद और अभेद दोनों ही मानतेहैं ऐसा होने

म्बन्धः क्षणे क्षणे तद्विमोकश्चकृतविनाशाकृता-भ्यागमश्चेत्यादिपूर्वोक्तदिशोहनीयः ।

किंच कर्मकर्तृचेतनमिहैव विमुच्य क्रमेण स्वर्गादिगते तदुपाधौ तत्रत्यब्रह्मैकदेशस्य तदु-पहितस्य तत्कर्म भोक्तृत्वप्रसक्तिश्च पूर्वतनस्यैव घटाकाशस्योपाध्यंतर्गतचेतनस्य च घटेनाविद्य-या च सहोत्तरदेशगमनत्वस्वाकारे ब्रह्मणि सा-वयवत्वोपाध्यवच्छिन्नत्वप्रसक्त्या विनाशत्वप्रस-

पर पूर्व चेतन का अविद्याका नाश और किये हुए कर्म का भी नाश हो जायगा। उत्तर देशीय चेतनों के साथ क्षण २ में उपाधिका सम्बन्ध क्षण २ में उसका विमोक्ष होगा यह कृत विनाश अकृताभ्यागम हो जायगा। इत्यादि पूर्वोक्त दोष समुदायोंकी कल्पना करनी चाहिये।

किंचः-कर्म का करनेवाला चेतन यदि यहीं मुक्त होकर क्रमसे स्वर्गादिमें जानेपर उस उपाधि में वहां पर रहनेवाला ब्रह्म का जो एक देश है तत्देशोपहित कर्मों का भोक्तृत्व आ-जायगा प्रथम क्षण वृति ही घटाकाश ही घट के साथ उत्तर देश में जाता है और उपायान्तर गत चेतन ही अविद्या के साथ उत्तर देश गमन करता है ऐसा स्वीकार करने पर ब्रह्म में सावयवता, अवच्छिन्नता, आ जाने से विनाशिता अवश्य करके आ जायगी, इसलिये अवच्छेदक वाद बहु दोष ग्रस्त होने से समीचीन नहीं है।

क्तिश्चेत्यादिबहुदोषग्रस्तत्वादवच्छेदवादस्य ।

एवं प्रतिबिंबवादेपि द्रष्टव्यः तत्रापि व्यापकत्वेनाचलस्य ब्रह्मणः छायाया अपि व्यापकत्वाचलत्वोपपत्तेः तदुपाधेर्देशान्तरगतस्य पूर्वदेशस्थब्रह्मछायया विभागः उत्तरदेशावछिन्नतच्छायया तस्स योगश्च समानः अतोऽवच्छेदवादोक्तदूषणानि यथासम्भवमत्राप्यूह्यानि ।

न च चन्द्रदृष्टान्तेन पूर्वदेशस्थोपाधिगताभासस्य उपाधिना सहोत्तरदेशगतिप्रकल्प्यस्य पूर्वदूषणानि निरसनीयानि तदाभासस्यापि ग-

---

(प्रतिबिम्बवाद निराश)

इसी प्रकार प्रतिबिम्बवाद में भी दोषों को जानना चाहिये क्योंकि वहां पर भी अचल ब्रह्म के व्यापक होने से उसकी छाया भी व्यापक और अचल होगी। उस उपधि देशान्तरगतकी पूर्व देशस्थ ब्रह्म की छाया के साथ विभाग और उत्तर देशावच्छिन्न छाया से उपधि का संयोग अवच्छेदकवाद की तरह समान है। अतः अवच्छेदक वाद में कहे गये दोष यथा संभव प्रतिबिम्ब वाद में भी कल्पना करना चाहिये। यदि आप चंद्र दृष्टान्त से पूर्व देशमें स्थित उपाधिगत आभास की उपाधि के साथ उत्तर देश की गति की कल्पना से पूर्व दूषणों का निरास करना चाहें सो नहीं हो सकता क्योंकि

त्यनुपपत्तेः तत्कुतः पूर्वदेशस्थजलपूर्णघटे तत्प्रतिबिंबे सत्यैवोत्तरदेशस्थजलपूर्णेष्वनेकेषु घटेषु तत्प्रतिबिंबदर्शनात् बलात्तद्गत्यंगीकारे चन्द्रवद्ब्रह्मतदाभावयोः परिछिन्नत्वेन विनाशित्वप्रसक्तेः। एवं सृष्टेः पूर्वं चिदेकरसस्य ज्ञानस्वरूपस्य तन्मात्रस्य सत्वात् तद्द्वितीयस्याभावात् स्वस्मात्सृष्टानामपि घटादीनां मृद्रूपत्ववत् ब्रह्मरूपत्वेन चिदेकरसत्वज्ञानरूपत्वाव्यभिचारात्। अविद्यादीनामपि ब्रह्मसमानत्वेन रज्जु-

आभास की गति ही उपपन्न नहीं है। क्योंकि पूर्वदेश में स्थित जलपूर्ण घट में प्रतिविम्ब होने पर ही उत्तर देशस्थ जल पूर्ण अनेक घटों में उसका प्रतिविम्ब देखा जाता है। यदि बलात्कार से आभास की गति को अंगीकार भी कर लें तो चन्द्र की तरह ब्रह्म और ब्रह्म के आभासमें परिच्छिन्नता आ जाने से विनाशिता भी आ जायगी।

(विवर्त्तवाद निरास)

इसी प्रकार सृष्टि के पहले चिदेक-रस-ज्ञान-स्वरूप सन्मात्र ब्रह्म ही था उससे भिन्न द्वितीय का अभाव रहा इसलिये उस ब्रह्म से रचे गये पदार्थ ब्रह्म रूप होने से चिदेक रसता और ज्ञानरूपता अवश्य करके होगी जैसे मिट्टी से बनाये गये घटादि पदार्थ मिट्टी के धर्म वाले ही होते हैं इसलिये

स्वरूपावरकादितम आदिवत् ब्रह्मस्वरूपावरकत्वतदारोप्यत्वाद्यनुपपत्तेः दृष्टान्ताभावान्नोविवर्त्तवादोपि कल्पितुं शक्यः।

एवमुक्तरीत्याऽजातवादस्योपपन्नत्वेपि खपुष्पाभावं प्रतीव ब्रह्मनिष्ठजगदाभावंप्रत्युपदेशानर्थक्यात् तदुपदेष्टय्युन्मत्तत्वप्रसक्तेश्च, अतः सर्वज्ञश्रुतिस्मृत्युपदेशान्यथानुपपत्त्या अनाद्यज्ञजीवानां तत्कृतकर्मफलभूतस्य भोग्यभोगोपक-

---

अविद्यादिक ब्रह्म समान होने से ब्रह्म स्वरूप के आवरक और तदारोप्यत्व नहीं आसकता। जैसे रज्जुस्वरूप का आवरक तम आदि पदार्थ रज्जु स्वरूप को आवृतकर देता है उसी प्रकार अविद्या ब्रह्म के स्वरूप का आवरक नहीं हो सकता! अतः दृष्टान्त के अभाव से विवर्त्तवाद की भी कल्पना नहीं कर सकते।

(अजात वाद निरास)

इसी प्रकार अजात-वाद का मत भी ठीक नहीं है क्योंकि किन्ही युक्तियों से अजात वाद को कोई सिद्ध भी करें तो भी आकाश पुष्पाभाव के प्रति जैसे उपदेश निरर्थक है वैसे ही ब्रह्म-निष्ठ जगदाभाव के प्रति उपदेश भी व्यर्थ है। और उस उपदेश करने वाले पुरुष में उन्मत्तता रूप दोष भी आ जाता है, इसलिये सर्वज्ञों से उपदिष्ट श्रुति और स्मृतियों का

रणभोगस्थानात्मकस्य जगतश्चाबाध्यत्वसिद्धया-
ऽजातवादोऽप्यनुपपन्नतरः ।

ननु व्यवहारिकप्रमाणप्रत्यक्षादिसिद्धजग-
दनुवादेन पारमार्थिकं तत्वमुपदिशन्ति तत्त्वम-
स्यादिवाक्यानि तात्विकप्रमाणभूतान्यतोन जग-
तस्सत्यत्वं नापि श्रुतिस्मृत्युपदेशानर्थक्यमिति
चेन्न त्वया मृद्घटादिदृष्टान्तेन जगतोब्रह्मोपा-
दानकत्वदृढीकरणात् ततश्च जगतोघटादिवत्सं

उपदेश अन्यथा उपपन्न हो नहीं सकता, इसलिये अनादि अज्ञानी जीवोंके कियें गये कर्मों के फल भूत भोग्य भोग पकरण भोग स्थान रूप जगत् बाधा रहित सिद्ध है-इसलिये अज्ञात-वाद ठीक नहीं है।

यदि कहें कि व्यावहारिक प्रमाण जो प्रत्यक्ष आदि हैं उनसे सिद्ध जगत के अनुवाद से पारमार्थिक तत्वका तत्व-मस्यादि वाक्य उपदेश करती हैं, इसलिये वे यथार्थ प्रमाण भूत हैं इस लिये जगत में सत्यत्व नहीं है, ऐसा मान लेने पर श्रुति स्मृतियों के उपदेश का भी वैयर्थ्य नहीं होता है, सो नहीं कह सकते। क्योंकि आपने मिट्टि-घटके दृष्टान्त से जगत्में ब्रह्मोपादानकता दृढ़ की है, इस से जगद्ब्रह्म में घटकी तरहसे संस्थान मात्रका भेद होने परभी वस्तुतः ब्रह्म से अभिन्न होने से जगत् में चिदेकरसता और ज्ञानस्वरूपता अवश्य मानना

स्थानमात्रभेदेपि तत्वतोब्रह्माभिन्नत्वेन तच्चिदे-
करसत्वज्ञानस्वरूपत्वनिर्बाधात् घटाद्याकृतिविशे-
षस्यासत्यत्वेपि तत्पिण्डस्य मृद्रूपत्वेन सत्यत्ववत्
मनुष्याद्याकृतिविशेषस्य तत्रारोपितब्राह्मणत्वादि-
विशेषस्य तद्वाचकानां चासत्यत्वेपि आकृत्या-
द्याश्रयस्य जीवविशिष्टप्रकृतिपरिणामविशेषस्य
ब्रह्मोपादेयकार्यत्वेन सत्यत्वनिर्बाधात् । अबा-
धितज्ञानस्वरूपत्वेन तदुद्दिश्यश्रुत्युपदेशानर्थ-
क्यतादवस्थ्याच्च । प्रत्युत ब्रह्माचेनमचेतनप्र-
कृत्युपादानकारणत्वान्मृदादिवदित्यनुमानेन ब्रह्म-

ही पड़ेगा । और घटादि आकृति विशेष असत्य होने पर भी घट का पिण्ड मिट्टी रूप होनेसे जैसे उसमें सत्यता है उसी प्रकार मनुष्यादि आकृति विशेषके जिसमें की ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्वादि विशेष आरोपित हैं ऐसे तद्वाचक शरीर के असत्य होने परभी आकृतिका आश्रय भूत जीव विशिष्ट प्रकृति का परिणाम विशेष के ब्रह्मोपादेय कार्य होनेसे सत्यता निश्चित है : और ज्ञान स्वरूपता की बाधा न होने से उसका उद्देश्य करके श्रुतियों के उपदेश में वैयर्थ्यता रही जाती है । प्रत्युत "ब्रह्म अचेतनम् अचेतन प्रकृत्युपादान कारणत्वात्, मृदादिवत्" (ब्रह्म अचेतन है क्योंकि अचेतन प्रकृतिके उपादान कारण होने से जैसे मिट्टि अचेतन है क्योंकि अचेतन घट की उपादान

णिजड़त्वापत्तेश्च । न चास्यहेतोरचेतनन खलोमाद्युपादानभूतचेतनवृत्तित्वेनव्यभिचारित्वं नखलोमादिनां मृतच्छरीरेऽनुत्पत्त्यदर्शनेन चेतनकार्यत्वावगमादिति वाच्यं तेषां चेतनवच्चेतनत्वापरिणामित्वादर्शनात् प्रत्युत जीवच्छरीर-यौवन-वृद्धत्व-परिणाम-कृतकेशश्यामश्वेतादि-परिणामदर्शनात् नखानामपि शरीरपरिणाम-वत् परिणामादर्शनात्तेषां जीवाधिष्ठितशरीरकार्य

कारण है) इस अनुमान मे ब्रह्म में जड़त्व आ जायगा । नच यह कहैं कि हेतु अचेतन नख, और केशादि का उपादान भूत चेतन वृत्ति भी है इसलिये व्यभिचारी है क्योंकि नख और लोमादिक मरे हुए शरीर में उत्पन्न नहीं होते है। किन्तु जब-तक शरीर जीवित रहता है तभी तक उत्पन्न होते हैं । इसलिये नख-लोमादि चेतनकेही कार्य हैं, ऐसा निश्चय होता है । सो नही कह सकते हैं । क्योंकि नख लोमादिक चेतनकी तरह चेतन नहीं है और परिणामी नहीं हैं, किन्तु जीते हुए शरीर में युवा-वस्था वृद्धावस्था के परिणाम कृत केशो में श्याम और श्वेतादि परिणाम देखा जाता है नखों में भी शरीर परिणामकी तरह परिणति देखी जाती है इसलिये जीवाधिष्ठित शरीर के ही कार्य है यही उपपन्न होता है इसलिये हेतु में व्यभिचार दोष नहीं है ।

त्वोपपत्ते स्तत्रव्यभिचारस्त्वाऽप्रसक्तेः। नाप्यचेतन गोमयमृच्छरीरादिभ्यस्तु वैधर्म्यंचेतनवृश्चिक-कृम्याद्युत्पत्तिदर्शनात्तद्दृष्टान्तेन कारणत्वेन 'वा' हेतुना ब्रह्मणोपि वैधर्म्याचेतनोपादानत्व-मुपपद्यते इति वाच्यं सव्रणवज्जीवच्छरीरैकदेशा-स्य जीवन्मक्षिकोपाधिककृमिपूर्णत्वदर्शनात् तद्दृ ष्टान्तेन मृच्छरीरगतकृमिणामपि मक्षिकोपाधि-

यदि यहां पर अचेतनम्" गोमयम, मच्छरीरादिभ्य वैधर्म्यम् चेतन वृश्चिक कृभ्यादि उत्पादि कत्वाद (अचेतन-गोमय मरे हुए शरीरों से वैधर्म्य होने पर भी चेतन बिच्छु, कीड़ा, आदि का उत्पादक होता है) इस दृष्टान्तसे अथवा इसी हेतुसे ब्रह्मको भी वैधर्म्य अचेतन की उपादानता आसकती है। अर्थात् जैसे अचेतन गोमय चेतन वृश्चिकादि का उपादान कारण है उसी प्रकार चेतन ब्रह्म अचेतन जगतका उपादान कारण हो जायगा। सो नहीं कह सकते। क्योंकि पार्थिव जीव विशिष्ट शरीर के एक देश में जीव विशिष्ट कीटोत्पादिका मक्षिकारूप उपाधि से कीड़ा उत्पन्न हो जाते है यह देखा जाता है इसी दृष्टान्त से मरे हुए शरीर में भी जो कीड़ा उत्पन्न होते है वेभी कीटोत्पादिका मक्षिकाके वजह से ही उत्पन्न होते हैं। अतः जीववान वा मृत शरीर में कीटोत्पादन में जैसे मक्षिका को ही उपादान कारणता है, उसी प्रकार गोमय से उत्पन्न वृश्चिकादिकों के प्रति जीवित हुई मक्षिका रूप उपाधि

कर्त्तोपपत्तेःतथैव गोमयोत्पन्नवृश्चिकादी-
नामपि जीवन्नाक्षिका द्युपाधिकत्वोपपत्तेस्त-
दृष्टान्तेन ब्रह्मणोऽचेतनवैधर्म्योपादानत्वानु-
पपत्तेः कारणत्वरूपहेतोर्घटाद्युनुपादानभूतकुला
लादिवृतित्वेन व्यभिचारित्वाच्च।

नापि स्वाप्नदृष्टान्तेन जगतोमिथ्यात्वमु-
पपद्यते स्वाप्निकवीर्यपातादेः सत्यत्वदर्शनात्
स्वाप्नपदार्थानां सुखदुःखरूपत्वात् बाह्यपदा-

से ही उत्पत्ति सिद्ध होजायगी उसी दृष्टान्त से ब्रह्म में अचेतन वैधर्म्य की उपादानता जो आप सिद्ध करते हैं सो उपपन्न नहीं होगी। इसलिये आपने जो सत्प्रतिपक्ष किया था सो नहीं बन सकता। यदि कारणत्वरूप हेतु को मान करके ब्रह्म में जगत के प्रति उपादान कारणता मानें तो घटादि का उपादान भूत जो कुलाल आदिक हैं, उनमें भी रहने से व्यभिचारी हो जायगा।

यदि आप स्वप्न दृष्टान्त से जगतमें मिथ्यात्व सिद्ध करना चाहें सो नहीं सिद्ध हो सकता? क्योंकि स्वाप्निक पदार्थ मिथ्या नहीं होते। स्वप्न में वीर्य पातादिक सत्य होता है। और स्वाप्न पदार्थ सुख दुःख रूपम् पुण्य पाप जन्य त्वात् वाह्य पदार्थ वत् (स्वप्नके पदार्थ सुख और दुख होते हैं क्यों कि पुण्य और पाप से जायमान हैं। जैसे बाह्य पदार्थ पुण्य पाप जन्य होने से सुख दुख रूप हैं) इस अनुमान से भी

र्थवत्पुण्यपापजन्यत्वानुमानात् पुराणेषु अदृष्टाश्रुत भावजन्मत्वनिषेधाच्च तेषां दृष्टश्रुतयथार्थसंस्कारजन्यत्वेन तद्द्वारा तद्धेतुपुण्यपापजन्यत्वावगमात्। अन्यच्च स्वप्नद्रष्टरीव ब्रह्मण्यज्ञत्वापत्तेः स्वाप्नसृष्टिवत् जगत्सृष्टेः ब्रह्मभिन्नार्थकत्वानुपपत्तेः, स्वाप्नानां वासनाजन्यत्वेन तत्रानाप्तकामत्वापत्तेश्च न चिदचित्स्वरूपस्य मिथ्यात्वं

स्वाप्निक पदार्थों में सत्यत्व सिद्ध होता है। पुराणों में अदृष्ट और अश्रुत भावपदार्थ की उत्पत्ति का निषेध किया है। उन स्वाप्निकपदार्थों के देखे और सुने गये पदार्थों के यथार्थ संस्कार से जायमानता होवेसे उसीके द्वारा उन पदार्थों मे पुण्य पापजन्यता का निश्चय होता है।

किंच—स्वप्नद्रष्टा में जैसे अज्ञता है वैसे ब्रह्म में भी अज्ञता आजायगी। क्योंकि जागृत सृष्टि जैसे ब्रह्म से भिन्न नहीं है वैसेही स्वाप्न सृष्टि भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है। पर च स्वाप्निक पदार्थ वासना से जायमान होनेसे ब्रह्ममें अनाप्तकामताभी आजायगी (आप के मतसे ब्रह्म से भिन्न अन्य चेतन है नहीं) विना वासना के स्वाप्निक पदार्थ उत्पन्न नहीं होसकते। इसलिये ब्रह्ममें वासना माननी पड़ेगी। वासना आने पर ब्रह्मका जो आप्त कामरूप जो गुण है वह नष्ट होजायगा। इसलिये चिदचिद स्वरूपको मिथ्यात्वभी नहीं उपपन्न होसकता न तुच्छता और न ब्रह्म उपादानता ही निष्पन्न हो सकती है।

न तुच्छत्वं न ब्रह्मोपादानत्वं च निष्पद्यते, किन्तु प्रकृतिजीवकारणादिमात्रत्वं प्रकृतिविशिष्ट-जीवानामनाद्यज्ञत्वं च तमसा प्रकाशाच्छादक-त्वानुपपत्तावपि अभ्रस्य सूर्यप्रकाशावरकत्ववद्विद्यायाः जीवज्ञानभूतप्रकाशावरकत्वोपपत्तेरा-काशादिविकाराणां प्रकृतिपरिणामविशेषत्वं च तेषां जीवकर्मनैमित्तिकत्वेन तद्भोगभोगोप-करण भोगस्थानार्थकत्वं चेश्वरस्य मायाद्वारा जीवकर्महेतुकविचित्रसृष्टिकर्तृत्वं तत्कर्मानुसा-

किन्तु प्रकृति और जीवको अनादि भावना है और प्रकृति विशिष्ट जीवों अनादि अज्ञता भी है। यद्यपि तमसे प्रकाश की आच्छादकता अनुपपन्न है। तथापि मेघ जिस प्रकार सूर्य का आवरक होजाता है उसी प्रकार अविद्याभी जीवके ज्ञान भूत प्रकाश का आवरक हो जाती है। इस लिये आकाशादि विकारों के प्रकृति का परिणाम विशेषत्व और उन विकारों के जीव के कर्मां के निमित्त से जीव के भोग भोगोपकरण, भोगस्थानार्थ कत्व, ईश्वर के माया के द्वारा निश्चय होता है जीव के किये हुए कर्म की वजह से विचित्र सृष्टि देखने में आती है जीवके कर्मों के अनुसार से जीवकी नियंतृता है और जीव के भोग, भोगोपकरण, भोगस्थान के सम्पादन के लिये प्रकृतिकी नियन्तृता है, और जीवों की परमेश्वर के प्रसाद से संसार की

रेण जीवनियन्तृत्वं जीवभोग भोगोपकरण भोग स्थानसम्पादनाय प्रकृतिनियंतृत्वंच जीवानां-परमेश्वरप्रसादकृतसंसृतिनिवृति श्च तंप्रसादयितु तदनवरत तच्चितनं चेति, गौरनाद्यंतवती सा जनयित्री भूतभाविनी । अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णां बह्वीं प्रजां जनयंतीं सरूपामजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगाम-जोऽन्यः । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् । मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरमिति, अंतः प्रविष्टः शास्ता जनानां तेसैयदेव तैक्षत हंता-हमिमास्तिस्नोदेवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रवि-श्य नामरूपे व्याकरवाणीति तासांत्रिवृतं त्रि वृतमेकंकांकरवाणीति सेयं देवतेमास्तस्रो

निर्वृत्ति होती है । उस परमात्मा को प्रसन्न करनेके लिये अन-वरत उनका चिंतवन करनायही निश्चयहोताहैं । "और नाद्यंतवती जनयित्री भूतभाविनि" मंत्र से लेकर, "अनन्य चेता सततं योमा स्मरति नित्यशः । तत्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य यो-गिनः" इहाँ तक के मूलोक्त वचनों से परमात्मा में वैषम्य और नैघृण्य नहीं है । "न कर्मणामनादित्वात्" इत्यादि श्रुति स्मृति

देवताः अनेन जीवेनात्मनानु प्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोदिति धातुः प्रसादादिनरोवीतशोकः, यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्य इति। प्रकृतिंपुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि। विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति सम्भवान्। ममयोनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्। सम्भवः सर्वभूतानांततो-भवति भारत। कार्य-कारणकर्तृत्वे हेतुःप्रकृतिरुच्यते। पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते। मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः। तेषां सततयुक्तानां भजतांप्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। अनन्य-चेताः सततं योमां स्मरति नित्यशः। तस्याहं

सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः इति वैष-म्यनैघृ र्ण्येन सापेक्षत्वात् न कर्मणामनादित्वा-दित्यादि श्रुतिस्मृति सूत्रैरवगम्यते । तदेव अजामेकामित्यत्र प्रकृतेः स्वसमानलोहितादि-रूपवत्कार्यजनकत्वश्रवणात् । यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपंमित्यत्र कार्यभूतानां तेजआदी नामग्न्यादीनां च लोहितादिरूपवत्त्वश्रवणाच्च; ब्रह्मणोलोहितादिरूपत्वाश्रवणाच्च; तेजआदीनां प्रकृत्युपादानकत्वोपपत्तेः । पुनः अव्यक्त मक्षरे लीयते, अक्षरं तमसि लीयते, तमः परे देवे एकी-भवतीत्यत्र तमःशब्दितायाः प्रकृतेः सूक्ष्मरूपा-याः परदेव लयत्व-श्रवणात् स्वस्मिल्लीनस्य स्व-

---

और सूत्रों से निश्चय होता है । अतएव "अजामेकां" यहां पर प्रकृति के स्व-समान लोहितादि रूपवाले कार्यों की जनकता श्रुत है । और "यदग्नेरोहितं रूपम्" यहां पर भी कार्य भूत तेज आदिक और अग्नि आदिकों के लोहितादि रूपवत्ता श्रुत है। ब्रह्म में लोहितादि रूपवत्ता कहीं भी श्रवण नहीं की गई है, इस लिये तेज आदि कार्यों को प्रकृति उपादानकताही सिद्ध होती है ।

स्मात्सृष्ट्युपपत्तेः यथा तस्माद्वारातस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निरित्यादि श्रुत्यनु रोधात् तत्तेजोऽसृजदित्यत्र-गुणोपसंहारन्यायेन तद्ब्रह्मआकाशं वायुं च सृष्ट्वा तेजोऽसृजदित्येवं मन्यते तथैव स्वलीनस्य तमसोप्यवश्यं सृज्यात् प्रकृतेः स्वस्वरूपकार्य-जनकत्वश्रुत्यनुरोधात् तेजआदीनां कार्याणां प्रकृतिस्वरूपत्वश्रुत्यनुरोधाच्च अस्मान्मायी सृजते विश्वमिति स्फुटं ब्रह्मणोमायाद्वारा विश्वस्रष्टृत्व श्रवणाच्च।

पुनः "अव्यक्तं अक्षरे लीयते" इस श्रुतिमें भी तमः शब्द वाच्य सूक्ष्मरूपा प्रकृति का पर देवता में लयका श्रवण हुआ है। अपने में लीनकी अपने से ही सृष्टि की जाती है, क्योंकि "तस्मात् वाएतस्मादात्मन अकाशः संभूत" इस श्रुति के अनु-रोध से ज्ञात होता है। "तत्तेजोऽसृजत" यहां पर गुणोपसं-हारन न्याय से उस ब्रह्म ने अकाश वायु की सृष्टि करके तेज की सृष्टि की ऐसाही माना जाता है। उसी प्रकार अपने में लीन तम भी अवश्य सृष्टि करने योग्य है। इसलिये प्रकृति अपनी स्वरूप कार्यका ही जनक होगा। तेज आदि कार्यों के प्रकृति स्वरूपता श्रुति के अनुरोध से मानना होगा। और दूसरे "अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्" इस श्रुति से तो स्प-

कस्मात् तद्ब्रह्म तेजोऽसृजदित्याकांक्षायां मायात इत्यवश्यं वक्तव्यात्च। ममयोनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्। मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरमित्यादिस्मृतीनां तदर्थप्रकाशकत्वाच्च। आत्मन आकाशः संभूत इत्यत्रापि आत्मनः प्रकृतिः सम्भूता प्रकृतेराकाश इत्येवं मन्तव्यं। तत्तेजोऽसृजदित्यत्र तु तत्प्रकृतिमाकाशं वायुं च सृष्ट्वा तेजोऽसृजदित्येवं च यदि त्वात्मन आकाशः सम्भूत इत्यत्राकाशवायोः सृष्टिश्रवणात् तत्तेजोऽसृजदित्यत्र • तदश्रव-

---

इतना, माया के द्वारा ब्रह्म विश्व सृष्टि की रचना करता है क्योंकि उस ब्रह्म ने किससे तेज की सृष्टि की यह आकांक्षा होने पर माया से की, यह अवश्य कहना होगा। क्योंकि इसी अर्थ को "मम योनि महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भंदधाम्यहम्...मया ध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्" इत्यादि स्मृति प्रकाशन करती है, "आत्मन अकाशः संभूतः" यहां पर भी आत्मा से प्रकृति हुई और प्रकृति से आकाश हुआ ऐसाही मानना चाहिये। "तत्तेजोऽसृजत" यहां पर आकाश और वायु की सृष्टि करके तेज की सृष्टि की ऐसाही मानना चाहिये। यदि ऐसा माना जाय कि आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, यहां पर

णाञ्च द्वयोर्वाक्ययोर्विसंवादित्वेनाप्रामाण्यापत्ति निरासायाकाशवायू अन्यत्रोपसंहार्य्यत्वेनोपसंह्रियते तद्ब्रह्मा काशवायू स्टष्ट्वा तेजोऽसृजदित्येवं न च क्वापि प्रकृतेर्ब्रह्मसृष्टित्वं श्रूयते येन तद्विरोधनिरासायात्मन आकाशः सम्भूत इत्यादौनेदुपसंहार उपपद्येत इत्युच्यते हंत तर्हि तमः परे देवे एकीभवतीति प्रलये तमःशब्दवाच्यायाः प्रकृते ब्रह्मणि लीनत्व–श्रवणात् प्रलये लीनस्यावश्यं ब्रह्मण उद्भवत्वोपपत्तेस्तस्यापि ब्रह्मसृष्टत्वमुपपद्यते । अतः पुरुषापेक्षि-

---

आकाश और वायु की सृष्टि श्रुत है, "तत्तेजोऽसृजत" यहां पर आकाश वायु की सृष्टि का अश्रवण होने में दोनों वाक्यों के विसमवादी होने से अप्रामाण्य होजायगा। इस अप्रामाण्य दोष वारण करने के लिये आकाश वायु जो अन्यत्र श्रुत हैं उनका यहां उपसंहार किया जाता है। "अर्थात् तत्तेजोसृजत" इस वाक्यका अर्थ इस प्रकार करेंगे कि उस ब्रह्मने आकाशवायु की सृष्टि करके तज की सृष्टि की, कहीं भी प्रकृति से ब्रह्म की सृष्टि नहीं सुनी गई। जिससे उस विरोध के परिहार करने के लिये, "आत्मन आकाशः संभूतः" यहां पर उसका उपसंहार किया जाय, प्रत्युत "तमः परे देवे एकी भवति" यहां पर प्रलय

ताया स्त्रियइव ब्रह्मोच्चितायाः प्रकृतेस्तेजआद्य-
चेतानांशजनकत्वेन तन्मात्रोपादानत्वं निर्वि-
वादमुपपद्यते ।

न चात्र तत्तेजोऽसृजदित्यादिश्रुतिभिर्ज-
गतो ब्रह्मोपादानकत्वंवाच्यं सदेव सोम्येदमग्र-
आसीत् सेयं देवता, इमास्तिस्त्रो देवता, अनेन
जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोदित्य य
वाक्यस्य तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपा
भ्यां व्याक्रियदसौनामायमिदंरूप इति । स एष
इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यइत्यादिवाक्यैरैका-
र्थ्यात् । सदेव सोम्येति सच्छब्दस्याव्याकृतनाम

में तमः शब्द वाच्य प्रकृति का ब्रह्म में लीन होना सुना गया है । इसलिये प्रलय में लीन प्रकृति का ब्रह्म से अवश्य उद्भव स्वीकार करना होगा । इसलिये प्रकृति भी ब्रह्म से उत्पन्न है। इसी अभिप्राय से पुरुष से देखी गई स्त्री की तरह ब्रह्म से देखी गई प्रकृति को तेज आदि अचेतन पदार्थ की जनकता है। इतने ही मात्र से उपादानता इसमें मानी जाती है ।

यदि ये कहें कि—'तत्तेजोऽसृजत' इत्यादि श्रुतियों से जगतका उपादान कारण ब्रह्म है । सो नहीं कह सकते क्योंकि सदेव सोम्येदं········सेयं दैवतैक्षत······इमास्तिस्रोदेवता

रूपचिदचिद्विशिष्टब्रह्मपरत्वोपपत्तेः व्याकृत नामरूपजगद्विषयकस्येदंशब्दस्य उभयोर्वाक्ययोः श्रवणाच्चोभयोरवान्तरसृष्टिविषयकत्वोपपत्तेः ।

न चात्मन आकाशः सम्भूत इत्यत्र केवलात्मशब्दश्रवणात् व्याकृत नामरूपजगदर्थकेदंशब्दा श्रवणाच्चात्मानोजगदुपादानकारणत्वमवगम्यते श्रुतिबलादिति वाच्यं, आत्मन इति ब्रह्मण आकाशाद्युपादानत्वश्रवणात् भूधरादवतरति गंगेति भूधरगंगयोरिवात्माकाशयोरेकत्वाद्युपपत्तेः मृदोघटो भवतीत्येवं प्रकृति–

......एवमादि वाक्यों का, तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्, एवमादि वाक्यों के साथ एक वाक्यता है।

सदेव सोम्येदं......यहां पर सच्छब्दवाच्य अव्याकृत नाम रूप चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म है। और व्याकृत नाम-रूप जगद्विषयक इदं शब्दका प्रयोग सुनागया है। इस लिये दोनों में ही अवान्तर सृष्टि की विषयकता है।

यदि कहें कि आत्मन आकाशः संभूतः,, यहां पर केवल आत्म शब्द श्रुत है, व्याकृत नाम रूप जगत का बोधक इदंशब्द का श्रवण है नहीं, इस लिये आत्मा ही जगत का उपादान कारण है यह श्रुति बल से निश्चय होता है। सो नहीं मान

विकृतिसामानाधिकरण्यमिव आत्माकाशो भूदित्येवं तत्तेजोसृजदित्यत्र तत्तेजोऽभवदित्येवं चाश्रवणाच्च बलात्तस्य तदुपादानकत्वस्वीकारे आकाशादिषु ब्रह्मनिष्ठचिदेकरसत्वज्ञानरूपत्वापत्तिः, ब्रह्मणि जड़त्वापत्तिश्चेत्यादिपूर्वोक्तदोषबाहुल्यापत्तेश्च । आत्मा वा इदमेक एवाऽग्र आसीदित्यात्मपरवाक्यान्तरेपीदं शब्दश्रवणादस्यवाक्यस्यानुरोधेन तस्य नेतव्याच्च । कथमितिचेत् यदिदं व्याकृतनामरूपमाकाशादि, अग्रे सृष्टेः पूर्वमात्मा एक आत्मनि लीनः

सकते । क्योंकि आत्मा शब्द से ब्रह्म का बोध होता है इसलिये ब्रह्म आकाशादि का उपादान है । जैसे पर्वत से गंगा उतरती हैं इन पर्वत और गंगा में जैसे एकत्व अनुपपन्न है, उसी प्रकार ब्रह्म से आकाश उतरता है इसलिये ब्रह्म आकाश एकता नहीं हो सकती । जसे मृदो घटो भवन्ति,, इसमें प्रकृति और विकृति के साथ समानाधिकरण है उसप्रकार आत्माकाशो अभूत,, ऐसा सामानाधिकरण्य नहीं सुना गया तथा तत्तेजो ऽसृजत, यहां पर तत्तेजोऽभवत्,, ऐसा सामानाधिकरण्य नहीं श्रुत है । यदि बलात्कार से ब्रह्म को जगत्का उपादान कारण स्वीकार करलेंगे तो आकाशादिको में, ब्रह्ममें रहने-

सन्नात्मैकत्वं प्राप्त आसीत् तदनभिव्यक्तनामरूपमाकाशादि तस्मात्स्वलयाधिकरणादात्मनः संभूतः प्रादुर्भूतं तस्मान्निःसृत्य व्याकृतनामरूपमभवदित्यर्थः।

किंच सदेव सोम्येदमग्र आसीत् तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीदित्यादि बहुवाक्यानुरोधेन आत्मन आकाश इत्येकस्यं नेव्याख्यातव्यापि वाक्य

वाली जो चिदेक रसता ज्ञानरूपता, वह आजायगी, और ब्रह्ममें जगत का धर्म जो जड़त्वादि है वह आजायगा। एवमादिपूर्वोक्त दोष बहुत से आजायगें।

"आत्मावाइद मेक एवाऽग्र आसीत्" इत्यादि आत्मपरक अन्यवाक्योंमेंभी इदं शब्द आत है, इसलिये इसवाक्य के अनुरोधसेही उस वाक्य का भी अर्थ करना चाहिये। यदि कहो कि कैसे अर्थ करना चाहिये। तो सुनो जो यह व्याकृत नाम रूप वाला आकाशादि है वह सृष्टि के पहले आत्मा में था अर्थात् आत्माके साथ एकत्व भाव को प्राप्त था वही आकाशादिक जगत जो कि अनभिव्यक्त नाम रूप वाला था वह अपने लय के अधिकरण आत्मा से प्रादुर्भूत हुआ। अर्थात् उस आत्मा से निकल कर व्याकृत नाम रूप भाव को प्राप्त होगया ऐसा अर्थ करना चाहिये।

किंच "सदेव सोम्येदं·····तद्धेदं·····इत्यादि बहुत वाक्यों के अनुरोध से, आत्मन आकाशः संभूतः" इस एक

स्य प्रलयकाले स्वस्मिन् विलीय सूक्ष्मरूपेण स्थितस्य तदवसाने तन्नामरूपव्याकरणात्मकसृष्टिविषयकत्वमुपपद्यते, कुतः न्यायानुगृहीत श्रुतिविसम्वादित्वेनाप्रामाण्यं गच्छन्त्याः श्रुतेस्तद्विरुद्धार्थान्तरत्वकल्पनं विना प्रमाणत्वानुपपत्तेः। तदेवं कस्यापि वाक्यस्य ब्रह्मोपादानकं जगदित्येतदर्थपरत्वानुपपत्तेः, अस्मान्मायी सृजते इति प्रकृतिद्वारा ब्रह्मणो जगत्कारणत्वश्रवणात्-मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहमिति तथैव स्मरणाच्च। मायाविशिष्टस्यैव तस्य

वाक्य को भी उन्हीं वाक्यों के साथ समन्वित करना चाहिये। इसलिये इस वाक्य को भी प्रलयकाल में अपने में विलीन होकर सूक्ष्म रूपसे स्थित प्रलय के अवसान में वही नाम रूप व्याकरणको प्राप्त होकर सृष्टिभावको प्राप्त होगया। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो न्यायानुगृहीत श्रुतिको विषम वादिनी होनेसे अप्रामाणता आजायगी। इसलिये उसके विरुद्ध अर्थान्तर की कल्पना के विना श्रुति में प्रामाण्य उपपन्न नहीं होसकता इसलिये किसी भी वाक्य का ब्रह्मोपादान जगत है ऐसा अर्थ उपपन्न नहीं हो सकता, क्योंकि "अस्मान् मायी सृजते,, इस श्रुति प्रकृति के द्वारा ब्रह्म को जगत् कारणता सुनी गई है इसी प्रकार "मम योनिः महद्ब्रह्म,, इस गीता वाक्य में भी स्मरण किया

जगत्कारणत्वमुपपद्यते । त्वयापि शबलब्रह्मणोऽनु-
पादानत्वं गीकृतत्वात्, तत्रापि चेतनभूत आकाशवायु
तेजआदीन् स्वरूपान् प्रति प्रकृतेरुपादानका-
रणत्वं तस्यापरिणामित्वादुपपद्यते सूक्ष्मकारणा-
वस्थाप्रकृतिविशिष्टचेतनस्य स्थूलावस्थकार्य-
प्रकृतिविशिष्टप्रत्युपादानत्वं च एतदुक्तं भवति
सूक्ष्मरूपा प्रकृतिराकाशादिरूपेण परिणमते तयो
जडत्वेन विकारितया मृद्घटादिवत् दुग्ध-
दध्यादिवच्च परिणामिपरिणामत्वोपपत्तेस्तयो
रुपादानत्वमुपादेयत्वं च मुक्तमुपपद्यते चेत-

मत ..., इसलिये मायाविशिष्ट ही ब्रह्म जगत का कारण है, आपने भी माया सवलित ब्रह्म कोही जगत का उपादान कारण स्वीकार किया है। उन आपके मतमें भी चेतन, भूत, आकाश, वायु तेजआदि स्वरूपो के प्रति प्रकृति कोभी उपादान कारणता है, क्योंकि ब्रह्म अपरिणामी है। और सूक्ष्म कारणावस्थ प्रकृति से युक्त चेतन ही की अवस्था में स्थित कार्य प्रकृति-विशिष्ट के ही प्रति उपादानता सिद्ध होती है। इसका तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म रूपा प्रकृति आकाशादि रूपमे परिणत हो जाती है। प्रकृति और आकाशादि को जड़ होने से विकारी होने से मिट्टि और घट की तरह अथवा दुग्ध और दधिकी तरह परिणामी और परिणामता उत्पन्न होती है। अत प्रकृति और आका-

नानां तु नित्यत्वादविकारित्वेनापरिणामि त्वाच्च न कस्य कार्य्यत्वं न कं प्रति कारणत्वं च मुख्यवृत्त्योपपद्यते किन्तु सूक्ष्माचिदद्विशिष्टस्य स्वकर्महेतुकस्थूलकार्याचितं प्रति तदौपाधिक-मुपादानत्वसूक्ष्माचिदचिद्विशिष्टस्यैबाल्यप्रसृतज्ञानवतः कार्यस्थूलचिदचिद्विशिष्टं तदनुरूप बहु-प्रसृतज्ञातवन्तं प्रति च गौणं तदुपपद्यते। पर-मात्मनस्तु सूक्ष्माचिदचिद्विशिष्टस्य कार्याचितं प्रति तदौपाधि कम्, पुनश्च प्रकृतेर्जडत्वेन स्वतः परिणातुमसमर्थायाः कार्याकारेण परिणामयितृत्वाच्च। किंच तदन्तर्गतस्य तत्परिणामयितुः सर्वव्यापकत्वेन सर्वत्र विद्यमानस्यैव कार्या-

---

शादिको उपादान और उपादेय मुख्यही है चेतनों के नित्य होनेसे और अविकारी, तथा अपरिणामी होने से न तो किसी कार्य के प्रति कारणता है और न किसी प्रति कार्यता है। किन्तु सूक्ष्म चिद चिद्वि शिष्ट कोही अपना किया हुआ जो कर्म तद्धे-तुक स्थूल कार्य अचित् के प्रति औपाधिक उपादानता है। जैसे सूक्ष्म चिद चिद्विशिष्ट बालावस्था में संकुचित ज्ञान वाले पुरुषको स्थूल कार्य बहुत ज्ञान प्रसरण के प्रति उपादानता

करेण परिणामं गच्छंत्या तथैव सह परिणामगान-स्यैव तत्कारणत्वं गौणमुपपद्यते न तु मुख्यं तस्य निरवद्यनिर्विकारित्वेनापरिणामित्वाच्च । कार्यस्य कारणत्वानुपपत्तेः तदेतद्ब्रह्मापूर्वमपर-मनि तत्कारणस्यकार्यस्यनिषेधश्रुतेश्च।

ननु नैतद्युक्तं अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मा-स्मीति, सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादितदुपादान-कारणत्वपरमहावाक्यविसंवादित्वादिति चेन्न-न्यायानुगृहीतानां नित्यनिर्विकारिसच्चिदानन्द सर्वज्ञसर्वशक्तिमद्ब्रह्मस्वरूपपरानेकश्रुतीनां विसं

गौण है, उसी प्रकार चेतन कोभी उपादानता गौण है परमात्मा तो जोकि सूक्ष्म चिद चिद्विशिष्ट है वह अचित् कार्य के प्रति औपाधिक कारणत्व और प्रकृति के जड होने से उसमें स्वत परिणाम होनेकी सामर्थ्य नही है, इसलिये वह कार्य कर नहीं सकती, इसलिये परिणाम कर्तृत्व परमात्मामें नही है।

अब सन्देह यह करते हैं कि यह जो आपने कहा है सो ठीक नही है। क्योंकि "अयमात्माब्रह्म" "अहब्रह्मास्मि" सर्व खल्विद ब्रह्म" इत्यादि महा वाक्यों से ब्रह्म को उपादान कारणत्व प्रतिपादन किया गया है, आपके प्रतिपादनानुसार, इन वाक्यों में विषम वादिता आजायगी। ऐसा यदि कहो सो नही कह सकते। क्योंकि न्याय से अनुगृहीत नित्य निर्विकारी

वादित्वे न तेषामेवाप्रमाणत्वापत्तेः। नहि न्यायविरुद्धं संभावितार्थकं बहुश्रुतिविरुद्धं चासंभावितार्थं वदत् श्रुतिशतमपि प्रामाण्यमुपेत्य तेषां महावाक्यानां प्रामाण्यान्यथानुपपत्त्या न्यायानुगृहीतसंभावितार्थकश्रुत्यविरुद्धकमर्थान्तरत्वं कल्प्यं त्वयापीत्युक्तत्वात् न ह्यग्निरनुष्णः शीतो वेति वदत् श्रुतिशतमपि प्रामाण्यमुपैति तथापि तत्प्रामाण्याऽन्यथाऽनु

सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ-सर्व-शक्तिमत्, ब्रह्म स्वरूप प्रतिपादक अनेक श्रुतियों में विषम वादिता आ जायगी। अतः उनमें अप्रामाण्यता की आपत्ति होने से, पूर्व महा वाक्यों का अर्थ इन वाक्यों के अनुगत ही करना होगा। क्योंकि न्याय के विरुद्ध संभावित अर्थ वाली बहुत श्रुतियों के विरुद्ध असंभावित अर्थ को कहने वाली सैकड़ों श्रुतियों में भी प्रामाण्यता नहीं आती, किन्तु संभावित अर्थक श्रुतियों में ही प्रामाण्य है। इसलिये उन महा वाक्यों के प्रामाण्य अन्यथा अनुपपन्न है इसलिये न्यायानुग्रहीत संभावित अर्थक श्रुतियों के अविरुद्ध अर्थान्तर की कल्पना आपको भी करना ही होगा, कोई कहे कि अग्नि उष्ण नहीं होती शीत होती है, यह प्रत्यक्ष विरुद्ध बात को सैकड़ों श्रुति भी कहें तो भी प्रामाण्य नहीं हो सकता। तो भी उस प्रामाण्य के अन्यथा अनुपपत्ति से श्रुति को दूसरा अर्थ

पपत्त्या श्रुतेरर्थान्तरत्वं कल्प्यं तदपि स्ववचनाविरुद्धं प्रामाणान्तराविरुद्धं चेति। तत्रैवं सति चिदचिदीश्वराणामीश्वरस्य सर्वव्यापकत्वसर्वशरीरत्वसर्वनियंतृत्वादिनाप्राधान्यात् तद्वादस्तद्वाद इति न्यायाच्च। यथा पंचमहाभूतात्मकेष्वपि पृथिव्यादिषु यस्य प्राधान्यं तद्वाचकेनैवेयं पृथिवी इदं जलं इदं तेज इति पंचभूतसमूहो व्यपदिश्यते तथा चिदचिदीश्वरात्मकमपीदं जगत् तत्प्रधानभूतेश्वरवाचकेन ब्रह्मादिशब्देन

कल्पना करना चाहिये। और वह अर्थ भी अपने वचन से विरुद्ध न हो और प्रमाणान्तरसे भी विरुद्ध न हो, एसी कल्पना करना चाहिये। ऐसा सिद्धान्त होने पर चिद् अचिद् और ईश्वर के मध्य में ईश्वर में सर्व व्यापकता, सर्व शरीरिता, सर्व नियन्तृतादि प्राधान्य है। और प्राधान्यात्, तद्वादस्तद्वादः" इस सूत्र से भी ईश्वर को प्राधान्यता है। जैसे पंच महाभूतात्मक भी पृथिव्यादिकों में जिसकी प्राधानता होती है, तद्वाचक शब्दसे ही उसका व्यपदेश होताहै, जैसे यहपृथिव यह जल यह तेज इत्यादि पंचभूतों का समूहभूत भी पृथिव्यादिकों का अलग २ व्यपदेश होता है। उसी प्रकार चिद् चिद् ईश्वर आत्मक भी यह जगत इन तीनों में प्रधान भूत ईश्वर

व्यपदिश्यते सदेव सोम्येदं, सर्वं खल्विदं ब्रह्मे त्येवमादिभिः। किंच यथालेख्यमूर्त्युपरिस्थो-दर्पणः तन्मूर्त्तिरूपेणैव दृश्यते न तु तत्पृथक्त्वेन सुचक्षुषां न तु तिमिरादिदोषवतां यथा च तद्दोष निवृत्यनंतरं तेषामपि तथैव दृश्यते तथा स्व-भावेनैवातिस्वच्छं जीवस्वरूपं तदन्तर्बहिरन्तर्व्याप्त-ब्रह्माकारेणैव दृश्यते निवृत्ताज्ञानानां न त्वज्ञानां तत्तेषामपि ब्रह्मविद्ययाऽज्ञाननिवृत्यनंतरं ब्रह्मरूपे

वाचक-ब्रह्मादि शब्द से व्यपदेश किया जाता है। सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "सदेव सोम्येदं" इत्यादि श्रुतियों मे।

किंच—जैसे चित्रमूर्ति के ऊपर स्थित दर्पण उस मूर्ति के रूप से ही दिखाई पड़ता है, उस मूर्ति से अलग सुन्दर चक्षु वालों को नहीं दिखाई पड़ता, तिमिरादि दोष दूषित चक्षु वाले भले ही उलटा पलटा देख लें, परन्तु उनका भी जब दोष नष्ट हो जाता है तो वे भी यथा स्थित रूप से ही देखने लगते हैं उसी प्रकार स्वभाव से ही अति स्वच्छ जीव का स्वरूप उससे भीतर बाहर व्याप्त ब्रह्माकार से उनको दिखाई पड़ता है, जिनका अज्ञान निवृत्त हो गया है, अज्ञानियों को नहीं दिखाई पड़ता है अज्ञानियों को भी ब्रह्म विद्या से जब अज्ञान की निवृत्ति हो जायगी तब वही अति स्वच्छ जीव का स्वरूप भीतर बाहर व्याप्त ब्रह्माकार से दिखाई पड़ेगा। इसी अर्थ को

णैव दृश्यते इतीममर्थं प्रकाशयंति अयमात्मा ब्रह्म, तदात्मान मेवावेदहं ब्रह्मास्मीत्येवमादीनि महावाक्यानि। प्रज्ञानमानंदं ब्रह्मेति वाक्यं तु ब्रह्मज्ञानाऽऽनन्दादयोजीवज्ञानाऽऽनंदादुत्कृष्ट-त्वसूचनद्वाराऽज्ञानासंस्पर्श्यत्वसूचनेन ब्रह्म-जीवभेदे पर्यवस्यतीति ध्येयं। तदैक्षत बहु-स्यां प्रजायेयमिति, एकोहं बहुस्यामित्येवमादिषु श्रुतं तद्बहुरूप भवनमपि इन्द्रो मायाभिर्बहुरूप ईयत इत्येवमादिवाक्यानुरोधात् मायाकृतबहु-शरीरोपाधिक ततज्जीवभेदक ततत्तदन्तर्यामित्व-

---

"अयमात्मा ब्रह्म, तदात्मानं एव अवेत्, अहं ब्रह्मास्मि" एव मादि महा वाक्य प्रकाशित करते हैं। "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" यह वाक्य तो ब्रह्म के ज्ञान और आनन्दादिकों से उत्कृष्ट है इस बात को बताते हुए ब्रह्म में अज्ञान का स्पर्श नहीं होता है, इस सूचना से भी ब्रह्म और जीव का भेद प्रतिपादन करता है यही जानना चाहिये।

यदि कहो कि "तदैक्षत बहुस्याम्, प्रजा येयं,, एकोहं बहुस्याम्"। इत्यादिक श्रुतियों में तो ब्रह्म को ही बहु रूप से होना प्रतिपादन किया गया हैं। यह बहु भवन "इन्द्रो मायाभिः बहुरूप ईयते,, एवमादि वाक्यों के अनुरोध से मायाकृत बहु शरीरोपाधिक तत्तत ज्जीव भेद कृत है, और तत्तद अन्तर्याम-

रूपभेदेनोपपद्यते; नतु तत्तदुपाध्युपहिततत्तज्जीवरूपेण ब्रह्मणि सर्वजीवसुखदुःखःभोक्तृत्वादिवद्ब्रह्मनिष्टापत्तेः। किञ्च छान्दोग्ये तत्त्वमसीति वाक्यस्य सदेव सोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्मतदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयमिति तत्तेजोऽसृजदेतस्मादारभ्यास्य सोम्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामित्यन्तेषु सृष्टिप्रलयवाक्येष्वन्तर्गतत्वेन तत्प्रकरणस्थत्वावगमात् तथा वृहदारण्यकेऽप्यहंब्रह्मास्मीति वाक्यस्य तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्त-

---

रूप भेद से उपपन्न है, नकि तत्तदुपाधि से उपहित तत्तज्जीव से,, यदि आपके अनुसार ब्रह्म में गहुभंवन मान लेवें तो ब्रह्म में सब जीवों के सुख दुःखों की भोक्तृता आजायगी, यह बड़ी अनिष्टा पत्ति होगी।

किंचः—छान्दोग्य उपनिषद में "तत्वमसि" इस वाक्य के "सदेव सोम्येदमग्र मासीत्, एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म" तदैक्षत वहुस्याम् प्रजायेय, तत्तेजोऽसृजत" यहां से आरंभ कर "अस्य-सोम्य प्रयतो वङ्मनसि सम्पद्यते मनस्तेजसि, तेजः परस्याम्न्देवतायाम्,, यहांतक के सृष्टि प्रलय वाक्यों के अन्तर्गत होने से उस प्रकरण केही भीतर माना जाता है। इसी प्रकार वृहदारण्यक में "अहं ब्रह्मास्मि" इस वाक्य को तद्धेदं, तर्ह्यव्याकृत

न्नामरूपाभ्यां व्याक्रियतामोनामायमिदं रूपइत्या-
दिषु ब्रह्म वाइदमग्रआसीदेकमेव तदेकं सन्नव्य
भवत्तत्तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत क्षत्रं यान्येतानि-
देवक्षत्राणीन्द्रोवरुणः सोमोरुद्र इत्यन्येषु सृष्टि-
स्थिति प्रलयेषु चिदचिदत्स्वरूपस्थितिप्रवृत्योः-
परमेश्वराधीनत्वावगमात् परमात्मव्यतिरेकेण
तत्स्वरूपालाभात् तयोश्चिदचितोः सर्वव्याप-
कापरिछिन्नपरमात्मव्यतिरेकत्वासिद्धेश्च, तदन्व-
येनैव तत्स्वरूपलाभाच्च। गवादिव्यतिरेकासिद्ध
तदन्वयसिद्धगोत्वादिवत् द्रव्यान्वयव्यतिरेकसिद्धा

मासीत वहां से लेकर "इन्द्रो वरुण सोमोरुद्र,, यहांतक के सृष्टि स्थित प्रलयवाक्यों के अतर्गत होने से सृष्टि स्थिति प्रलय वाक्यों में चित् और अचित् स्वरूप की स्थिति और प्रवृति पर-मेश्वर अधीन है वह जानने से परमात्मा के अतिरिक्त इन दोनों चिद अचिद का स्वरूप काही लाभ न होगा, इसलिये दोनों चिद् और अचिद की सर्व व्यापक, अपरिछिन्न, ईश्वर के विना असिद्धि है, उसी परमात्मा सेही अन्वित होने पर उनके स्वरूप का लाभ है जैसे गऊ के पृथक् गोत्व की असिद्धि है और जो व्यक्ति अन्वित ही गोत्व को स्वरूप की सिद्धि है। तथा द्रव्य के विना असिद्ध और द्रव्य से अन्वित सिद्धि वाले गुण की तरह चिद और अचिद की परमात्मा के अन्वय और व्यतरेक से

सिद्धगुणत्वच्च । तयोस्तदन्वयव्यातिरेकसिद्धय मिथ्युपपत्तेः । गुणस्वरूपह्रस्वत्वदीर्घत्वयोस्त-दाश्रयघटादिद्रव्यकृतत्वमिव प्रकृतिसूक्ष्मत्वस्थूल त्वयोर्जीवधर्मभूतज्ञानसंकोचविकासयोश्च तद्वि शेष्यरूपपरमात्मकृतत्वोपपत्तेः चिदचिद्विशेष्य-रूपत्वेन मुख्यत्वात् परमात्मनोनिखिलस्थूल-चिदचिदुपादानकारणत्वं मुख्यापि वृत्योपपद्यते इति सूक्ष्मचिंदचिद्विशिष्टं ब्रह्म कारणावस्थं तदेव स्थूलचिदचिद्विशिष्टं कार्यशब्दवाच्य-मिति कार्याणां कारणाव्यतिरेकेण तद्विशेषरूप-

---

सिद्धि और असिद्धि है गुण स्वरूप में जैसे ह्रस्वत्व और दीर्घत्व गुणाश्रय घटादि द्रव्य कृत है उसीप्रकार प्रकृति का स्थूलत्व और सूक्ष्मत्व तथा जीव के धर्म भूत ज्ञान का संकोच और विकास इन दोनों प्रकृति और जीव के विशेष्य रूप परमात्म कृत है, इसलिये परमात्मा चिद अचिदका विशेष रूप होने से मुख्य है। और निखिल स्थूल चिदचिद के प्रति उपादान कारणता मुख्य वृत्ति से भी उपपन्न होती है, क्योंकि सूक्ष्म चिदचिद्वि-शिष्ट ब्रह्म कारणावस्थ कहा जाता है और वही स्थूल चिदचिद्वि शिष्ट कार्य शब्द वाच्य होजाता है कारण कार्य से अभिन्न होकरही विशेष रूप होतेहै। विशेषण, सामाण्यानन्तर गत होते है, इसलिये कारण के ज्ञान में कार्य का ज्ञान होता है ऐसा

त्वात् विशेषाणां सामान्यान्तर्गतत्वाच्च । कारण-विज्ञानेनकार्यविज्ञानमात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितमित्यादिश्रुति-श्रुतं तथा दुन्दुभि शंखादि-सामान्यशब्दविज्ञानान्तर्गततद्विशेषशब्द-विज्ञानदृष्टान्तवचनादिकंच सर्वमस्मिन्पक्षे सुतरामुपपद्यते ।

किंचतदविनाभूतविशेषणविज्ञानस्य स्व-विशेष्यविज्ञानान्तर्गतत्वमिव तदविनाभूतचिद-च्छिज्ञानस्य तद्विशेष्यभूतपरमात्म विज्ञानान्तर्गत-त्वोपपत्तेश्चात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते इत्येव-

---

"आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते" एवमादि श्रुतिवाक्योंने प्रतिपादन किया गया है । तथा दुन्दुभी, शंखादि सामान्य शब्दोंके विज्ञान के भितरही तद्विशेष शब्द के विज्ञानका जो दृष्टान्त वचन हैं, वहभी इस पक्ष में अच्छी तरह उपपन्न हो जाता है ।

किंचः—जो पदार्थ जिसमे अविनाभूत होता है, उस अविना भूत विशेषण का विज्ञान जैसे अपने विशेष्य विज्ञान के अन्तभूत हैं । उसी प्रकार ब्रह्म मे अविनाभूत चिद और अचिद का विज्ञान, अचित अचिद के विशेष्य भूत परमात्मा के अन्त-भूत है "आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते" इत्येवमादि श्रुतियों में सुनि गई आत्म विज्ञान होने से सर्व विज्ञानकी प्रतिज्ञा तथा दुदुंभी आदि सामान्य शब्द विज्ञान होजाने से तद्विशेष शब्द विज्ञान

माद्यासु श्रुतात्मविज्ञानकृतसर्वविज्ञानं तथा दुन्दु-
भ्यादिसामान्यशब्दविज्ञानकृततद्विशेषशब्दविज्ञान
दृष्टान्तवचनादिकं सर्वं निर्बाधमुपपद्यते।
पुनश्च परमात्मन एव चिदचिद्विशेष्यरूपत्वेनप्राधा-
न्यात् प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायाच्चाय
मात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसीति ब्रह्म-
प्राधान्येन व्यपदेशोपि· मुख्यवृत्तिमुपलभते।

किंच सर्वेषां पदार्थानां स्वाभिन्नब्रह्माभिन्न
त्वेनतदभिन्नाभिन्नानां तदभिन्नत्वमितिन्यायात्
ब्रम्हाभिन्नस्य प्रत्यगात्मनोब्रह्माभिन्नाशेषचिद-
चिद्रूपत्वोपपत्त्या सर्वरूपत्वसिद्धेः। पुनश्च

का दृष्टान्त वचन आदि सब निर्बाध उपपन्न होता है। परमा-
त्मामें ही चिदचिद के प्रति विशेषता होने से प्राधान्यता है इस
लिये व्यप्राधान्ये न "वेपदेशाभवन्ति" इस न्याय से अयमात्मा
ब्रह्म" अहंब्रह्मास्मि,, तत्वमसि,, आदि महा वाक्यों में ब्रह्म
प्राधान्य व्यपदेश भी मुख्यहीवृत है।

किंचः—सब पदार्थ अपने से भिन्न जो ब्रह्म उससे
अभिन्न होने से उससे अभिन्नही है, क्योंकि जो जिससे अभि-
न्नाभिन्न होता है वह उससे अभिन्नही होता है, इस न्याय से
ब्रह्म से अभिन्न प्रत्यगात्मा को ब्रह्मसे अभिन्न सम्पूर्ण चिद

प्रत्यगात्मविशेष्यरूपस्य ब्रह्मणोनिखिलचिद्-
चिद्विशेष्यरूपत्वेन सर्वरूपत्वात् तेनैव स्वविशे-
ष्यभूतब्रह्मरूपेणास्य तद्याथात्म्यस्वरूपविदोब्रह्म-
विद्यावतः सर्वरूपत्वोपपत्तिस्तदाहुर्यद्ब्रह्मविद्यया
सर्वं भविष्यंतोमनुष्या मन्यंते किंमुत ब्रह्मावेद्य-
स्मात्तत्सर्वमभवदिति ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्त-
दात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्सर्वमभव-
त्तद्योयोदेवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथ-
र्षीणां तथा मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः
प्रतिपेदेहं मनुरभवं सूर्यश्चेति तदिदमप्येत र्हि
य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति
तस्य ह न देवाश्च नाभूत्यारश्य ईशते आत्मा
ह्येषां स भवतीत्येवमादिषु श्रुतं सर्वरूपं ब्रह्मविद्यया

चिद् की उपपत्ति होने से सर्व रूपता की सिद्धि होती है। दूसरे प्रत्यगात्माका विशेष रूप ब्रह्म निखिल चिद चिद का विशेष्य रुप होनेसे सर्व रूप है। इसलिये अपना विशेष्य भूत ब्रह्म के स्वरूप को ही अपना स्वरूपमानकर इस यथार्थ आत्म स्वरूप के जानने वाले ब्रह्म विद्यावित् के लिये सर्व रूपता उपपन्न होसकती है। इसी बात को यदि 'ब्रह्म विद्यया सर्वं भवि-

सर्वरूपत्वैवनत्वादिकं सर्वं सुतरामुपपद्यते। वादिपक्षे तु अहं ब्रह्मास्मीत्यादिश्रुत्यवलंबेनास्य ब्रह्मरूपत्वे उपपाद्यत्वेपि न्यायविरोधादनुभवविरोधाच्च तन्नोपपद्यते सर्वरूपत्वं त्वत्यन्तविरुद्धं सर्वस्याभासरूपत्वेनाऽवस्तुतया तद्रूपत्वं गच्छतस्तस्याप्यवस्तुत्वोपपत्तेः जीवस्य ब्रह्माभासत्वावस्तुत्ववचनेन तदौपाधिकस्वरूपोपमर्दनद्वारा ब्रह्मत्वमुपपाद्यत इति चेन्न तदुपाधिनाशे जीवोपिनष्ट इति वक्तव्यात्, अवस्तुत्वेन

ष्यन्तो मनुष्याः मन्यन्ते., एवमादि मूलोक्त श्रुतियों से सिद्ध होता है।

वादि के पक्ष में "अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादिक श्रुतियों के बल से इस प्रपंच का ब्रह्म रूप उपपादन करने पर भी न्याय और अनुभव के विरोध होने से वह उपपन्न नहीं हो सकता। सर्व रूपता तो अत्यन्त ही विरुद्ध है, क्योंकि सबहि पद अर्थ आभास रूपहै, इसलिये वे वस्तु रूपही नहीं हैं। यदि ब्रह्मतद्रूप को प्राप्त होता है तो ब्रह्म में भी अवस्तुता आजायगी यदि यह कहो कि जीव ब्रह्म का आभास है, और अवस्तु रूप है इस वचन से ब्रह्म का औपाधिक स्वरूप का जब नास हो जाता है तब शुद्ध ब्रह्मता उसमें रह जाती है सो नहीं कह सकते, क्योंकि उपाधि के नास होजाने से जीव का भी नाश होजायगा, यही

मिथ्याभूतस्य तस्य सत्यस्वरूपब्रह्मत्वभवनायोग्याच्च । जीवाभासत्ववादिनस्तवपक्षे तस्य वस्तुभूतब्रह्मरूपत्वतद्विरुद्धाभासभूतसर्वरूपत्ववादिन्यां श्रुतावुन्मत्तवचनमिवाऽप्रामाण्यापत्तेश्च । तथा 'ब्रह्मविद्यया सर्वरूपभवनवचनमपि तव पक्षे व्यर्थं ब्रह्मज्ञानस्य बहूनां पुण्यजन्मनामन्ते जातस्यावस्तुभूतसर्वभवनफलकत्वापत्तेः सर्वस्य वस्तुत्वासत्यत्वास्वीकारेऽद्वैतबाधाच्च । ज्ञानेनवस्तुभूतस्य स्वरूपनाशानुपपत्तेश्च । वस्तुनोवस्त्वन्तरमेलने तदाधिक्योपपत्त्या ब्रम्हणि

कहना होगा, और वस्तु-स्वरूप न होने से मिथ्या भूत उसके सत्य स्वरूप ब्रह्म की भावना करना भी असत्य है। आभास स्वरूप जीवको मानने वाले आपके पक्षमें उसके वस्तु भूत जो ब्रह्म तद्रूपता और उससे विरुद्ध आभासभूत, सर्व रूपता को कहने वाली श्रुतिमें अप्रामाण्य आजायगा, जैसे उन्मत्त के वचन में प्रामाण्य नहीं है। तथा अविद्या से ब्रह्म सर्व रूप होजाता है, यह बचन भी आपके पक्ष में व्यर्थ होजायगा। बहुत से पुण्यमय जन्मों के अन्त में जायमान ब्रह्मज्ञान के अवस्तु भूत सर्व रूप होनेकी आपत्ति आजायगी और यदि सभी में वस्तुपना और सत्यता स्वीकार कर लेवें तो आपके अद्वैत का ही बाध होजायगा और फिर ज्ञान से वस्तुभूत

विकारित्वापत्तेश्च । तस्यौपाधिकत्वेनाभासरूपत्वेपि स्वरूपभूतब्रह्मरूपत्वेन सत्यत्वमविनाशित्वं चोच्यते इति चेन्न तथा सति तदौपाधिकत्वछद्मकल्पनाया वैयर्थ्यात् ब्रह्मैव स्वाविद्यया संसरतीत्यवशेषात् कथमपि तन्मोक्षानुपपत्तेः यथा स्वेच्छया संसरति तथा स्वेच्छयैव मोक्ष्यतीति वक्तव्यत्वेन ब्रह्मज्ञानोत्पत्ति-साधन-संद-

पदार्थ के स्वरूप से नाश नहीं होता है। वस्तु में यदि वस्त्वन्तर मिल जाय तबतो उसमें अधिकता आजायगी। जैसे एक सेर जल में एक सेर जल अथवा चीनी मिलादी जायतो उसका वजन दो सेर अवश्य होजायगा। इसी प्रकार ब्रह्म में जब वस्तुभूत इन सबका मेल होगा तो ब्रह्म में विकारिता आजायगी।

यदि कहे कि यह वस्तु स्वरूप सर्व जगत औपाधिक होने से आभास रूप है, स्वरूप भूत ब्रह्म के रूप में मिलने पर भी ब्रह्म के रूप में किसी प्रकार का विकार नहीं आता, और ब्रह्म में सत्यत्व अविनाशित्व, सुरक्षित रहता है, यदि यह कहो तो सो नहीं कह सकते, क्योंकि औपाधिक कपट की कल्पना व्यर्थ है, ब्रह्म ही अपनी अविद्या से संसारी होजाता है। यह शेष रह जाने से किसी प्रकार इसका मोक्ष नहीं होसकता है। यदि कहें कि जैसे अपनी इच्छा से संसारी होता है उसी प्रकार अपनी इच्छा सेही मुक्त भी होजायगा। ऐसा कहने से ब्रह्म ज्ञान उत्पादन करने के जितने भी साधन समुदाय है, वह

दभ वैयर्थ्यापत्तेश्च। यथा ब्रह्मरूपत्वं प्राप्त तथा जीवोपि ब्रह्मविद्यया सर्वरूपत्वं प्राप्नोतीत्यपि न ब्रह्मणः स्वाऽज्ञानेन सर्वरूपप्राप्तत्वमिवजीवस्यापि ब्रह्मज्ञानेनैवानादिकालतः सर्वरूपत्व-प्राप्तत्वेन तत्र ब्रह्मविद्यायाः हेतुत्वस्य निष्प्र-योजनत्वात् शुद्ध-ब्रह्म-प्राप्तिफलकस्य ब्रह्म-ज्ञानस्य तदौपाधिकत्वेन मिथ्याभूतसर्वरूपत्व-प्राप्तिफलकत्वायोग्याच्च।

सर्वभवनवचनं ब्रह्मविद्याया अर्थवाद इत्यपि न तत्र तच्छेषिविधिवचनाश्रवणात्। पुनः

सब व्यर्थ हो जायगा यदि कहें कि जैसे ब्रह्म सर्व रूपता को प्राप्त होजाता है, वैसेही जीव भी ब्रह्म विद्या से सर्व रूप को प्राप्त होजाता है, सो नहीं कह सकते, क्योंकि ब्रह्म जैसे अपने अज्ञान से सर्व रूप को प्राप्त हुआ है वैसेही जीव भी ब्रह्म ज्ञान से ही अनादि काल से सर्व रूपको प्राप्त है ही, उसमें ब्रह्म विद्या को कारण मानना निष्प्रयोजन है। यदि शुद्ध ब्रह्म को प्राप्ति कराने वाले ब्रह्म ज्ञान को माने तब तो उस ब्रह्म ज्ञान के औपाधिक होने से मिथ्या भूत सर्व रूपता प्राप्ति रूप फल के अयोग्य होगा।

यदि कहें कि ब्रह्म विद्या से सर्व रूप होने का जो वचन है वह, अर्थ वाद मात्र है सो मान नहीं सकते क्योंकि वहां पर

तस्मिन् वाक्ये फलान्तराश्रवणेन तस्या ब्रह्मवि-
द्यायाः प्रशंसामात्रफलकत्वापत्ते श्चेत्याद्यन्यद-
प्यूह्यं ।

तदेवमद्वैतपरत्वे न भास्य मानानां श्रुती-
नामन्यथासिद्धे र्नतदवष्टंभेनाद्वैतं सिध्यति नापि
काचिन्मोक्षपरा श्रुतिरभेदमोक्षपरत्वे नोपलभ्यते
तत्तदुपासक परत्वोपत्तेः । तथाहि तत्सुकृतदु-
ष्कृते विधुनुते इतीदं वचनं कौशीतक्युप-
निषदि विरजा पारगतोपासकपरत्वे नश्रूयते ।

उस अर्थ वाद का शेषी विधि वचन सुना नहीं गया है पुनः उस वाक्य में फलान्तर भी नहीं सुना गया है, और उसको ब्रह्म विद्या की प्रशंसा मात्र परकता आजायगी, इत्यादिक दोषों की कल्पना करनी चाहिये । इसलिये अद्वैत परकतया भास मान श्रुतियों की सिद्धि अन्य प्रकार से भी होजायगी, इसलिये उन श्रुतियोंके बल से अद्वैत की सिद्धि कथमपि नहीं होसकती, तथा कोई भी ऐसी श्रुति देखने नहीं आती जो श्रुति मोक्ष काल में जीव ईश्वर के अभेद को ही मोक्ष मानती होवे । तत्तत् उपासना प्रकरण में देखी गई उन श्रुतियों के तत्तत् उपासक परकता ही है, तथाहि—"तत्सुकृत दुष्कृते विधुनुते" अर्थात् वह सुकृत और दुष्कृत को नाश कर देता है, यह वचन कौशीतकी उपनिषद में विरजा के पार गये हुए उपासक को कहता है ।

मुण्डके तु द्वासु पर्णासयुजा सखाया समानं वृक्षं-परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ समाने वृक्षे पुरुषो-निमग्नोनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीत-शोकः । यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रम्हयोनिं । तदा विद्वान् पुण्यपापेविधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैतीतीदं वाक्यमीशस्य-सेव्यत्वं तत्सेवकस्य तद्दर्शनकृतपुण्यपापराहित्येन तत्साम्यं तत्साधर्म्यं स्पष्टं वदति तदनन्तरं तस्य सेवकस्यार्चिरादिना गतिर्निर्दिशति च प्राणोह्येष सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी । आत्मक्रीड़ आत्मरतिः क्रियावानेष

और मुण्डकोपनिषद् में "द्वासुपर्णा सयुजासखाया······यहां से लेकर "निरंजनः परमं साम्य मुपैति" यहां तक के मूलोक्त वाक्य ईश्वर में सेव्यता को प्रतिपादन करता है और ईश्वर सेवक के ईश्वर के दर्शन से पुण्य और पाप से रहित हो कर ईश्वर के साम्य, ईश्वर के ऐसा धर्म को स्पष्टतया प्रतिपादन करता है, और इसके बाद उस सेवक की अर्चिरादि मार्ग के

ब्रह्मविदां वरिष्ठः। सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यं। अंतः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रोयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः। सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततोदेवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयोह्याप्त-कामाः यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानमित्येत-द्वाक्यम्।

काठके तु भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व-संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे। शतं चैका हृदयस्य नाड्य तासां मूर्द्धा-नमभिनिःसृतैका। तयोर्द्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वगन्या उत्क्रमणे भवन्तीति परमपुरुषदर्श-नवतः मूर्द्धन्या नाड्या गतिश्रवणेनार्चिरादिना

द्वारा गति का निर्देश। "प्राणोह्येषसर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नति वादी" इत्यादि मूलोक्त वाक्य कहते हैं। तथा कठोपनिषद्में, "भिद्यते हृदयग्रन्थिः·····शतं चैका हृदय स्नाड्यः" इत्यादि वाक्य से परम पुरुष का दर्शन करने वाले जीवकी मूर्धन्या नाड़ी से गति को बताकर अर्चिरादि मार्ग के द्वारा गति बताई गई है इसलिये इसी के समान होने से

गत्यवगमात् तत्सामान्यान्मुण्डकेऽपि परं पुरुषं पश्यतोमूर्द्धन्यानिःसृत्यार्चिरादिमार्गेण गतिरुपपद्यते। पश्नोपनिषदि तु यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परमपुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नो यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरुषमीक्षते, इतीदं वाक्यमोंकारद्वारा परमपुरुषध्यानवतः सर्वपापराहित्यपूर्वकब्रह्मलोकं प्राप्तस्य परमपुरुषदर्शनं श्रावयति।

ऐतरेये तु यत्किंचेदं प्राणिजंगमं च पतत्रि

मुण्डक में भी परम पुरुष को देखते हुये भक्त मूर्धन्य नाडी से निकल कर अर्चिरादि मार्ग के द्वारा गमन करता है।

पश्नोपनिषदमें "यः पुनः एतन् त्रिमात्रेण ॐ इत्यनेनैव अक्षरेण परम पुरुषं अभिध्यायीत स तेजसिसूर्ये सम्पन्नो ······ ···यह वाक्य ॐकार के द्वारा परम पुरुष का ध्यान करने वाले पुरुष को सर्व पाप रहितपूर्वक ब्रह्म लोक में प्राप्त होताहै। और परम पुरुष का दर्शन करता है यह बताता है, इसी प्रकार ऐतरेयो पनिषद् में यत्किंचेदं प्राणि जंगमं च पतत्रिच····· यह वाक्य प्रज्ञानं ब्रह्म इस महावाक्य के अर्थ का प्रकाशक है। प्रज्ञा

चयच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रति-ष्ठितं प्रज्ञाने त्रिलोकप्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म स एतेन प्राज्ञेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मि-न्स्वर्गे लोके स सर्वान् कामानाप्त्वामृतः सम-भवदितीदं वाक्यं प्रज्ञानं ब्रह्मेति महावाक्यार्थ-प्रकाशकं । प्रज्ञानेत्रोलोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठाइत्या-भ्यां प्रज्ञानेत्रः नेत्रइव सर्वप्रज्ञानियम्यः सृष्टि-काले सर्वकाले वा प्रज्ञाप्रतिष्ठा तु स्थितिकाले प्रलयकाले चेत्यर्थकाभ्यांस्थावरजंगमात्मक-समस्तजगत्स्वरूपस्थितिप्रवृत्ती प्रज्ञा शब्दवाच्य-

नेत्रो लोकः, प्रज्ञाप्रतिष्ठा, इन दोनों पदों से नेत्र की तरह से सब प्रज्ञाओं का नियामक है, सृष्टि काल में अथवा सब काल में प्रज्ञा ही प्रतिष्ठा है अर्थात् स्थिति काल अथवा प्रलय काल में प्रज्ञा में ही सब पदार्थ प्रतिष्ठित होजाते हैं। इस अर्थ वाले पूर्वोक्त दोनों वचनों से स्थावर और जंगमात्मक समस्त जगत् को स्वरूप स्थिति और प्रवृत्ति प्रज्ञा शब्द वाच्य परमात्मा के आधीन है इस बात को बताता हुआ यह ऐतरेय मंत्र यह भी बताता है कि पूर्वोक्त ज्ञान सम्पन्न पुरुष प्रज्ञा ब्रह्म का चिन्तन करने वाले पुरुष के देह के अंत में इस लोक से मूर्धन्य नाडी से उत्क्रमण कर "स्वः पद वाच्य लोकमें जिसका ज्ञान किया जाय उसको स्वर्ग कहते हैं" उसपर पद वाच्य स्वर्ग लोक में

परमात्माधीने प्रकाशयन् एतज्ज्ञानपूर्वकं प्रज्ञब्रह्म चिन्तकस्य देहान्ते अस्माल्लोकान्मूर्धन्योत्क्रम्य स्वः गीयते इति स्वर्गस्तस्मिन् स्वर्गे परं पदाख्ये लोकेगतस्य सर्व कामावाप्तिं अमृतपदोक्ता मरणधर्मकत्वेनापुनरावृत्तिं च. स्फोटयति अत्र लोकेतिपद लोकवाचकं वा देहपरं वोभयथापि न काचिद्धानिः। अमुष्मिन्निति लोक इति च पदाभ्यां विशेषितं स्वर्गपदं तु स्थानविशेषस्यैव वाचकं भवितुमर्हति न त्वर्थान्तरस्य तस्यार्थान्तरत्वकल्पनायां अस्मादिति अस्मिन्निति चानयोः पदयोरत्यन्तवैयर्थ्यापत्तेर्लोकादिपदानां

गये हुए पुरुष को सब कामों की प्राप्ति और अमृत पदोक्त मरण धर्म राहित्य होने से "अपुनरावृत्ति" स्पष्ट करता है। यहां पर लोक शब्द का अर्थ चाहे लोक करे अथवा उसको देह परकमाने दोनों ही अर्थ में कोई भी हानि नहीं है। और अमुष्मिन्, और लोके, इन दोनों पदों से विशेषित स्वर्ग पद तो किसी स्थान विशेष का ही वाचक हो सकता है। दूसरे अर्थ का वाचक नहीं है, यदि अर्थान्तर की कल्पना भी करें तो 'अस्मात्' और अमुष्मिन् इन दोनों पदों की अत्यन्त व्यर्थता हो जायगी और लोकादि पद भी व्यर्थ हो जायेंगे।

च वैयर्थ्यापत्तेः । न चोक्तपदानामर्थवादमात्रपरत्वं कल्पितुं शक्यं तत्र तत्फलान्तराश्रवणात् । तत्त्वमस्यादि वाक्यैरस्य प्रज्ञानं ब्रह्मेति वाक्यस्यैकवाक्यत्वयोग्यत्वाच्च । सम्भवति मुख्यार्थे उक्तपदानामर्थान्तरपरत्वकल्पनायाः अन्याय्यत्वात् ।

छान्दोग्येतु तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयं स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात् प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यति यत्किंचिद्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु

यदि कहें कि हम उक्त पदों को अर्थवाद मात्र ही परत्व मानेंगे, सो मान नहीं सकते, क्योंकि फलान्तर कोई भी श्रुत नहीं है। तत्वमस्यादि वाक्यों के साथ प्रज्ञानं ब्रह्म इस वाक्य की एक वाक्यता मानी गई है । तथा मुख्य अर्थ के सम्भव होनेपर उक्त पदों का अर्थान्तर कल्पना करना अन्याय है। छान्दोग्य उपनिषद में, तद्यद भक्तं प्रथमागच्छेत्······यहां से प्रजया पशुभिः अन्नाद्येनतेजसा ब्रह्मवर्चसा इत्यादि से क्रम से

तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेत्यादिना क्रमेण प्राण-व्यानापान-समानोदानार्थाहुतिभिः क्रमेण चक्षुषः श्रोत्रस्य वाचः मनसः वायोश्च तृप्तिद्वारा क्रमेण द्युमा-दित्ययोः दिक्चन्द्रमसोः अग्निपृथिव्योः विद्युत् पर्जन्ययोः वाय्वाकाशयोः तृप्त्या तत्तदधिष्ठित-समस्तजगत्तृप्तिमुक्त्वाऽऽहयदिश्या स य इदमविद्वान-ग्निहोत्रं जुहोति यथांगाराऽनपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक्तत्स्यात । अथ एतदेवं विद्वानग्नि-होत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वे-ष्वात्मसु हुतं भवति तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं

प्राण, व्यान, अपान, समान, उदान, रूप, पंचप्राणों के लिये आहुतियों से क्रम से नेत्र, श्रोत्र, वाक, मन, वायु की तृप्ति के द्वारा द्यु सूर्य, दिशा चन्द्रमा, अग्नि और पृथ्वी, विद्युत और पर्जन्य, वायु और आकाश की तृप्ति से इनसे अधिष्ठित समस्त जगत की तृप्ति को कहकर स. य इदमविद्वानग्नि होत्रं जुहोति तथांगारा न पोह्य भस्मनि जुहुयात्········यहां से आरंभकर एवं सर्वाणि भूतान्यग्नि होत्र मुपासते" यहाँ तक के मंत्रो में अग्नि होत्र की उपासना बताई गई है। इसमें "य एतदेवं विद्वान्" इससे प्राणादि की आहुतियों से अनुरादि की तृप्ति

प्रदूयेतैव हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्मादुहैवं विद्यद्यपि चांडालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतं स्यादिति। तदेष श्लोको यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते एवं सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्येतदन्ते तत्र य एतदेवं विद्वानिति प्राणाद्याहुतिभिः चक्षुरादितृप्तिपरंपरया सूर्याद्यधिष्ठितस्य सर्वस्य जगतस्तृप्तिर्भवतीति विद्वान् प्राणाद्याहुतीनां चक्षुरादिपरंपरया सर्वलोकसर्वभूतसर्वात्मसु पर्यवसानात् ताभिरुक्त

की परम्परा से सूर्यादि से अधिष्ठित सम्पूर्ण जगत की तृप्ति होजाती है ऐसा जानने वाला पुरुष को यह निश्चय होता है कि प्राणादि की आहुतियों की चक्षुरादि परम्परा से सम्पूर्ण लोक सर्वभूत सर्व आत्मा में पर्यवसान होने से उन आहुतियों से उक्त परम्परा के द्वारा सर्व लोक सर्वभूत, सर्व आत्माओं की तृप्ति होती है, प्राणादिक आहुति के द्वारा सब लोकों के आहुति होजाने से सबकी तृप्ति होजाती है, ऐसा जानने वाला ये सब विद्वत् शब्द का अर्थ हुआ, इस प्रकार से जानने वाला विद्वान् अग्नि होत्र का हवन करता उसके सब पाप जल जाते हैं, यह बात स्वयमेव "तद्यथेषीका तूलम्" इत्यादि श्रुति कहती है

परं परया सर्वलोकसर्वभूतसर्वात्मनां तृप्ति-
र्भवतीति प्राणाद्याहुतिभिः सर्वलोकाद्याहुतितया
तत्तृप्तिश्चभवतीति विद्वानिति द्वितीयविद्वच्छ-
ब्दार्थः। य एवंभूतोविद्वानग्निहोत्रं जुहोति
तस्य सर्वं पापं दह्यतइत्याह स्वयमेव श्रुतिः तद्य-
थेषीकातूल मित्याद्या तस्यैवंभूतस्य विदुषः सर्व-
मपि कृत्यं वैश्वानरतृप्तिहेतु र्भवतीत्याह तस्मादु-
हैवं विद्यद्यपि चाराडालायेत्यारभ्य तद्वैश्वानरे
हुतं स्यादित्यंतेन। अत्र वैश्वानरतृप्तिस्तस्य सर्व
पापविमोके हेतु र्भवतीत्यवगम्यते। पुनस्तत्रैव
छान्दोग्ये श्रूयते किं नु सोम्य किलते

तथा इस प्रकार से जानने वाले विद्वान् के समस्त कृत्य वैश्वा-
नर की तृप्ति के हेतु होते हैं। इस बात को तस्माद् हैवं" यहां
से आरंभ कर "तद्वैश्वानरे हुतं स्यात्" यहाँ तक की श्रुति ने
कहा है। यहाँपर वैश्वानर की तृप्ति उस विद्वान् के सब पापों
के नाश करने में हेतु होती है, यह निश्चय होता है।

फिर भी उसी छान्दोग्य में "किन्नु सोम्य किलते अवो-
चन" यहां से आरंभ कर "एतेन प्रतिपद्यमाना, इमं मानवा वर्त
नावर्तंते" यहां तक के मंत्र मूलोक्त हैं, वहां यथा पुष्कल पलाशं
इत्यादि श्रुति यह बताती है कि जैसे नेत्र में छोड़ा हुआ घृतादि

ऽत्रोचन्निनीदमितिह प्रतजज्ञे लोकान्वाव किल सोम्यतेऽवोचन्नहं तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्कर-पलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच य एषोक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मे ति तद्यद्यप्य स्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिंचति वर्त्मनी एवगच्छ-त्येतं संयद्वाम इत्याचक्षत सर्वाणि वामान्यभि-संयंति सर्वाण्येनं वामान्यभि संयंति सर्वाण्येनं वामान्यभि संयंति य एवं वेदैष उ एव वामनी

उसका श्लेष न करके नत्र सम्बन्ध रास्ता में ही चला जाता है उसी प्रकार नेत्र आन्तर वर्ति पुरुष के ब्रह्मरूप के यथार्थ रूप न जानने वाले उपासक को पाप कर्म श्लेष नहीं करता किन्तु उस उपासक के द्वेषी के पास में चला जाता है, क्योंकि द्विषन्तः पाप कृत्याम्" इस दूसरी श्रुत्यन्तर से भी निश्चय होता है, और जिस उपासक के पाप श्लेशन नहीं करते उस उपासक के देह के अन्त में अर्चिरादि मार्ग के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है इस बात को "अर्चिषमेव सम्भवन्ति" इस मंत्र से स्फुट किया। यहां पर "यथेषीकातूल मग्नौ प्रोत, यथापुष्कर पलाशे" इत्यादि वाक्य तत्तत् उपास्य स्वरूप वेत्ता के महात्म्य को और तत्तत् उपासक महात्म्य को कहते हैं, और कैमुत्य न्याय से सब से

रेषहि सर्वाणि कर्मफलानि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेदैष उ एव भामनी रेषहि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेदाथ यदु चैवास्मिच्छव्यं कुर्वन्ति यदि-चनार्चिषमेवाभि संभवन्त्यर्चिषोहरन्ह आपूर्य माण शुक्लपक्षमापूर्यमाणमक्षाद्यान् षडुद-ङेति मासांस्तानमासेभ्यः सम्वत्सरं सम्वत्स-रादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चंन्द्रमसोविद्युतं तत्पुरुषो मानवः स एतान् ब्रह्मगमयतेष.देवै-रथ्यादिभि·नीयमानः पथः देवपथोब्रह्मपथ एते

उत्कृष्ट विशिष्ट ब्रह्म स्वरूप वेत्ता और उस उपासक के माहात्म्य के वर्णन करने में भी पर्यवसित होते हैं। यदि पूछा ? कैसे, तो जो वाक्य वैश्वानर अन्तर्यादि उपाधिक परम पुरुष स्वरूप ज्ञात उपासक के इस प्रकार के महिमा को कहते हैं, वे सब वाक्य "रमन्ते योगिनोऽनते ·····अर्थात् अनंत सत्यानन्द चिदात्मा में योगि जन रमण करते हैं इसी लिये राम पद से परब्रह्म का अभिधान होता है। जो चिन्मय है; अद्वितीय है, निष्कल है तथा तथा शरीर से रहित हैं, वेही ब्रह्म उपासकों के कार्य के लिये रूपकी कल्पना करते है। सत्य ज्ञान, अनन्त, स्वरूप ब्रह्म हैं। जो इस बात को जानता है कि ब्रह्म सबकी गुहा (हृदयदेश)

न प्रतिपद्यमाना इयं मानवमावर्तनावर्तंते नावर्तंते इत्येतद्वदन्तं । तत्र यथा पुष्करपलाश इत्याद्या श्रुतिः यथाक्षिणि सिंचितं घृतादिकं तदश्लिष्य- तत्सम्बन्धिनि वर्त्मनि एव गच्छति तथाक्षिपुरुष- रूपयाथात्म्यविदं तदुपासकमश्लिष्य पापं कर्म तद्विषि निगच्छति द्विषन्तः पापकृत्यामिति श्रुत्य- न्तरादिति वदन्ती तस्याश्लिष्टपापस्य देहान्ते अर्चिरादिमार्गेण ब्रह्मप्राप्तिं स्फुटत्यर्चिषमेवाभि- सम्भवन्तीत्यादिना ।

में निहित है, वह ब्रह्म के साथ सब कामो को भोगता है, इत्येव मादि वाक्यों में बताये गये निरुपाधिक सर्वोत्कृष्ट विशिष्ट रामाख्य ब्रह्म हैं । उनके स्वरूप के जानने वाले उपासक को पूर्व के उपासक से अधिक महात्म्य वर्णन करने में निश्चय प्राप्त हुआ है, तब पूर्वोक्त उपासक के लिये तो कहना ही क्या है ।

यहां पर जो कोई आधुनिक इस बात को कहते हैं कि वेदों में श्रीरामजी और श्रीकृष्णादिकों की उपासना नहीं सुनी जाती है वे मन्द मति हैं वेद के एकदेशीय पक्षका कहते हैं इसलिये अनादरणीय हैं क्योंकि श्रीरामत पिनियोपनिषद आदिकों में श्रीरामजी के उपासनाके प्रति पादक वाक्य प्रसिद्धही है ।

अत्र यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं यथा पुष्कर-पलाश इत्येवमादीनि वाक्यानि तत्तदुपास्यस्व-रूपवित्तत्तदुपासकमाहात्म्यं वदन्ति सन्ति कैमु-त्यन्यायेन सर्वोत्कृष्ट-विशिष्टब्रह्मस्वरूपवित्तदुपा-सकमाहात्म्यवर्णनेपि . पर्यवस्यन्ति। कथमिति चेत् यानि वाक्यानि वैश्वानराद्याद्युपाधिक-परपुरुषस्वरूपविदस्तदुपासकस्येदृश महिमानं वदन्ति तानि सर्वाणि रमन्ते योगिनोऽनंते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते । चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कल-स्याशरीरिणः । उपासकानां कार्य्यार्थं ब्रह्मणो-रूपकल्पना। सत्यं ज्ञानंमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेत्येवमादिवाक्ये बोधितनिरुपाधि-कसर्वोत्कृष्टविशिष्टरामाद्याख्यब्रह्मस्वरूपविदस्त-दुपासकस्य ततोप्यधिकमाहात्म्यवर्णने पर्यवस्यं त्विति किं वक्तव्यमित्येवं अत्रयेऽर्वाचीना केचि-

द्वदन्ति वेदेषु श्रीरामकृष्णाद्युपासना न श्रूयते इति ते मन्दमतयोवेदैकदेशित्वेनानादरणीयाः श्रीरामतापनीयोपनिषदाद्यासु श्रीरामउपासना-वाक्यप्रसिद्धेः ।

ननु भवतु वत्तथा किंतु तथैव तानि वा-क्यानि निर्विशेषब्रह्मविदितभेदप्राप्तेऽपि ज्ञानिनि पर्यवस्यंतीतिचेन्न तत्त्वमस्यादिवाक्यानां नि-र्विशेषब्रह्मपरत्वानुपपत्त्या विशिष्टब्रह्मपरत्वस्या-नेकधादर्शितत्वात् वाक्यान्तरस्य तत्परत्वान.

यदि कहें कि उक्त उपनिषदों से प्रतिपादित उपासनादि रूप भेद जैसा बताया गया है, वैसाही हो किन्तु वे सब वाक्य निर्विशेष ब्रह्म ज्ञानी का भेद के प्राप्त होने पर भी ज्ञानी में ही पर्यवसान होते हैं सो नहीं कह सकते, क्योंकि तत्वमस्यादि वाक्यों के निर्विशेष ब्रह्म प्रतिपादन करने में उपपत्ति नहीं है, और विशिष्ट ब्रह्म परता है, यह अनेक प्रकार से दिखाया गया है, वाक्यानन्तरों से भी निर्विशेष ब्रह्मपरक निश्चय नहीं होता, यदि कोई वाक्य निर्विशेष ब्रह्म प्रतिपादकतया उपलब्ध होता तब उस वाक्य के प्रमाण के बल से प्रकरणान्तर गत निर्विशेष ब्रह्म से अपकृष्ट पदार्थ-प्रतिपादक वाक्यों के कैमुत्य न्याय से निर्विशेष ब्रह्म में ही पर्यवसानता उपपन्न होती, परंच प्रकृति में तो कोईभी वाक्य निर्विशेष ब्रह्म प्रतिपादक नहीं है, अग-

वगमाच्च । यदि किमपि वाक्यं तत्परत्त्वेनोप-लभ्येत तदा तदवष्टंभेन प्रकरणान्तरगतानामपि तदपकृष्टपदार्थपराणां वाक्यानां कैमुत्यन्यायेन तत्र पर्यवसानत्वमुपपद्यते, प्रकृते तु न कस्यापि वाक्यस्य निर्विशेषब्रह्मपरत्वमुपपद्यते, अगंधमर-समित्यादिनिषेधकवचनानामपि सर्वगंधः सर्व-रसइत्यादिवचनानुरोधेन प्राकृतगंधादिनिषेधप-रत्वोपपत्तेरित्यलं प्रसंगातिप्रसंगेन । नापि किमपि वाक्यं ब्रह्माभेदात्मकं मोक्षं गच्छतः पाप-कर्माश्लेषदाहवर्णनपरत्वेनोपलभ्यते येन तद्-

---

न्धमरसं०……इत्यादि निषेध वचनों की भी सर्वगंध. सर्व रस इस वचनके अनुरोध से प्राकृत गंधादिकों काही निषेधमें ता-त्पर्य है। इसे प्रसंगमें आए हुए प्रसंगसे अब विस्तार के कोई आवश्यकता नहीं है।

कोई भी वाक्य ऐसा उपलब्ध नहीं होता है कि जो ब्रह्म से अभेद रूप मोक्ष को जाते हुए पुरुष के पाप कर्म अश्लेष हो और उन कर्मों का जल जाना वर्णन करने वाला हो कि जिस वाक्य के बल से अप कृष्ट प्रकरण में गए वाक्यों के कैमुत्य न्याय से ब्रह्म से अभेद होजानेपर भी पर्यवसानता को उप-पन्न होवे।

पकृष्टप्रकरणान्तरगतानामपि वाक्यानां कैमुत्य-न्यायेन ब्रह्माभेदगतेऽपि पर्यवसानत्वमुपपद्येत ।

ननु बृहदारण्ये-योऽकामोनिष्काम आप्त-काम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति तद-प्येषश्लोकोभवति "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदि स्थिताः । अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।" इत्यत्राप्तकामस्यात्मका-मस्य ज्ञानिनः प्राणानुत्क्रान्तिश्रुत्या गत्यनुपप-त्तेरर्चिरादि मार्गेण तद्गतिबाधादत्रैव शरीर-त-

---

अब संका करते हैं कि बृहदारण्यक में यो कामो निष्काम······जो अकाम निष्काम, लब्धकाम, और आत्मकाम पुरुष है, उसके प्राण उत्क्रमान नहीं करते किन्तु यहीं पर लीन होजाते हैं, ब्रह्म होकर ब्रह्म को प्राप्त होजाता है, इस विषय में यह श्लोक सुना जाता है कि जब हृदय में स्थित सम्पूर्ण काम इसके विलीन होजाते हैं तब मरण धर्मापुरुष अमृत होजाता है। और ब्रह्मका भोक्ता होजाता है। इस श्रुति में 'आप्त काम' और आत्मकाम ज्ञानीके प्राणोंकी अनुत्क्रान्ति श्रुति में प्रतिपादन किया है। इसलिये गति अनुपपन्न है। इसलिये अर्चिरादि मार्ग के द्वारा गति का बाध होने से इस शरीर मेंही उसके प्राण विलीन होजाते हैं। ऐसा श्रवण होने से उसकी सद्य मुक्ति होजाती है,

स्थानालयश्रवणात् तस्य सद्योमुक्त्युपपत्तेः ब्रह्मैव सन्निति तस्य ब्रह्माभेदप्राप्त्यात्मकमुक्तिश्रवणात् तदुद्दिश्य सर्वेषां प्रकरणान्तरगतानां प्रदर्शित-वाक्यानां कैमुत्यन्न्यायेनाऽवतारः उपपद्यते अभेदमोक्षापेक्षया मुक्त्यन्तरस्य दुर्बलत्वात् मुक्त्यंतरविषयत्वेन श्रुतानां कैमुत्यन्न्यायेना-भेदमुक्तिपरत्वं सुतरामुपपद्यते। कथमिति चेत् यद्यन्नाद्युपाधिक-पुरुष-पराणां ईदृशं माहात्म्यं श्रूयते तदानीं निरुपाधिक-ब्रह्मपराणां तादृशं तताप्यधिकं तद्भवेदिति किमुवक्तव्यमित्येव-

---

तथा "ब्रह्मैव सन्" इस वाक्यसे ब्रह्म के साथ अभेद प्राप्ति रूप मुक्ति प्रतिपादन होने से इसी प्रकार प्रायः करके प्रकरणान्तर-गत प्रदर्शित सभी वाक्यों के कैमुत्य-न्याय से यही अर्थ मानना होगा। अभेद मोक्ष की अपेक्षा दूसरे प्रकार की मुक्ति दुर्बल है। इसलिये अन्य प्रकारकी मुक्ति को प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों को भी कैमुत्य-न्याय से अभेद मुक्ति परता ही उपपन्न होती है। यदि कहें कि कैसे: तो जब अन्न आदि औपाधिक पुरुष पर वाक्यों का इस प्रकार माहात्म्य सुना जाता है तब निरुपाधिक ब्रह्मपर वाक्यों का उससे अधिक माहात्म्य होगा ही. इसमें कहनाही क्या है ?

मितिचेन्न प्रदर्शितवाक्यस्य त्वदभीष्टार्थकत्वा-नुपपत्त्यात्मकामस्यार्चिरादिनैव गत्युपपत्तेः। तथाहि तत्रैवब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा इत्यस्य श्लोकस्यानंतरं श्रूयते तद्यथाहि निर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ताशयी-तैवमेवेदं शरीरं शेतेऽथायमशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव सोहं भगवते सहस्रं ददामीति

अब समाधान करते हैं कि यह शंका नहीं कर सकते हैं, क्योंकि, उक्त वाक्य का आपका अभीष्ट अर्थ उपपन्न नहीं है, इसलिये आत्म काम पुरुषकी अर्चिरादि के द्वारा गति उपपन्नहै। तथाहि "ब्रह्म सन् ब्रह्माप्येति, यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा" इस श्लोक के बाद उसी बृहदारण्यक में यह सुना जाता है कि "तद्यथाहि निर्ल्वनी वल्मीके मतार्प्रत्यस्ताशय त······जैसे समग्र सर्प की केंचुली वल्मीक के ऊपर परित्यक्त की हुई पड़ी होवे और सर्प का तरह साई हुई हो उसी प्रकार इस जीवात्मा से परित्यक्त यह शरीर भी निश्चेष्ट होकर सोजाता है। और जैसे उस समय यह जीवात्मा जीता ही हुआ अशरीर होकर रहता है। प्राण ही ब्रह्म हैं, और तेज-अर्थात् सर्व ज्योति स्वरूप है। इस प्रकार के उपदेश के प्राप्त होने से प्रहर्षित श्रीजनकजी गुरु दक्षिणा रूप से सहस्र देते हैं यह बोला इस विषय में यह श्लोक सुने जातेहैं, वह कोई रास्ता है जो सूक्ष्म है और विस्तीर्ण है, उपनिषदों में प्रसिद्ध है, और ब्रह्म दर्शी को स्पर्श किये हैं,

होवाच जनको वैदेहः। तदेतेश्लोकाभवन्त्यणुः पंथा विततः पुराणोमस्पृष्टोनुवित्तोमयैवतेनधीरा अपियन्ति ब्रम्हविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वो विमक्ताः। तस्मिञ्छुक्लमुतनीलमाहुः पिंगलं हरितं लोहितं च एषपंथा ब्रम्हणा हानु वित्तस्ते-नैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्चेति। तत्रदेवोभू-त्वा देवं यजेतेत्यस्य देवसदृशो भूत्वेत्यर्थं कत्रवत् ब्रह्मैव सन्नित्यस्य ब्रम्ह सदृशः सन्नित्यर्थः।

और हे राजन्! मैंने उसका साक्षात् कार भी किया है, इस मार्ग के द्वारा ब्रह्म ज्ञानी इस लोक से युक्त होकर प्राकृत मंडल से उद्धर्ध्व देह वर्ति स्वर्ग लोक को जाते हैं। ब्रह्मलोक के मार्गके जाने वाले ब्रह्म ज्ञानी उस मार्ग में शुक्ल, नील, पिंगल, हरित और लोहित, वर्ण को बताते हैं यह रास्ता ब्रह्म से सम्बद्ध है। इसी रास्ता के द्वारा पुण्य करने वाला ब्रह्म वेत्ता और पंच ग्नि-विद्यानिष्ठ पुरुष भगवत लोक को जाता है यहां पर इन श्रुतियों में "देवोभूत्वादेवं यजेत्" इस वाक्य का अर्थ देव सदृश होकर देव का भजन करे, यह जैसे होता है। उसी प्रकार ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति" इस वाक्य का ब्रह्म सदृश होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है, यह अर्थ होगा, यदि कहो कि पूर्व यदि ब्रह्म भाव नहीं था तो ब्रह्मत्व का अनुसंधान और प्राप्ति हो नहीं सकती, इस

ननु पूर्वमब्रह्मणः सतोब्रह्मत्वानुपपत्त्या पूर्वसिद्धस्यैवब्रह्मणः स्वस्वरूपसाक्षात्काररूपा ब्रह्मैव सन् ब्रम्हाप्येतीतिचेन्न अविद्या प्रत्यनीकस्य स्वप्रकाशस्य बम्हणः कथमप्यविद्यासंश्लेषानुपपत्त्या संसारित्वं नोपपद्यते असंसारिणः सतस्तु तस्य संसरणं तन्निवृत्तये च कर्माद्युपायैर्ब्रम्हत्वप्रत्युत्पादकत्वं नोपपद्यते इत्येवमादिबहुविरोधात् जोवस्यमुख्यब्रम्हसाक्षाद्रूपत्वानुपपत्तेः। अतएवानादितोऽविद्यापारवश्येन संसरतो जीवस्य कर्माद्युपायैरन्तः करणविशु-

लिये पूर्व से सिद्ध ब्रह्म की स्वस्वरूप से साक्षात्कार-रूपा ब्रह्म की प्राप्ति को ही ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति यह वाक्य करता है। सो नहीं कह सकते ? क्योंकि अविद्या के प्रत्यनीक (विरोध) स्व-प्रकाश स्वरूप ब्रह्म से अविद्या का संश्लेश किसी प्रकार से होही नहीं सकता, तथा अविद्या के संश्लेष न होने से संसारित्व भी नहीं होसकता। और असंसारी सत्स्वरूप उस ब्रह्म का संसरण होना और संसार की निवृति के लिये, कर्मादि उपायों से ब्रह्मत्व की प्राप्ति का उपदेश भी उपपन्न नहीं होसकता, एवमादि बहुत से विरोध होने से जीव को मुख्य ब्रह्म की साक्षात् रूपता होजाय सो नहीं होसकती, अतएव, अनादि

च्छिद्द्वारा ब्रह्मप्राप्तियोग्यत्वाय कामादिप्रमोकेन ब्रह्मसादृश्यमुपदिश्यते ब्रह्मैवसन्निति हृद्गत-कामादिप्रमोकेन ब्रह्मसादृश्येन ब्रह्मप्राप्तियोग्यः सन् ब्रह्माप्येति प्राप्नोतीत्यर्थः । अत्र ब्रह्म सादृश्यं नाम संसृतिहेतुभूतकामराहित्यमिति स्वयमेव श्रुतिः स्फुटयति तदप्येषश्लोकोभवति यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति । तदर्थस्तु तत्तस्मिन्नक्तेर्थे तदर्थप्रकाशक एष श्लोकोभवति श्लोकमेवाह यदेति यदा शा-

अविद्या के परवश होने से ससार भाव को प्राप्त जीव के कर्मादि उपायों से जब अंतः-करण की शुद्धि होजाती है तब ब्रह्म-प्राप्ति की योग्यता के लिये कामादि की त्याग से ब्रह्म सादृश्य का उपदेश किया जाता है। "ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति" इस मंत्र से, क्योंकि हृदयगत कामादिकों के नाश से ब्रह्म सादृश्य के प्राप्त होजाने पर ब्रह्म के प्राप्त के योग्य होता हुआ, ब्रह्म को प्राप्त होजाना है। यही इसका अर्थ है। यहांपर ब्रह्म सादृश्य अर्थ यह है कि संसार का हेतु भूत काम से रहित होजाना। इस बात को श्रुति स्वयमेव स्पष्ट करती है। 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते······" इसका अर्थ यह कि जब शास्त्रोक्त उपायों से इस उपासक के हृदय में रहने वाले काम मुक्त होजाते हैं तब

स्त्रोक्तोपायैरस्य हृदि श्रिताः कामाः प्रमुच्यन्ते अथ तदा मर्त्योऽमृतोभवति संसृतिकारणकामादिरहितत्वेन ब्रह्मसदृशोभूत्वाऽमरणधर्माभवति अत्र अस्यां कामादिरहितत्वावस्थायां सत्यां ब्रह्मसमश्नुते सिंहस्थक्रौर्यादिगुणवत्वेन यथा सिंहशब्देन मनुष्य उच्यते सिंहो देवत्त इति तथा ब्रह्मगतकामादिरहितत्वेन जीवो ब्रह्मशब्देगौणोक्तनोच्यते ब्रह्मसन्निति तद्गतगुणैकदेशवत्वेन ब्रम्हसदृशः सन् ब्रम्ह प्राप्नोतीत्यर्थः तत्प्राप्तियोग्यतापादकेन ब्रम्हासादृश्येन ब्रम्ह प्राप्नोतीत्यर्थः

संसार के कारणीभूत कामादिकों से रहित होने से ब्रह्म सदृश होकर मरण धर्म रहित होजाताहै। यहां पर यहा कामादि रहित अवस्था को प्राप्ति में ही "ब्रह्म समश्नुते" यह कहा गया है, अर्थात् जैसे सिंहो देवदत्त. अर्थात् देवदत्त को सिंह कहने का तात्पर्य यह है कि सिंह गत क्रूरतादि गुण होने से सिंह शब्द से कहा जाता है। उसी प्रकार जीव में ब्रह्मगत कामादि रहित होनेसे जीवको भी ब्रह्म शब्द से कहते है। इसीलिये ब्रह्मसन्— अर्थात् ब्रह्मगत गुणक होजाने से जीव ब्रह्म सदृश होकर ब्रह्म को प्राप्त होजाता है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म प्राप्ति का योग्यता का आपादक ब्रह्म सादृश्यता से ब्रह्म को प्राप्ति कर लेता है अब उस ब्रह्म की प्राप्ति की प्रकारको श्रुति बतातीहै, यथा 'नि-

इदानीं तत्प्राप्तिप्रकारं दर्शयति यथा निर्ल्वयनी- मिति निर्ल्वयनीं प्राचीनत्वचं वल्मीके परित्यज्य पादोदरः सशरीरोऽन्यत्रगच्छति तथायमप्यधिकारी प्राकृतं शरीरं परित्यज्य तत्प्राप्तियोग्यतापादकेन दिव्यशरीरेण ब्रम्हप्राप्नोतीत्याह अथायमशरीरो- मृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एवेति अशरीरः प्राकृतशरीररहितः सर्वथा शरीररहितस्य केवल- स्यात्मनो वक्ष्यमाणेनार्चिरादिमार्गेण गत्यनु- पपत्तेः दिव्यमंगलविग्रह इत्यर्थः अतएवामृतः अमरणधर्माप्रकर्षेणानितीति प्राणः ब्रम्हैव ब्रम्ह-

---

त्वयनी" जैसे प्राचीन त्वचा को वल्मीक परही छोड़कर शरीर के सहित सब दूसरी जगह चला जाता है, इसी प्रकार यह अधिकारी प्राकृत शररको छोड़कर उस ब्रह्म प्राप्ति की योग्यता का आपादक दिव्य शरीर से ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। यह "अथायमशरीरोमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एवेति" अर्थात् --प्राकृत- शरीर से रहित (सर्वथा शरीरसे रहित केवल आत्मा की, वक्ष्य- माण अर्चिरादि मार्ग से गति अनुपपन्न होने से) दिव्य -- मंगल विग्रह मानना ही होगा अतएव अमृत अर्थात् मरण धर्म रहित प्रकर्षेण अनीति प्राणिति प्राणः अर्थात् प्रकर्ष करके जो श्वांस को ले उसी का नाम है प्राण, ब्रह्म के सदृश होकर तेजोमय स्वप्रकाश विग्रह वाला यह जीव अर्चिरादि मार्गके द्वारा ब्रह्मको

सदृश एव तेजस्तेजोमयः स्वप्रकाश विग्रह इत्यर्थः इदानीं तस्यैवार्चिरादिमार्गेण गतिं निर्दिशति; तदेतेश्लोकाभवन्त्यणुः पन्थाः विततइत्यादिना तस्मिन्नेवोक्तर्थे उक्तार्थस्य प्रकाशका एते .वक्ष्यमाणाश्लोका भवन्ति । अणुः पन्था विततः इत्यादयः। तदर्थस्तु–पंथाः मार्गः विततः विस्तीर्णः पुराणः सनातनः तेन मार्गेणधीराः शीतोष्णादिसहिष्णवः समदुःख-सुखाः ब्रम्हविदः ब्रम्हज्ञानिनः न तु केवलमुपा-सकाः शीतोष्णादिकसहनपूर्वकं ब्रम्हैकध्यान-रूपया तदुपासनया कृतब्रम्हसाक्षात्कारस्तेनब्रम्ह-

प्राप्त होता है। इस बात को अर्चिरादि मार्ग से गति का निर्दे-श करने वाले यह श्लोक बताते हैं। अणुः पन्था विनन पुराणः इत्यादि, क्योंकि इसी कथित अर्थमें ही कथित अर्थ प्रकाशक ये वक्ष्यमाण श्लोक होते हैं, इनका अर्थ यह है, कि यह रास्ता सूक्ष्म और विस्तीर्ण है, पुरातन है, इस मार्ग शीत उष्ण आदिके सहन करनेवाले समान सुख दुख माननेवाले ब्रह्म ज्ञानी केवल उपासक नहीं किन्तु ब्रह्म ज्ञानके सहित शीतोष्णादि सहनपूर्वक ब्रह्म की ध्यान रूप एक उपासना से ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेनेसे ब्रह्म स्वरूप के याथात्म्यवेत्ता जाते हैं। कहां जाते हैं इस

स्वरूपयाथात्म्यविद् इत्यर्थः अपियन्ति गच्छन्ति कुत्रेत्यपेक्षायामाह स्वर्गमिति तस्य सुखविशेषमात्रपरत्वमाशंक्याऽऽह लोकमिति तस्मिन् शुक्लमुत नीलमाहुः पिंगलं हरितं लोहितं देवमीशानमिति ।:तस्मिंन्मार्गे शुक्ल नीलत्वाद्युपलक्षितं देवमीशानं सूर्यं प्राप्य तेन मार्गेण ततऊर्द्धं गच्छन्तीत्याह एष पंथा इति सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयांतीतिश्रुत्यन्तरात् तेनैति ब्रम्हविदिति पुनर्ब्रह्मवित्पदोपादानंद्विबंद्धसुबद्धन्यायेन ब्रह्मज्ञानिनोप्यर्चिरादि मार्गेणैवगमे निःसंदेहार्थं तदत्र ब्रह्मविदः सूर्यद्वारेण गतिश्रवणात् तत्सा-

---

अपेक्षा में स्वर्ग को जाते हैं । उसमें भी सन्देह होता है कि स्वर्ग तो सुख विशेष मात्र को कहते हैं। तब उत्तर करते हैं कि लोकम ' अर्थात् स्वर्गलोकको जाते हैं। उस स्वर्गलोकमें शुक्ल, मुत, नील, माहु········शुक्ल नीलादि से उपलक्षित सूर्य को प्राप्त होकर उस मार्ग से सूर्य के भी ऊपर जाते हैं। यह, एष-पंथा·····इस मंत्र से सूर्य के द्वारा विरक्त होकर जाते हैं। इस श्रुति से सिद्ध होता है। इससे ते नेतिब्रह्म वित्······यह पुनः ब्रह्मवित् पदका उपादान द्विबंद्धसुबद्ध न्याय से ब्रह्मज्ञानी की अर्चिरादि मार्ग से ही गति निःसन्देह होती है, यह प्रतिपादन

मान्येन येनाक्षरं पुरुषं व्याप्ता वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्वतो ब्रह्मविद्यामिति मुराडकेश्रुतस्य ब्रह्मविद्यावत्वेनाक्षरब्रह्मविदोऽपि सूर्यद्वारेणैवगतिरुपपद्यते। किंच छांन्दोग्ये अथयदरणयायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदरश्चहवैरायरर्चार्णवौ ब्रम्ह लोके तृतीयस्यामितोदिवि तदैरं मदीयं सरस्तदश्वत्थ-सोम-सवनस्तदपराजिता पूर्वब्रम्हणः प्रभुविमितं हिरणयमयं तद्यएवैनावरं चराय

करने के लिये तस्मात्—यहाँपर ब्रह्मज्ञानी की सूर्य के द्वारा गति का श्रवण होने से इसीके सामान "येनाक्षरंपुरुषं वेद......... इस मुंडकमें सुने गये ब्रह्मविद्यमान अक्षर ब्रह्म जाननेवाले पुरुष के भी सूर्य के द्वारा ही गति सिद्ध होती है।

किंच— छान्दोग्य उपनिषदमें, अथ यदांरणयायर्णमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेवतत्.......अर्थात्—अरणय निवास प्रधान जो तपविशेष है, वह ब्रह्मचर्यही है। क्योंकि 'अर' और 'एय' यह दोनों ब्रह्म लोकमें सरोवरों के नाम हैं। ब्रह्मलोकमें प्रकृत मणडल से ऊपर तिसरे दिन में (अप्राकृतद्युलोक में) "ऐरंमदीये" नामक सरोवर है और अश्वत्थ साम सवन है अपराजिता पुरी है। वही ब्रह्म कीपुरी कही जाती है, और वही पुरी सर्वेश्वरसे विशेष स्वीकृत है अर्थात् उसी पुरमें सर्वेश्वर नित्यमुक्तों से उपसेव्यमान होते हुए निवास करते हैं। और वह पुर हिरणयमय अर्थात्

चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दति तेषा-
मेवैष ब्रह्मलोकस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो
भवतीत्यस्यानतरं श्रूयते । अथ या एता हृदयस्य
नाड्यस्ताः पिंगलस्याणिम्नस्तिष्ठंति शुक्ल-
स्यनीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः
पिंगल एष शुक्लः एषनीलः एष पीत एष
लोहितस्तद्यथा महापथं आतत उभौ ग्रामौ
गछती मंचा मुंचैव मेवैता आदित्यस्य रश्मय-
उभौ लोकौ गछंतीमंचामुंचामुष्मादादित्यात्प्र-
तायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्य

प्रकाशमय है । उस ब्रह्मलोकमें "अर" "एय" नामक जो दो अर्णव है इनको जो ब्रह्मचर्य के द्वारा जानते हैं, उन्हीं के लिये यह ब्रह्मलोक है, उनका सब लोकों में कामचार हो जाता है इन दोनों मंत्रो के बाद यह मंत्र उसी उपनिषद् में श्रुत हैं कि अथ-या एताः हृदय स्यनाड्यस्ता........जो यह हृदय सम्बन्धित नाडी हैं, वेसब, पिङ्गल, सूक्ष्म, अन्न रससे और शुक्ल, नील पीत, लोहित, अन्नरससे परिपूर्ण होकर स्थित हैं, यद्यपि ये सब नाडी खाये हुये अन्न रस विशेष से बनी हुए है तथापि नाना वर्णता जो निर्देश किया गया है, वह सूर्यरस सम्बन्ध विशेष से क्योंकि सूर्य की रश्मि नाना वर्णकी होती है यह प्रसिद्ध ही है ।

प्रतायन्ते तेमुष्मिनादित्ये सृप्तास्तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तस्संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सुप्तोभवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसाहि तदा सम्पन्नो भवत्यथ यत्रै-तदवलिमाणं नीतो भवति तमभितः आसीना आहुर्जानासि मांजानासि मामिति सयावदस्मा च्छरीरादनुत्क्रान्तोभवति तावज्जानात्यथ यत्रै-तदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेवरश्मिभिरूर्ध्वमा-क्रमते सओमिति वाहोउद्वामीयते सायावत्क्षि-प्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोक-

---

इसी अभिप्रायसे आगे कहते भी हैं कि यह आदित्य पिंगल शुक्ल नील, पीत, लोहित हैं।--(इन सूर्य की किरणों का हृदय से और ब्रह्म लोक से कैसे सम्बन्ध है कि जिस संबन्ध से यह जीवात्मा इस हृदय देश से निकलकर सूर्य रश्मियों के द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध को सदृष्टान्त श्रुति बताती है) जैसे विस्तीर्ण बड़ा रास्ता दोनों गाँव को जाता है, अर्थात्, इस गांव को और उस गांव को भी जाता है, इसी प्रकार ये सूर्य की किरणें भी दोनों लोकों को जाती है, अर्थात् इस मनुष्य लोक में भी जाती हैं और आदित्य लोक में भी जाती हैं। इसी का स्पष्टीकरण श्रुति स्वयमेव करती है कि,

द्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषां तदेषश्लोकः
शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धान-

इस आदित्य लोक से किरणें प्रसार को प्राप्त होती हैं, और वेही किरणें हृदय की नाड़ियों में सम्बन्ध होजाती है, और पुनः इन नाडीयों से, सम्बन्ध होती हुई पुनः आदित्य मंडल में एकत्रित होजाती है। जब यह जीव समस्त इन्द्रियों के व्यापारों को रोक कर, अतएव, वाह्यदेहादिकों के अभिमानादिक विलीन हो जाते हैं वैषयिक सुख दुःखादि कलंक रहित होकर सोया हुआ स्वप्न को भी नहीं जानता है, तब इन्हीं नाडियों में प्रवेश कर जाता है, और उन नाडियों के द्वारा पूरीतनी नामक नाड़ी में सो जाता है, तब सोये हुए इस पुरुष का कोई भी पाप स्पर्श नही करता है अर्थात् पापों का आरंभक किसी भोग पदार्थ का आरंभ नहीं होता। क्योंकि उस समय तेज स्वरूप परमात्मा से मिल जाता है। और जब यह जीवात्मा अत्यन्त कृश होजाता है तब चारो तरफ से बैठे हुए बांधव इस कृश पुरुष से पूछते हैं कि हमको जानते हो? हमको पहिचानते हो? तब वह जबतक इस शरीर से निकलता नहीं है तबतक कहता रहता है कि, मैं जानता हूँ पुनः जब शरीर से निकल जाता है तब इन्हीं सूर्य किरणों के द्वारा उद्र्ध्व लोक को आक्रमण करता है, क्योंकि वह विद्वान पुरुष "ॐ" यह भगवत नाम का उच्चारण करता हुआ, मरण को प्राप्त होता है। वह जैसे अपने मन का लोप करता है वैसेही तुरन्त आदित्य लोक को प्राप्त होता है, क्योंकि यह आदित्य मंडल ही ब्रह्म लोक का द्वार है। यह आदित्य मंडल ही ब्रह्मवेत्ता को ब्रह्म लोक में पहुँचाने वाला है, अविद्वान लोग इस आदित्य मंडल को नहीं

मभिनिःसृतैका । तयोर्द्धमायन्नमृतत्वमेति विश्वगन्या क्रमणो भवन्तीति तत्रासौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहित इत्यादित्यस्य शुक्लादिरूपत्व-श्रुतेः एतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषामिति तस्य विद्वत्प्राप्य-लोकद्वारत्व मुक्त्वा तेषां तन्मार्गेण गत्यवगमात् शतं चैका चेति मूर्द्धन्या नाड्या तेषामेव विदुषामुत्क्रान्तिनिर्देशाच्च ।

बृहदारण्येपि तत्समानार्थकत्वेन तस्मिन् शुक्लादिशब्दैरादित्यो निर्दिष्ट इत्यवगमात्

गमन कर सकते है। इस विषय में यह श्लोक कहा जाता है, कि एक सौ एक नाडी हृदय की हैं उनमें से एक नाडी मूर्द्धा को गई हुई है उस नाडी के द्वारा जो ऊर्ध्व गमन करतेहैं वे अमृत को प्राप्त हो जाते है अन्य नाडियों के द्वारा गमन करने वाले संसार में ही प्राप्त होते हैं। यह श्रुतियों में निर्देश किया गया है। तो यहां आदित्य को शुक्ल-नील-पीत-पिंगल आदि रूप से निर्देश किया गया है और विद्वान के लिये ब्रह्म लोक प्राप्ति का द्वार यही सूर्य मंडल है, यह कहने से ब्रह्म ज्ञानियों की इसी मार्ग के द्वारा गति होती है यह निश्चय होता है क्योंकि "शतं चैका" इस मंत्र से विद्वानों की इसी मार्ग में गति का निर्देश किया गया है, बृहदारण्य में भी यही समानार्थक श्रुति से

एष पन्था तेनैति ब्रह्मविदित्यादित्यद्वारेणैव ब्रह्म विदांगतिर्निर्दिष्टेति निश्चयाच्च योऽकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्म सन् ब्रह्माप्येतीति पूर्ववाक्यश्रुतस्यात्मकामस्य सूर्यद्वारेणैव गतिर्निश्चीयते। न चात्र वाक्यभेदाशंकया तदर्थभेद आशंकनीयः तत्रैव तदेते श्लोका भवन्त्यणुः पंथा इत्युत्तरवाक्यस्य पूर्ववाक्यार्थप्रकाशकत्वश्रुतेः प्रकाश्यप्रकाशकयोः पूर्वोत्तरवाक्ययोरेकवाक्यत्वावगमात्।

"तस्मिन् शुक्ल, माह्...इत्यादि शुक्लादि शब्दों से सूर्य का निर्देश निश्चय होता है. एष पंथा ते नैत ब्रह्मवित्" इस मंत्र से सूर्य के द्वारा ब्रह्म ज्ञानी के गति का निर्देश किया गया है यह निश्चय होताहै। "यो काम आत्म कामः इत्यादि पूर्व वाक्य में श्रुत आत्म कामी पुरुष का सूर्य के द्वाराही गति का निश्चय होता है वाक्य भेद की शंका से अर्थ भेद की आशंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि उसी जगह "तदेते श्लोका भवन्ति अणु पन्था" इत्यादि उत्तर वाक्य का पूर्व वाक्य के अर्थ की प्रकाशकता होने प्रकाश्य, प्रकाशक स्वरूप पूर्व उत्तर वाक्यों की एक वाक्यता निश्चित होती है।

मभिनिःसृतैका । तयोद्र्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वगन्या क्रमणो भवन्तीति तत्रासौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहित इत्यादित्यस्य शुक्लादिरूपत्व-श्रुतेः एतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषामिति तस्य विद्वत्प्राप्य-लोकद्वारत्व मुक्त्वा तेषां तन्मार्गेण गत्यवगमात् शतं चैका चेति मूर्द्धन्या नाड्या तेषामेव विदुषामुत्क्रान्तिनिर्देशाच्च ।

बृहदारण्येपि तत्समानार्थकत्वेन तस्मिन् शुक्लादिशब्दैरादित्यो निर्दिष्ट इत्यवगमात्

गमन कर सकते है। इस विषय में यह श्लोक कहा जाता है, कि एक सौ एक नाडी हृदय की हैं उनमें से एक नाडा मूर्द्धा को गई हुई है उस नाडी के द्वारा जो उद्र्ध्व गमन करतेहैं वे अमृत को प्राप्त हो जाते है अन्य नाडियों के द्वारा गमन करने वाले संसार में ही प्राप्त होते हैं। यह श्रुतियों में निर्देश किया गया है। तो यहां आदित्य को शुक्ल-नील-पीत-पिगल आदि रूप से निर्देश किया गया है और विद्वान के लिये ब्रह्म लोक प्राप्ति का द्वार यही सूर्य मंडल है, यह कहने से ब्रह्म ज्ञानियों की इसी मार्ग के द्वारा गति होती है यह निश्चय होता है क्योंकि "शतं चैका" इस मंत्र से विद्वानों की इसी मार्ग में गति का निर्देश किया गया है, बृहदारण्य में भी यही समानार्थक श्रुति से

एष पन्था तेनैति ब्रह्मविदित्यादित्यद्वारेणैव ब्रह्म विदांगतिर्निर्दिष्टेति निश्चयाच्च योऽकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्म सन् ब्रह्माप्येतीति पूर्ववाक्यश्रुतस्यात्मकामस्य सूर्यद्वारेणैव गतिर्निश्चीयते। न चात्र वाक्यभेदाशंकया तदर्थभेद आशंकनीयः तत्रैव तदेते श्लोका भवन्त्यणुः पंथा इत्युत्तरवाक्यस्य पूर्ववाक्यार्थप्रकाशकत्वश्रुतेः प्रकाश्यप्रकाशकयोः पूर्वोत्तरवाक्ययोरेकवाक्यत्वावगमात्।

"तस्मिन् शुक्ल, मार्ह" इत्यादि शुक्लादि शब्दों से सूर्य का निर्देश निश्चय होता है. एष पंथा ते नैत ब्रह्मवित्" इस मंत्र से सूर्य के द्वारा ब्रह्म ज्ञानी के गति का निर्देश किया गया है यह निश्चय होताहै। "यो काम आत्म कामः इत्यादि पूर्व वाक्य में श्रुत आत्म कामी पुरुष का सूर्य के द्वाराही गति का निश्चय होता है वाक्य भेद की शंका से अर्थ भेद की आशंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि उसी जगह "तदेते श्लोका भवन्ति अणु पन्था" इत्यादि उत्तर वाक्य का पूर्व वाक्य के अर्थ की प्रकाशकता होने प्रकाश्य, प्रकाशक स्वरूप पूर्व उत्तर वाक्यों की एक वाक्यता निश्चित होती है।

किंच बृहदारण्ये-ब्रह्म सन् ब्रह्माप्येतीत्यस्यानन्तरं तदेकःश्लोको भवतीति तदर्थप्रकाशकं च्यह्रियते-यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदिस्थिता इतीदं वाक्यं। काठके-"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे। यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदि स्थिताः। अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्रब्रह्म समश्नुते। शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका त योर्द्धं मायन्नमृतत्वमेतोति तस्यैव वाक्यस्यानन्तरं तदुक्तामृतभवनप्रकारबोधकं शतंचैका चेति नाडीपरं वाक्यं श्रूयते। तत्र अथ मर्त्यो-

किंचः—वृहदारण्यक में—"ब्रह्म सन् ब्रह्माप्येति,, तदेषश्लोको भवति अर्थात् तदर्थक प्रकाशक—"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते,, यह वाक्य है। तथा कठोपनिषद में-भिद्यतेहृदयग्रन्थि··· यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते शतं चैका हृदयस्यनाड्य,, आदि बचन सुने गये हैं, पूर्व वाक्य के बाद कहे हुए अमृत भवन बोधक प्रकार को "शतंचैका" यह नाडीपर वाक्य श्रुत है, यहां "अथ मर्त्योमृतोभवति" यह अमृत भवन के शंका होती है कि कैसे अमृत

मृतोभवतीत्यत्रकथममृतो भवतीत्यमृत भवान्
प्रकारप्रश्ना शंकानिवारकं नाडीपरं वाक्यं बो-
ध्यम् तत्कथमितिचेत कथममृतो भवतीत्युक्ते
शतं चैका च या हृदस्य नाड्यस्तासां मध्ये
एका सुषुम्नाख्या मूर्द्धानमभिसृता व्याप्ता तया
नाड्योदूर्ध्वं शरीरतोवहिरायन् न तु तत्रैव शरीरे-
ऽमृतत्वमेतीत्येवं । तत्रैवं सत्यत्रात्मकामस्य
शरीराद्वहिर्निःसृतस्यामृतत्वनिर्णयात् प्राणसम्ब-
न्धं विना तु तस्य शरीराद्वहिर्गत्यनुपपत्त्या
सप्राणस्यैव तस्यशरीराद्वहिर्गतिनिश्चयात् । बृहदा-

होता है, इस शंकाका निवारक नाडीपर वाक्य जानना चाहिये।
यदि कहो कैसे ? तो सुनो—कैसे अमृत होता है, यह कहनेपर
शतं चैका यह मंत्र यह बताता है कि हृदय की १०१ नाडी हैं,
उनमें से एकसुषुम्ना नामक नाडी मूर्धा को व्याप्त किये है, उस
नाडी से शरीर बाहर निःसरण करता हुआ ही अमृत को प्राप्त
करता है, अस्तु उसी शरीर में रहते हुए ही नहीं प्राप्त करता
है। इस प्रकार विचार करने पर यही निर्णय होता है कि आत्म-
कामी पुरुष शरीर से बाहर निकल करके ही अमृत को प्राप्त
करता है। प्राण सम्बन्ध के बिना जीव को शरीर से बाहर गति
अनुपपन्न है, इसलिये प्राण के सहित उसकी शरीर से बाहर
गति होती है यह निश्चय है। बृहदारण्यक, और कठोपनिषद्के

रण्यकाठकवाक्ययोरेकवाक्यत्वाच्च । गुणोप-संहारन्यायेन काठकश्रुतस्य नाडीपरवाक्यस्य बृहदारण्यकेपि नयनाच्चात्रैव समवलीयन्ते, अत्र ब्रह्म समश्नुत इत्युक्तस्यात्रशब्दस्य न शरीरपरत्वमुपपद्यते किं तु अवस्थाविशेषपर-त्वमेव आत्मकामस्यापि मूर्द्धन्या शरीराद्बहि-र्निर्गतस्यामृतत्वनिर्णयादित्येवमात्मकामस्या-प्यर्चिरादिनैव गतिरुपपद्यते, न तु त्वदभीष्टा सद्योमुक्तिः ।

नतु तर्हि न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति

वाक्यों की एक वाक्यता होने से गुणोपसंहार न्यायसे, काठक में सुने गये नाडी पर वाक्य का बृहदारण्यक में भी अनुवर्तन करना चाहिये। इसलिये "अत्रैव समवलीयन्ते, अत्रब्रह्म सम-श्नुते,, इन वाक्यों में कहा गया अत्र शब्द शरीर परक नही है किन्तु अवस्था विशेष पर है, अतः आत्म-कामी पुरुष जो कि मूर्धन्य नाडी से शरीर से बाहर निकला है, उसको अमृतत्व की प्राप्ति का निर्णय होने से आत्म-कामी पुरुष की अर्चिरादि के द्वारा ही गति उपपन्न होती है। आपकी अभीष्ट, सद्योमुक्ति कथमपि उपपन्न नहीं हो सकती ।

अब सन्देह यह करते हैं कि, "नतस्य प्राणा उत्क्रामन्ति,, इस मंत्र में प्राणों के उत्क्रान्ति का निषेध किस अपादान से

प्राणोत्क्रान्ति-निषेधः कस्मादुपपद्यते अत्रैव समवलीयन्त इत्युक्ते नात्रशब्देन किं परामृश्यत इतिचेदुच्यते तेनात्रशब्देन योऽकाम आप्तकाम आत्मकाम इतिप्रकृतः आत्मा परामृश्यते न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति तच्छब्देनापि स-एवपरामृश्यते कस्मान्नोत्क्रामन्तीत्यपेक्षायां स एव प्रकृत आत्मा तदुपादानत्वेन गृह्यते न तस्य प्राणा इति प्राणानां तच्छब्दपरामृष्टात्म-सम्बन्धित्वावगमात् ।

ननु बृहदारण्य एव प्रकरणान्तरे-याज्ञ-

करते हैं, और अत्रैव समवलीयन्ते,, इसे कहे गये 'अत्र' शब्द से किसका परामर्श करते हैं ? समाधान—यह है कि उस अत्र शब्द से यो कामः आप्तं कामः·· प्रकृत आत्मा का ही परा-मर्श होता है, "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" इस वाक्य में तच्छब्द से ही आत्मा काही परामर्श होता है किससे प्राण उत्का-न्ति नहीं करते यह अपेक्षा होनेपर वही प्रकृत आत्मा अपादान रूप से गृहीत होता है पूर्वोक्त प्राणोत्क्रान्ति निषेध वाक्य में भी प्राणों का तच्छब्द से परामृष्ट आत्म सम्बन्धित्व का निश्चय होता है ।

अब यह सन्देह करते हैं कि जैसे बृहदारण्यक में ही दूसरे प्रकरण में, याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषोमृयते

ल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियत उद-
स्मात्प्राणा उत्क्रामन्त्याहोस्विन्नेतिनेति होवाच
याज्ञवल्क्योऽत्रैव समवलीयन्त इत्यत्रार्त्तभाग-
प्रश्नोत्तरत्वेन प्राणानुत्क्रान्तिवचनं याज्ञवल्क्य-
स्य श्रूयते यथा तथानात्र कस्यापि प्रश्नः
श्रूयते उत आशंकापूर्वकप्रश्नं विना तन्निषेध-
वचनं नोपपद्यते इति चेच्छृणु योऽकामो
निष्काम आप्तकाम आत्मकाम इत्यस्यानन्तरे
पूर्वतने ग्रन्थे तद्यथा पेशस्करी पेशसो मात्रा-
मादायान्यं नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुत एव-

इत्यादि प्रश्न करने पर उवाच याज्ञवल्क्य अत्रैव समवलीयन्ते यहांपर आर्तभागके प्रश्न के उत्तर रूपमें प्राणों की उत्क्रान्तिका निषेध वाक्य याज्ञवल्क्य का सुना जाता है इसी प्रकार यहां किसी का प्रश्न भी नहीं है कि जिसके आशंका का पूर्व पत्त कर के और उसके निषेध वचन का उत्पादन किया जाय। सो नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, "यो कामो निष्काम" इस वाक्यके बाद पूर्व तन ग्रंथ में, तद्यथापे‥जैसे पेशस्करी-पेश से मात्रा को लेकर अन्य नवीन कल्याणमयरूपका विस्तार करता है, इसी प्रकार यह आत्मा भी इस शरीर को नाश कर अविद्या के द्वारा अन्य नवीन कल्याण तर रूप को चाहे तो पितृ संबन्धि अथवा

मेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यागमयित्वा-न्यं नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते। पित्र्यं वा गंधर्वं वा प्राजापत्यं वा ब्राम्हं वान्येषां वा भूतानां स वा अयमात्मा ब्रम्ह विज्ञानमयो मनो-मयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयो तेजो मयःकाममयोऽकाममयःक्रोधमयोऽक्रोधमयोः धर्म मयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदं मयोऽदोमय इति। यथाकारो यथाचारो तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारो पापोभवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनाथो खल्वाहुः काम-

अन्य-नवीन कल्याण तर रूप को, चाहे तो पितृ संबन्धि अथवा गंधर्व संबन्धि वा, देव, प्रजापत्य, ब्रह्म सम्बन्धी अथवा अन्य किसी भूत सम्बन्धिरूप कर लेता है, यह आत्मा ब्रह्म है विज्ञान-मय है मनोमय, प्राणमय चक्षुर्मय, श्रोत्रमय, पृथ्वीमय, आप-मय, वायुमय, आकाशमय, तेजोमय, काममय, अकाममय, क्रोधमय, अक्रोधमय, धर्ममय, अधर्ममय, सर्वमय, इदंमय, अदोमय है। यथा कार्य है यथाचारी होता है वैसा ही हो जाता है, अर्थात्—साधुकारी साधु होता है और पापकारी पापी होता है, पुण्यकर्म से पुण्यात्मा होता है पाप से पापी होता है। अब

मय एवायं पुरुष इति। स यथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते। तदेष श्लोको भवति तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचेह करोत्ययं तस्माल्लोकात्पुनरेत्यास्मै लोकाय कर्मण इतीत्यत्र सकामिनः पुरुषस्य पित्र्याद्यनेकरूपधारित्वेनोर्द्ध्वमधश्चानेकशो गमनागमनावगमात्। उर्द्ध्वमधश्च जीवगतेः प्राणसम्बन्धं विनानुपपत्तेस्तस्य प्राणा नोत्क्रामन्ति किंत्वा-

---

इस प्रकार से कहते हैं कि यह पुरुष काममय है, वह जैसे कामवाला होता है, वैसा ही क्रतु होता है, और जैसा क्रतु होता है वैसा ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है उसी फल को प्राप्त करता है, इस विषय में यह श्लोक है कि कर्मसक्त पुरुष कर्म के साथ ही उसीको प्राप्त होता है कि जिसमें मन आसक्त था, उस कर्म के फल को भोग करके जो भी इसने कर्म किया है उसके फल को भोग कर उस लोक से फिर भी कर्म करने के लिये इस लोक में चला आता है। इस प्रकरण में सकामी पुरुष को अनेक पितृ आदिरूप धारण करने को और उपर और नीचे आदि अनेक गमन आगमन को बताया गया है,

त्मना साकं गच्छन्तीत्यवधृते सतीयं शंका जाता सकामवन्निष्कामस्यात्मकामस्यापिप्राणा आत्मना साकं गच्छन्त्याहोस्वित्तद्विलक्षणत्वेनात्मकामस्य प्राणास्तेन साकं न गच्छन्ति किन्तु तत उत्क्रामन्तीति केवलं तामपाकरोति स्म श्रुतिः।

स्वयमेव योऽकाम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति न तस्येत्यस्यानन्तरमपि शब्दो द्रष्टव्यो न तस्यापीत्येवं सकामवन्निष्कामस्यात्मकामस्यापि प्राणानोत्क्रामन्तीति तदर्थः। अत्र मरणसमये सकामात्मकामयोरुभयोरपि

परन्तु ऊपर नीचे जीव की गति प्राण सम्बन्ध के बिना अनुपपन्न है, इसलिये जीवके प्राणों की उत्क्रान्ति नहीं होती किन्तु जीवात्मा के साथ ही जाते हैं। यह निश्चय हो जाने पर यह शंका हो जाती है कि सकामी पुरुष की तरह निष्काम, आत्मकाम पुरुष के प्राण भी आत्मा के साथ ही जाते हैं, अथवा विलक्षण भाव से आत्मकाम के प्राण जाते हैं। अथवा आत्मकाम जीवसे प्राण विलक्षण होनेसे उसके साथ नहीं जाते किन्तु उससे अलग उत्क्रमणकरजाते हैं। इस शंकाको श्रुति स्वयमेव निराकरण करती है कि यो काम आप्तकाम न तस्य प्राणाउत्क्रामन्ति यहांपर "न तस्य" इसके बाद 'अपि' शब्द का भी देखना

प्राणा आत्मनो नोत्क्रामन्ति किन्तु तमेव सम्प-द्यते इत्याह छान्दोग्यश्रुतिः। अस्य सोम्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यामिति तर्हि मृत्युः प्राणवियोग इति धातुव्युत्पन्नो मृत्यु शब्दः। प्राणैर्वियोगस्तु कस्य भवतीति चेत् शरीरस्य तत आत्मनः उत्क्रान्त्य-नन्तरं तस्यैव निश्चेष्टत्वादिदर्शनात् नित्य-

---

चाहिये। तब ऐसा हो जायगा कि "न तस्यापि" अर्थात् सका-मी पुरुष की तरह निष्काम पुरुष के भी प्राण उत्क्रमण नहीं करते। (ऐसा विचार करने पर यह निश्चय होता है) कि मरण के समय में सकाम और आत्म काम दोनों ही पुरुषों के प्राण आत्मा से उत्क्रमण नहीं करते किन्तु उसी में मिल जाते है, यह छान्दोग्य श्रुति बताती है। "अस्य सोम्ये प्रयतो वाङ् मनसि सम्पद्यते" अर्थात् हे सोम्ये! मरते हुए पुरुष की वाक मनमें मिल जाती है, मन प्राणमें; प्राण तेजमें और तेज पर देवता में इति। अब यहांपर यह प्रश्न उठता है कि "म्रियप्राण-वियोगे" इस धातु से बना हुआ मृत्यु शब्द है। तब आत्मा से यदि प्राणों का वियोग नहीं होता तो मृत्यु किसोकी होती है? इसका समाधान यह है कि शरीर से प्राण और आत्मा का उत्क्रमण होजाने से शरीर की ही मृत्यु होती है, क्योंकि प्राण और आत्मा के निकल जाने के बाद शरीर में निश्चेष्टा, कर चरण आदि व्यापार राहित्य देखा जाता है, आत्मा तो नित्य

स्यात्मनस्तु मृत्यनुपपत्तेः, 'न जायते म्रियते वा कदाचिदिति स्मृतेश्च। अतो न तस्य प्राणा इति तच्छब्दस्य प्रकृताकामात्मकाम चेतन-पुरुषपरामर्शकत्वेनाश्रुत शरीरं परामर्शकत्वं नोपपद्यते। न तस्य प्राणाइति पुरुषसम्बन्धि-त्वेन ज्ञातानां प्राणानामपादानापेक्षायामश्रुतस्य शरीरस्यापादानत्वकल्पनातः संबन्धावधित्वेन ज्ञातस्यात्मन एवापादानत्वकल्पनोपपत्तेः। शा-खान्तरे स्फुटं तस्यापादानत्वश्रुतेश्च न तस्मा-त्प्राणा उत्क्रामन्तीति।

है उसकी मृत्यु ही अनुपपन्न है, क्योंकि "न जायते म्रियते वा कदाचित्..."अतः "नतस्य प्राणाः......"यहांपर त च्छब्द प्रकृत निष्काम, आत्म-काम चेतन पुरुष का परार्शक होने से अश्रुत शरीर का परामर्शक कथमपि नहीं होसकता। क्योंकि पुरुष समबन्धित या ज्ञात प्राणों की अपादान की अपेक्षा होने पर अश्रुत शरीर को अपादान कल्पना करने की अपेक्षा से सम्बन्ध के अवधितया ज्ञात आत्मा का ही अपादान करना अच्छा है (अर्थात् जैसे प्राण को हम शरीर समबन्धि माने और शरीर को आत्म समबन्धि माने तो अन्न परम्परा की समाप्ति आत्मा में ही माननीय होगी। इसलिये प्राणों को आत्म सम्बन्धि मानना ही उपयुक्त है, और प्राणोत्क्रान्तिका अपादान आत्माकोही

तदेवं जीवादेव प्राणोत्क्रान्तिनिषेध उपपद्यते न शरीरादितितदर्थनिर्णायकसूत्राभ्यां प्रतिषेधादितिचेन्न शारीरा दिति स्पष्टो ह्येकेषामिति चाभ्यामवगम्यते। तदर्थस्तु नन्वथा कामय मानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्म कामः न तस्य प्राणाउत्क्रामन्तीति परब्रह्मविदः शरीरा त्प्राणोत्क्रान्ति प्रतिषेधान्नास्त्युत्क्रान्तिः प्राणानाम्। शरीरात् तथा पूर्व आर्त्तभाग प्रश्नोत्तरेपि विदुषः शरीरात्प्राणा उत्क्रान्तिनिषेधश्रवणाच्च। तत्रायं पुनर्मृत्युं जयति य एवं वेदेति विद्वांसं प्रस्तुत्य

मानना चाहिये। तथा दूसरी शाखाओं में आत्मा को अपादान स्पष्ट श्रुत है, न तस्मात्प्राणाः उत्क्रामन्ति" अर्थात् उस आत्मा से प्राण उत्क्रमण नहीं करते। इसलिये जीवसे ही प्राणोत्क्रान्ति का निषेध उपपन्न है, शरीर से नहीं, इस अर्थ के निर्णायक "प्रतिषेधात् इति चेन्न, शरीरात्इति, "स्पष्टो ह्येकेषां" इस दोनों ब्रह्म सूत्रों से निश्चय होता है इन दोनों सूत्रों का अर्थ यह है कि अकामय मानो यो काम निष्काम" इस श्रुति से कथित पर-ब्रह्म ज्ञानी के शरीर से प्राणों के उत्क्रांति का प्रतिषेध होने से शरीर से प्राणों के उत्क्रान्ति नहीं है। तथा दूसरी जगह आर्तभाग ऋषि के प्रश्न के उत्तर में भी विद्वान् के शरीर

याज्ञवल्क्येति होवाचयत्रायं पुरुषोम्रियतेउदस्मा-
त्प्राणाः क्रामन्त्याहोनेति होवाच याज्ञवल्क्योऽ
त्रैव समवलीयन्ते उच्छ्वयत्याध्मायत्याध्मातो-
मृतः शेतेइतोति चेन्न शारीरात् प्रत्यगात्मनोऽयं
प्राणोत्क्रान्तिप्रतिषेधोस्ति न तच्छरीरात् एकेषां
माध्यन्दिनीनामाम्नाये योऽकामो निष्काम आप्त-
काम आत्मकामो न तस्मात्प्राणा उत्क्रामन्तीति
स्पष्टमेव प्रत्यगात्मनः प्राणोत्क्रान्तिप्रतिषेध श्रव-
णादिति।

एवमार्तभागप्रश्नोत्तरेपि प्रत्यगात्मन एव
प्राणोत्क्रान्तिप्रतिषेध उपपद्यते। तथाहि यत्र य-
स्मिन् काले अयं प्रस्तुतोविद्वान् म्रियते तदास्मा-

से प्राणोत्क्रांति का निषेध सुना गया है, वहांपर यह बताया गया है कि (वह मृत्यु को जीत लेता है कि जो इस प्रकार से जानता है) यहां विद्वान् को प्रस्तुत करके याज्ञवल्क्य ने कहा कि जब यह पुरुष मरता है तब उसे प्राण उत्क्रमण करते हैं कि नहीं? इस प्रश्न पर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि, यहीं पर लीन हो जाते है, अर्थात् आत्मा मे मिल जाते हैं। इसे प्रत्यगात्मा से ही यह प्राणोत्क्रांति का निषेध है, शरीर से नहीं, माध्यन्दिनि आम्नाय में स्पष्ट प्रत्यगात्मासे "न तस्मात्प्राणा उत्क्रामन्ति

न्म्रियमाणाद्विदुषः सकाशात् अत्र प्राण शब्देन सूक्ष्मदेह उक्तः । अथवा प्राणाः वागादयो महा-मुक्तिप्रतिबन्धको भूताः तस्य वासनामयनामाद्य-तिग्रहसहिता उत् ऊर्द्ध्वं क्रामन्त्याहोस्विन्नेति पृष्टे सति नेति होवाच । नोत्क्रामन्तीति होवाच

इसे निषेध किया गया । इस लिये आर्त भाग प्रश्नोत्तरमें प्रत्य-गात्मासे ही प्राणोत्क्रान्त का निषेध उपपन्न होता है, तथाहि जिस काल में यह प्रस्तुत विद्वान् मरता है उस काल मृयमान विद्वान् से प्राण पदवाच्य सूक्ष्म देह अथवा वागादि इन्द्रियां जो कि मुक्ति के प्रतिबन्धक हैं, उनकी वासनामय नामादि अतिग्रहों के सहित उद्ध्र्व क्रान्ति होती है कि नहीं ? यह पूछने पर नहीं होती ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा किन्तु इसी विद्वान् में लीन हो जाते हैं इति । तब मृत्यु की प्रसिद्धि कैसे है ये अपेक्षा में मृत्यु प्रसिद्धि देह विषया है, अर्थात् मरा हुआ वह देह अशुद्ध हो जाता है फूल जाता है, अनेकों शब्दों को करता है, सूक्ष्म शरीर उससे निकल जाता है, और निश्चेष्ट होकर भूमि में सो जाता है, इसलिये देह का ही मरण धर्म है ।

यह जो आपने अर्थ किया है यह तब संगठित हो सकता है जबकि आर्ति भागका प्रश्न विद्वत विषयक हो । परन्तु उसका प्रश्न विद्वत विषयक तो है नहीं, क्योंकि विद्वत विषयक निष्काम आत्म-कामादि वचन प्रश्न में नहीं है, किन्तु यही प्रश्न किया है कि हे याज्ञवल्क्य ! कितने ग्रह होते हैं, कितने अतिग्रह होते हैं, इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य ने आठ ग्रह होते हैं, इत्यादि उत्तर

याज्ञवल्क्यः किं त्वत्रवास्मिन्नेव विदुषि समवलीयन्त इति। तर्हि मृतप्रसिद्धिः कथमित्य पेक्षायां सा देहविषया इत्याह। स इति–स मृत देह उच्छ्वयति उच्छूनतां प्रतिपद्यते आध्मायति दृतिवद्बाह्येन वायुना पूरितो विविधान् शब्दानाद्रभरीवत्करोति यत अस्मातः शब्दवान् मृतः त्यक्तप्राणः विलीनसूक्ष्मशरीरः सन् निश्चेष्टः भूमौ शेते अतोदेहस्यैव मरणधर्मत्वमित्यर्थः। यदि विद्वद्विषय आर्त्तभागप्रश्नस्तदायमुक्तोऽर्थः न च तस्याऽविद्वद्विषयकत्वं नुपपद्यते तत्र विद्वद्विषयकनिष्कामाप्तकामादिवचनाश्रवणात्। किन्तु याज्ञवल्क्येति होवाच कति ग्रहाः कत्यतिग्रहा इत्यष्टौग्रहा इत्यादि तत्पूर्ववाक्यस्य आर्त्तभागप्रश्नात्पूर्वतनवाक्यस्य ग्रहातिग्रहभूतेंद्रियार्थ-प्रश्नोत्तर रूपत्वेनाऽविद्वत्परत्वावगमात्। ·

दिया है"। इन आर्तभाग के प्रश्नोत्तर मे यही निश्चय होता है कि ग्रह और अतिग्रह भूत इन्द्रियों का प्रश्न होने से तद्रूप ही उत्तर है, इसीलिये अविद्वद् विषयक ही प्रश्न है। पुनः उसके पूर्व-

पुनश्च तत्पूर्व तनंत्राक्यस्य याज्ञवल्क्योनिहोवाच-
यत्रायं पुरुषो म्रियते किमेनं न जहातीति ना-
मेत्यनन्तं वैनामाऽनन्ता विश्वेदेवा अनंतमेव
स तेन लोकं जयतीत्यस्य पूर्वतनस्य च आर्त्त-
भागप्रश्नोत्तरतनस्य च वाक्येति होवाच । यत्रा-
स्य पुरुषस्यमृतस्याग्निं वागप्येति वा तं प्राण
इत्यारभ्य क्वायं तदा पुरुषो भवतीत्याह
सोम्य हस्तमार्तभाग त्वामे तस्यवेदिष्यावोनना-
वेतत्सजन इति तौ होत्क्रम्य मंत्रयांचक्रतुः

तन वाक्य मे यह प्रश्न दिया है कि हे याज्ञवल्क्य–जब यह पुरुष मरता है तब किसको नही त्यागता है ? तो याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि नामको नही त्यागता है ! क्योंकि नाम अनंत है शरीर के नष्ट हो जाने पर भी नाम नष्ट नही होता । नामके अभिमानी देवता विश्वदेव अनत हैं । इस प्रकार अनंत रूप स नामको जो जानता है वह अनंत लोक को जीत लेता है । इस व क्य क बाद आर्तभाग न यह प्रश्न किया ? कि हे याज्ञवल्क्य ! इस पुरुष क मरने पर इसकी वाक अग्नि मे लीन होजाता, प्राण वायु मे, चक्षु सूर्य मे, लीन हो जाताहै। इत्यादि प्रश्न करके पूछा कि यह पुरुष कहा चला जाता है तथा इसका आश्रय क्या होता है ? तब याज्ञवल्क्य ने कहा — कि हे सोम्ये आर्तभाग ! अपना हाथ इधर बढ़ाओ हम और आप दोनों जने इस बात को जाने।

तौहयदूचतुः कर्म हैवतदूचतुरथयत्प्रशंसतुः कर्महैवतत्प्रशंसतुः पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति ततो ह जारत्कारव आर्त्त-भाग उपरराम इत्यस्या विद्वत्परत्व निश्चयात्। तदुभयवाक्ययोर्मध्यगतस्य यत्रायं पुरुषो म्रियते उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्या होनेतीत्यस्यापि संदं-शन्यायेनाविद्वत्परत्वतो प्रपत्तेः।

यत्पुनरुक्तं अथपुनर्मृत्युजंयति य एवं वेदेति विद्वांसं प्रस्तुत्यार्त्तभागप्रश्नप्रवृत्तेः। स विद्वद्विषयइति तन्न तत्र मृत्युजंयशब्दस्याग्नि

क्योंकि यह ज्ञान एकान्त में होता है. जनसमुद्राय में नहीं, ऐसा कहकर वे दोनों जने एकान्त में जाकर विचार करने लगे, निर्णय के बाद जो उन्होंने कहा सो कर्म ही को कहा.जो उन्होंने प्रशंसा किया सो कर्म की ही प्रशंशा की, पुण्य कर्म से पुण्य होताहै। पाप कर्म से पाप होता है, यह सुनकर, जारत्कारव आर्त-भागी चुप होगया। यह सब प्रश्नोत्तर अविद्वद्विषयक ही है यह निश्चय होता है, इन दोनों वाक्यों के मध्यगत "यत्रा यं पुरुषो म्रियते" इस मूलोक्त मध्यगत वाक्य का संदंश न्याय से अविद्वद्विषयकही निश्चय होता है। तथा जो यह कहा जाताहै "अथपुनर्मृत्यु जंयति य एवं वेद" यह विद्वान् को प्रस्तुत करके आर्तभाग के प्रश्न की प्रवृत्ति है। इसलिये उसका प्रश्न

जयपरत्वेन मुक्तिपरत्वानुपपत्त्या तस्य वि द्वि-षयकत्वासिद्धेः । तथाहि याज्ञवल्क्येति हो वाच यदिदं सर्वं मृत्योरन्नं कास्वित्सादेवता य-स्याः मृत्युरन्न मित्यग्निर्वै मृत्युः, सोऽपामन्न-मपपुनर्मृत्युं जयति य एवं वेदेति । तत्रैव-मृत्यु शब्देनाग्निरुच्यते सोग्निरपामन्नत्वेन तदधीन उच्यते । अतोऽपामग्निरूपान्नप्रदानेन योग्निजयः स मृत्यु जय शब्दे नोक्त अतोन

विद्वद्विषयकही है । सो नहीं कह सकते ? क्योंकि मृत्यु जय, शब्द का अर्थ अग्नि की जय है, मुक्ति परक नहीं है इसलिये विद्वद्विषयकता असिद्ध है । तथाहि याज्ञवल्क्येति होवाच— आर्तभाग ने पूछा कि हे याज्ञवल्क्य ! य सम्पूर्ण जिस एक मृत्यु का अन्न होता है और मृत्यु भी जिसका अन्न होता है वह कौन देवता है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि अग्नि मृत्यु है जिसका यह सम्पूर्ण अन्न है और वह अग्नि जलका अन्न है जो इस प्रकार से मृत्यु को जानता है वह अपमृत्यु को जीत लेता है यहां मृत्यु शब्द से अग्नि कहा गया है, अग्नि जलका अन्न कहने से जल के अधीन है । अतः जल केलिये जो अग्नि रूप अन्न को प्रदान करता है वह अग्नि को जीत लेता है, यही मृत्यु जय शब्द से कहा जाता है । अतः यहाँपर विद्वद् प्रसंग का लेश भी नहीं दिखाईपड़ता, प्रत्युत अविद्वद्विषयक प्रसंग

तत्र विद्वत्प्रसंगलेशोप्यवगम्यते।

अविदुषस्तु प्राणा उत्क्रामन्त्याहो नेति नेति होवाचेति उभेपि प्रश्नप्रतिवर्चने उभएकत्रभूते प्रतिपादयतः प्रतिपादनं कुरुन इत्यर्थः। यथा स्थूलदेहोजोगंमुंचति तथा प्राणा अपि तं मुंचंति न नेतीति पृष्टे संति न मुंचन्ति किन्तु भूतसूक्ष्मवज्जोवं परिष्वाज्यगच्छंतीति प्रतिपादनं कुरुत इत्यर्थः इतिध्येयं।

किंच छान्दोग्ये अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनपि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यामित्यारभ्य तत्वमसीत्यन्ते वाक्ये

निश्चित भी होता है अविद्वान् के प्राण उत्क्रान्ति करते हैं कि नही ? नही उत्क्रान्ति करते यह दोनों ही प्रश्न प्रति वचन दोनों कर्ताओं से किये गये, यही प्रतिपादन करते हैं, अर्थात् जैसे यह अस्थूल देह जीवको त्याग देता है वैसेही प्राण भी इसका त्याग देते हैं कि नहीं? यह पूछने पर नहीं त्यागते हैं किन्तु भूत सूक्ष्म की तरह जीव के संसक्त होकर ही जाते हैं यह जानना चाहिये किंच छान्दोग्य में "अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयत यहां से आरंभ कर 'तत्वमसि' वहां तक के वाक्य में, परदेवता

परदेवतासम्पत्तिपर्यन्तं विदुषोऽविदुषश्चगतेः समानत्वश्रवणाज्जीवादेव प्राणोत्क्रान्ति-निषेधवचनमुभयवाक्यश्रुतमुपपद्यते, न तु शरीरात् । कुतः प्राणः तेजसीति प्राणानां तेजः उपलक्षितभूतसूक्ष्मविशिष्टजीव–सम्पत्तिवचनविरोधात् एतद्वाक्यमविद्वन्मरणविषयमिति चेत्सत्यं तथापि तस्य यावन्नवाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां स य एषोऽणिमा एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसीत्यन्तं यद्विद्वन्मरणविषयकं वाक्यं

की सम्पत्ति पर्यंत विद्वान् और अविद्वान् की समान गति सुनि गई है, इसलिये जोव से ही प्राणोत्क्रान्ति का निषेध वचन उभय वाक्य मे जो सुना गया है वह इसी प्रकार उत्पन्न होता है । शरीर से प्राणोत्क्रान्ति का निषेध नही है । क्योंकि-प्राण तेजसि इस वाक्य से तेज उपलक्षित भूत सूक्ष्म विशिष्ट जीव में प्राणों की सम्पत्ति का वचन है उसका विरोध होजायगा । अतः यह वाक्य अविद्वान् के मरण विषयक है, सो नही कह सकते इति ।पूर्वपक्ष—

अथोत्तरपक्ष–क्योंकि"तस्य यावन वाङ्मनसि सम्पद्यते" यहां से'तत्त्व मसि' पर्यन्त जो विद्वद मरण विषयक वाक्य है ।

तस्याविद्वन्मरणविषयकवाक्यसमानार्थकत्वश्रवणात्। परदेवतासम्पत्तिपर्यन्तं विदुषोविदुषश्चोत्क्रान्तिः समानैव श्रुतिविहिता सर्ववादिसम्मता च तदनन्तरं स्वस्वानुष्ठितकर्मोपासनाद्यनुसारेण तत्र तत्र गमिष्यतां तत्तन्नाडीविशेषेस्योत्क्रान्तिविशेषस्य श्रवणाच्च। शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्द्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वगन्या उत्क्रमणे भवतीति तथा तेनप्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूर्ध्नोर्वा अन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्य इति च तं चैकाच्च चक्षुषोवा मूर्द्धो वेत्यनयोः

उसका अविद्वद् मरण विषयक वाक्य के साथ समानार्थकता सुनी गई है, इसलिये पर देवता सम्पत्ति पर्यन्त विद्वान और अविद्वान की समान ही श्रुति उत्क्रान्ति का विधान करती है, यह सर्व बात सम्मत है, इसके बाद स्वः स्वः अनुष्ठित कर्म और उपासनादि के अनुसार वहां २ जाते हुए जीवों की तत्तत् नाडी विशेष के द्वारा उत्क्रान्ति विशेष सुनी गई है, और "शतं चैका हृदयस्यनाड्यः……तथा "तेन प्रद्योतेन येष आत्मानिष्क्रामति" इन दोनों श्रुतियों की एकार्थकता होने से मूर्धा से निष्क्रमण विद्वान का होता है, और प्रदेशान्तरीय नाडियों से

श्रुत्योरैकार्थ्यात् । मूर्द्धन्योनिष्क्रमणं विदुषः अविदुषांतु प्रदेशान्तरोयनाडीभ्य इति नाडीप्रवेशानन्तरं विद्वदविदुषोरुत्क्रान्तिविशेषः श्रुतिभिरेवावगम्यते तथैव तदर्थनिर्णायकसूत्रादपि समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वञ्चानुपोष्येत्येतस्मात् र्थं श्रुतोत्क्रान्तिः किं विद्वदविदुषोः समाना उतन; समानत्वेपि कियत्पर्य्यन्तमिति चिन्तायां न समाना, कुतः यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः । अथमर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति विदुषोऽत्रैवामृतत्वश्रुत्यो

निष्क्रमण अविद्वान का होता है, नाड़ी प्रवेश के बाद विद्वान और अविद्वान को उत्क्रान्ति विशेष श्रुतियों से जानी जाती है, इसी अर्थ का निर्णय "समाना चा सृत्युपक्रमात्" इस सूत्र से भी होता है। क्योंकि यह श्रुत जो उत्क्रांति है सो विद्वद् और अविद्वद् विषया समान ही है अथवा नहीं? समान है तो कहांतक समानता है, यह चिन्ता होने पर कहते हैं कि समान गति नहीं है, क्योंकि "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते" इस प्रमाण से विद्वान को यहीं अमृतत्व की श्रुति है इसलिये उत्क्रान्ति अनुपपन्न है, इसलिये विद्वान को उत्क्रान्ति नहीं होती, और अविद्वान को उत्क्रान्ति होती है, ऐसी आशंका होने पर कहते हैं कि "समाना चा सृत्युपक्रमात्" अर्थात् अनुगमनानुकूल देवयान

क्रान्त्यनुपपत्तेरित्याशंकायामाह समानाचा सृत्यु पक्रमादिति, सृतिः सरणानुं कृतो देवयान मार्ग-स्तस्योपक्रमः तदोकोग्र ज्वलनमित्यनेन रश्म्य-नुसारीत्यनेन वा सूत्रेणोक्तः आतदुपक्रमात् ।

अथवा सरंत्याभिरिति सृतयो नाड्यः आतदुपक्रमात् आतत्प्रारम्भात् आतत्प्रवेशात् नाडीप्रवेशं मर्यादीकृत्येतियावत् नाडीप्रवेशात्पूर्वं विदुषोऽविदुषश्चोत्क्रान्तिः समाना अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतोवाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यामितीत्यत्र तस्य या-

---

मार्ग समान ही है, उसीका उपक्रम "तदोकोग्रज्वलनम् इससे अथवा "रश्म्यनुसारी" इस सूत्र से किया गया है अथवा आ-तदुपक्रमात् "आशरण त्यामि"! अर्थात् नाडी प्रवेश पर्यन्त विद्वान और अविद्वान की उत्क्रान्ति समान है। "अस्य सोम्य पुरुषस्यप्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते, इस मंत्र से दोनों की समानता सुनी गई है। अर्थात् पर देवता सम्प्राप्ति पर्यन्त विद्वान और अविद्वान की उत्क्रान्ति समान है, उसके बाद, तत्तत् नाडी विशेष से तत्तत् उत्क्रान्ति होने से उत्क्रान्ति में विशेषता होजाती है। क्योंकि अविद्वान की नाड्यन्तर सेत्क्र उ-मण कर गति होती है, और अविद्वान की मूर्धन्य नाडी से

वन्नवाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्ते-
जसि तेजः परस्यामित्यत्र च तयोस्तत्समानत्व-
श्रवणात् परदेवतासम्पत्तिपर्यन्तं विद्वद्विदुषोः
उत्क्रान्तिः समाना तदनंतरं तत्तन्नाडीविशेषेण
तत्तदुत्क्रान्तेरुत्क्रान्तिविशेषः यतोऽविदुषो नाड्यं-
तरेभ्य उत्क्रम्यगतिः विदुषोपि मूर्द्धन्योत्क्रम्य
गतिः श्रूयते काठके यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा
येऽस्य हृदि स्थिताः। अथ मर्त्योऽमृता भव-
त्यत्र ब्रह्म समश्नुते इति विद्वांसमपक्रम्य कथं
सोऽमृतोभवतीत्याशंक्य च शतं चैका च हृदय-
स्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभि सृतैका। तयोद्ध्व
मायन्नमृतत्वमेति विश्वगन्या उत्क्रमणेभवन्तीति

उत्क्रमण कर गति होती है।

कठोपनिषद् में—यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते,, इस मन्त्र से विद्वान का उपक्रम कर कैसे वह अमृत होता है यह आशंका कर "शतं चैका हृदयस्य नाड्य" इस मन्त्र से मूर्धन्य नाड़ी से उत्क्रान्ति का निर्देश किया है इस लिये उसी मूर्धन्य नाड़ी से शरीर से ऊपर प्राप्त होकर उससे बाहर निकलकर ब्रह्म ज्ञानी को अमृतत्व की प्राप्ति होती है अतः विद्वान की भी नाड़ी विशेष से उत्क्रान्ति अवश्य होगी, और देह त्यागके बाद ब्रह्म की प्राप्ति

मूर्द्धन्या नाड्या तदुत्क्रान्ते निर्देशात तथैव मूर्द्धन्या शरीरादूर्द्ध्वं प्राप्तस्य तस्माद्बहिर्निर्गतस्यामृतत्वप्राप्त्युक्तेश्च विदुषेपि नाडीविशेषेणोत्क्रान्तिरवर्जनीया ब्रह्मप्राप्तिश्च देहत्यागादूर्द्ध्वम। अथवा यदाऽस्य कामाः प्रमुच्यन्ते अथ तदामर्त्योऽमृतोऽमृतयोग्यो भवति अत्र सर्वकामप्रमोकावस्थायां वासनाराहित्येन निवातस्थदीपस्येव निश्चंचलस्य मनसो ध्येयब्रह्माकारापन्नत्वं ब्रह्मानुभवः सोऽत्रब्रह्म समश्नुते इत्यनेनोच्यते एवं तस्यैवं विदुषो जीवन्मुक्तस्य प्रारब्धा-

---

भी अवश्य होगी । अथवा जब इस विद्वान के काम मुक्त हो जाता है और अमृत के योग्य होजाता है इस श्रुति में सर्वकाम के विमोक अवस्था में वासना रहित होजाने से निर्वान स्थान में स्थिति निश्चल दीप की तरह निश्चल मन से ब्रह्म का ध्यान करने से ध्येय ब्रह्म के आकार को आपन्न होकर ब्रह्म का अनुभव करना है । इस प्रकार से ब्रह्म का अनुभव करने वाले विद्वान को हि जीवन मुक्त कहा गया है, और इसी जीवन मुक्त के प्रारब्ध के अन्त में "तदो को ग्रज्वलनं,, इस सूत्र से कही हुई रीति के अनुसार हृदयस्थ अन्तर्यामि पुरुष की अनुकम्पा से, मूर्धन्य नाडी के द्वारा देह से निकल कर अर्चिरादिमार्ग से साक्षात् ब्रह्म की प्राप्ति "शतंचैका,, इस मंत्र से बताई गई है।

वसाने तदोकोग्रज्वलनं हार्दानुगृहीतया शता-
धिकया इतिसूत्रोक्त रीत्या हार्द पुरुषानुग्रहेण
मूर्द्धन्यो नाड्या देहान्निर्गत्याचिरादिमार्गेण साक्षा
द्ब्रह्म प्राप्तिः शतं चैका च तयोर्द्ध्व मायन्नमृ–
तत्वमेतीत्यनेनोच्यते इति विदुषो जीवन्मुक्त-
स्यापि मूर्द्धन्यागतिश्रवणादुत्क्रान्तिरवर्जनीया
सा च प्राङ् नाडीप्रवेशाद्विशेषा श्रुतेः समाना
नाडी प्रवेश वेलायां च तद्विशेषः तेनप्रद्यो तेनैष
आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूर्द्ध्नों वा
अन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्य इति तत्र तद्विशेष

अतः जीवन मुक्त विद्वानकी भी मूर्धन्य नाडी से ही गति सुनी गई है, इसलिये उसी से उत्कान्ति होगी, और वह उत्कान्ति नाडी प्रवेश के पहले समानतया श्रुत है, और नाडी प्रवेश के समय उससे विशेषता बताई गई है, कि उस प्रकाश से यह आत्मा निकलता है, चक्षु से अथवा मूर्धा से वा अन्य शरीर प्रदेशों से। जो यह कहा गया है कि "अथमर्त्योमत्यु भवति,, कि विद्वान यहीं अमृतको प्राप्त हो जाता है, इस विषय में सूत्र-कार ने "अमृत त्वं चानुपोष्य,, इस सूत्र से यह बताया है कि अमृत त्व, अर्थात् शब्द ब्रह्म की प्राप्ति शरीरेन्द्रिय सम्बन्ध को बिना नास किये हुए ही जीवन दशा में ही पूर्व उत्तर पापों का

श्रुतेः । यदुक्तमथमर्त्यो मृतोभवतीत्यत्र ब्रह्म-समश्नुत इति विदुषात्रैवामृतत्वादिकं श्रूयत इति तत्राह अमृतत्वं चानुपोष्येति अमृतत्वं च शब्दब्रह्मप्राप्तिश्चानुपोष्यशरीरेन्द्रियादिसम्बन्ध-मदग्धवज्जीवद्दशायामेवोत्तरपूर्वाघयोरश्लेषवि-नाश-रूपं . अथवा मृत्युहेतुभूतसर्वकाम-प्रमोकश्रुतेर्बीजाभावेन तत्कार्यस्य पुनरनुदया-द्देहान्ते भविष्यतोऽत्रैवोक्तिरथमर्त्योऽमृतो भव-तीति ।

अथवा सर्वकामरहितस्य मरणधर्मकदेहा-दिरुच्यभावेन तद्वियोगरूपतन्मरणहेतुकभया-

---

विनाश और अश्लेष को प्राप्त करताहै, अथवा मृत्यु का हेतुभूत सब कामों का प्रमोक (नाश) हो जानेसे बीज के अभाव मे उसके कार्य का भी उदय नहीं होता, इसलिये देह के अंतमे ब्रह्म प्राप्ति अवश्य हो जायगी, इसी अभिप्राय से यह कहा गया है कि, "अथमर्त्योमृत्यु र्भवति,, अथवा सर्वकाम रहित पुरुष की मरण धर्मक देहादि मे रुचिके अभाव होने से उस देहकी वियोगरूप, उस देह के मरण से जो होने वाली जो भयके अभाव होने से जीवता हुआ भी वह अमृत हो जाता है, इसीलिये कहा है "अथमर्त्यो मृत्युर्भवतीति,,

भावाज्जीवन्नापि सोऽमृतो भवतीत्यत उक्तं अथ-मर्त्योऽमृतोभवति शरीरसम्बन्धेन मरणधर्मापि तद्वियोगहेतुभयाऽभावे नं मृतो भवति। किंच शरीरस्यदेहत्याग वेला यां मृत्युशब्दाभिध्येयत्वेन न मुख्यामृतत्वं किन्तु देहत्यागांनन्तर-मेवतस्य तदिति। यदा सर्वेप्रमुच्यन्ते कामा इत्यस्य वाक्यस्यार्थप्रकाशकं शतं चैका चेतीदं यद्वाक्यं तत्रत्यात्. तयोर्द्ध्वंमायन्नमृतत्व मेतीत्य स्माद्वचनादंगम्यते अन्यथा प्रकाश्य-प्रकाशकवाक्यश्रुतयोरमृतत्ववाचनयोः परस्परं विसंवादित्वेनाप्रामाण्यं स्यात्। न च तयो-

किंच—जीवात्मा के देह के त्याग के समय में मृत्यु शब्द का विधान किया गया है, इसलिये यहां मुख्य अमृतत्व का विधान नहीं है, अर्थात् जीवन कालमें ब्रह्मज्ञानी को मुख्य अमृतत्वकी प्राप्ति नहीं हैं किन्तु—देह त्याग के बाद ही "यदा सर्वे-प्रमुच्यन्ते,, इस वाक्य के अर्थ प्रकाशक "शतं चैका,, यह वाक्य निश्चय करता है। यदि ऐसा न माना जाय तो प्रकाश्य प्रकाशक वाक्य सुना गया अमतत्व शब्द परस्पर में विषमवादी होने से अप्रामाण्य हो जायगा। यदि इन दोनों वाक्यों के अधिकारी भेद से भिन्न विषयता मानकर विरोध का परिहार करना

वाक्ययोरधिकारिभेदेन भिन्नविषयकत्वादविरोध इतिवाच्यम्; वृहदारण्ये-यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा इत्यस्य वाक्यस्यानंतरं तदेते श्लोका भवन्त्यणुः पंथाः विततः पुराणः तेन धीरा अपि यन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गलोकमित्यादौ सर्वकाम-प्रमुक्तस्यार्चिरादिना गत्युक्तेः। काठकेपि सर्व कामप्रयुक्तस्यार्चिरादिना गत्युपपत्ते। तथैव यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते इत्यस्यानन्तरं शतंचैका चेत्यस्यार्चिरादिपरस्य वाक्यस्य श्रवणाच्चोभयो-र्वाक्ययोः प्रकाश्यतदर्थप्रकाशकत्वोपपत्त्या तदधि

चाहें सो नहीं हो सकता। क्योंकि बृहदारण्य में "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते,, इस वाक्य के बाद "तदकेश्लोकोभवन्ति., इत्यादि श्लोकों में सर्व कामना से रहित ब्रह्मज्ञानी की अर्चिरादि मार्ग से गति कही गई है। काठक में भी सर्व कामना रहित विद्वान की ही अर्चिरादि के द्वारा गति उपपन्न है। क्योंकि:—वृहदारण्य के समान ही "यदा सर्वेप्रमुच्यन्ते" इसके बाद "शतं चैका,, यह अर्चिराद बोधक वाक्य सुना जाता है, इसलिये दोनों वाक्यों के प्रकाश प्रकाश्यत्व उपपन्न होने से अधिकारी भेद से वाक्य भेद सिद्ध नहीं हो सकता

किञ्च—पहले सभी विद्वानों की अर्चिरादिके द्वारा बार-म्वार गति उपपादन की गई है। इसलिये किसी भी मोक्ष पर

प्रकृतेप्यसंदिग्धार्थछान्दोग्यकाठकवाक्यानुरोधेन संदिग्धार्थं बृहदारण्यवाक्यस्य नेतव्यात् तत्रापि वाक्यशेष एष पंथा विततः तेनैतिब्रह्मविद्दिति मार्गप्रवचनश्रवणाच्च । न तस्य प्राणा इति तच्छब्देन योऽकाम आत्मकाम इति प्रकृतस्यात्मनः परामर्शत्वोपपत्तेश्चात्मकामस्याप्यर्चिरादिना गत्युपपत्तेस्तथैवात्मकामत्वसामान्यात् अयमात्मा ब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, आत्मा वा अरे द्रष्टव्य इत्येवाद्यासु श्रुतस्यात्मकामस्याप्यर्चिरादिनैव गतिरुपपद्यते । तथैव एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाश

"एष पंथा विततः तेनैति ब्रह्मवित्" यह मार्ग सूचक वचन श्रुत है, और "न तस्य प्राणाः" इस वाक्य में तच्छब्द से योऽकाम, आत्मकामः इस प्रकृत आत्मा का परामर्शक होगा। इसलिये आत्म काम की अर्चिरादि से गति उपपन्न होती है। क्योंकि, छान्दोग्य, और कठोपनिषद् में जैसा आत्मकामी पुरुष बताया गया है, वैसेही बृहदारण्य में भी समान ही है। तस्मात् "अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादि महावाक्यों में सुने गये आत्मकाम पुरुष

मसंगमरसमगंधमचक्षुष्कमश्रोत्रमवाङ्मनोऽतेजस्कमित्यादिवाक्यश्रुतसूर्यचन्द्रादिसर्वनियन्त्रक्षरपुरुषनिष्ठस्याप्यर्चिरादिनागतिरुपपद्यते तस्यापिब्रह्मवित्त्वसामान्यात् तेनापियन्ति ब्रह्मविद इतिश्रुतानां ब्रह्मविदां गत्युपपत्तेः। भगवद्गीतायांयदक्षरं वेदविदोवदन्ति विशन्ति यद्यतयोवीतरागाः। यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये-। सर्वद्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरुध्य च। मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो-योगधारणां। ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति

की अर्चिरादि के द्वारा ही गति होती है। तथा, "एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणाअभिवदन्ति" यहाँसे लेकर "अवाङ्मनोतेजस्कम्" इत्यादि वाक्यों से श्रुत, सूर्य, चन्द्रादि सबका नियंता जो अक्षर पुरुष हैं, उसमे निष्ठा रखने वाले पुरुष की भी अर्चिरादि के द्वारा ही गति होती है। क्योंकि वह भी ब्रह्मवित् के समान ही है। क्योंकि "तेनापियन्ति ब्रह्म वेद" इस मंत्र से सुने गये ब्रह्म वेत्ता की गति सिद्ध होती है। भगवद्गीता में भी यदक्षरं वेद विदो वदन्ति,, यहां से लेकर यः प्रयाति त्यजन्देहम् सयाति-परमांगतिम्" यहां तक के मूलोक्त वचनों से यह सिद्ध होता है

परमांगतिमित्यक्षरविदोयांतीति पदेन मूर्द्धन्यैव नाड्या गतिस्मरणाच्च ।

यद्यपि पौरुषे परतन्त्रप्रमाणस्मृत्यपेक्षया-पौरुषेयत्वेन स्वतंत्रायाः श्रुतेर्बलीयस्त्वान्नस्मृत्य-नुरोधेन श्रुत्यर्थो नेतव्यस्तथापि स्मृतिवाक्य-रचनायाः श्रुत्यर्थस्मरणपूर्वकत्वात् श्रुत्यनु-गामित्वेन तदर्थस्मारकतया स्मृतेः प्रमाणत्वात् शिष्टप्रणीतस्मृतिमूलभूतायाः श्रुतेरवश्यं भाव्या च्च । तथाभूतस्मृतिद्वारैवनिगूढार्थ श्रुतितात्पर्या वगंतव्यात्त्च । श्रुतिसंदिग्धोऽर्थ स्वतंत्समानार्थ

कि अक्षर ब्रह्मज्ञानी भी मूर्द्धन्य नाडी में निकल कर जाता है। यद्यपि पुरुष प्रणीत परमान के परतंत्र। स्मृति के अपेक्षा, अपौरुषेय स्वतंत्र श्रुति को बलवत्ता है, इसलिये स्मृति के अनुरोध से श्रुति का अर्थ नहीं किया जा सकता तथापि स्मृति वाक्य की रचना श्रुति के अर्थ का स्मारक होने से श्रुति के अनुगामी होने से श्रुति के अर्थ का स्मारकतया स्मृति में प्रमाणता है। श्रेष्ठ पुरुषों से प्रणीत स्मृति की मूलभूत श्रुति अवश्य होती ही है, अतः तादृश श्रुतिमूलक स्मृति के द्वारा ही श्रुति के गुह्य अर्थ का तात्पर्य जानना चाहिये। क्योंकि श्रुति का जो संदिग्ध अर्थ है, वह तत्समानार्थक स्मृति के वाक्य से असं-दिग्ध किया जाता है। न कि उस श्रुति के प्रमाण के लिये स्मृति

कस्मृतिवाक्येनाऽसंदिग्धीक्रियते न तु तत्र प्रमाणत्वेन तदुदाह्रियते इति न दोषापत्तिः। किंच मुण्डकोपनिषदि—तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयांति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा। परीक्ष्य लोकान्कर्मचित्तान् ब्राह्मणोनिर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं। तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्यामिति शान्ताः शांतायेत्यनयोरर्थैक्यात् विद्वांस इत्यक्षर विद्यावतां भैक्ष्यचर्यां चारां सूर्यद्वारेण गतिश्रवणात्प्रकृतस्या-

---

का उदाहरण नहीं दिया जाता, इस लिये कोई दोष नहीं है।

किंच मुण्डकोपनिषद् में:—तपः श्रद्धेये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ताः······"परीक्ष्य लोकान् कर्मचित्तान्" इन दोनों श्रुतियों का एकार्थ होने से अक्षर विद्या वाले जो कि भिक्षाचर्या को सेवन करते हैं, उनकी सूर्य के द्वारा गति श्रुत है, अतः प्रकृत अक्षर विद्याज्ञानी की अर्चिरादि से गति सिद्ध है।

क्षरविद्यावतोऽर्चिरादिना गतिरुपपद्यते । किंच बृहदारण्येपि—एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणाअभिवदन्तीत्य स्यैव वाक्यस्यान्तेयएतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मण इति अस्माल्लोकात्प्रैतीति लोकान्तरगतिश्रवणाच्चा क्षरविद्यावतोप्यचिरादिना गतिरुपपद्यते ।

यत्तु केश्चित् यदक्षरं वेदविदो वदंतीत्यादिकं भगवद्वचनं प्रणवोपासनापरत्वेन नीतं तेषां पक्षेविशंतियद्यतयो वीतरागाः । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरतीत्यादीनां वैयर्थ्यापत्तेः । तत्कुतः वीतरागयतीनां प्रणवेप्रवेशानुपपत्तेः प्रणवोपदेशं

किंचः—बृहदारण्यक में "एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति" इसी वाक्य के अंत में "य एतदक्षरं विदित्वा स्मात् लोकात्प्रैति" इस श्लोक से लोकान्तर में जाने की गति श्रुत है, इसलिये अक्षर विद्या ज्ञानी की भी अर्चिरादि से गति उपपन्न होती है । जो कोई यह कहते हैं, कि "यदक्षरं वेदं विदो-वदन्ति," यह भगवद्वाक्य प्रणवोपासना-परक है । यह कहना ठीक नहीं क्योंकि, उनके पक्ष में "विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः यह वाक्य व्यर्थ हो जायगा । क्योंकि वीत-रागियों का प्रणव में प्रवेश नहीं हो सकता और प्रणव के उपदेश के बिना ब्रह्मचर्य

विना ब्रह्मचर्य चरणानुपपत्त्या पूर्वं प्राप्तप्रणवानां पुनः प्रणवप्राप्तीछानुदयात् तदिछया ब्रम्हचर्य-चरणासंभवाच्चेतिदिक् ।

तत्वमसीतिवाक्यनिष्ठस्य त्वचिरादिना गतिः, तस्य न यावन्नवाङ्मनः सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्या मिति तस्मादेव वाक्यत अवगम्यते । तत्र जीवे प्राणसम्पत्ति-श्रुत्या शरीरे प्राणसमवनयनानुपपत्त्या तत्वमसीति वाक्यनिष्ठस्यं सद्योमुक्त्यनुपपत्तेः । किं च तेजः परस्या मित्यत्र परशब्देन हार्दः पुरुष उक्तइत्यव

का आचरण भी नहीं होसकता । पहले जिनको प्रणव की प्राप्ति होगई है उनको प्रणव की प्राप्ति की इच्छा का उदय ही नहीं होसकता और विना इच्छा के ब्रह्मचर्य का आचरण भी असम्भव है । नहीं होसकता ? इतिदिक् ।

अतः "तत्वमस्यादि" वाक्यनिष्ठ पुरुष की अचिरादि मार्ग से गति "तस्य न य वन्नवाङ्मनःसम्पद्यते" इस वाक्य से निश्चय होता है वहांपर जीव में प्राण की सम्पत्ति सुनी गई है इसलिये शरीर में प्राण की सम्पत्ति होहि नहीं सकती । तस्मात् "तत्वमसि" वाक्य निष्ठ पुरुष की सद्योमुक्ति कथमपि उपपन्न नहीं होसकती । तथा तेजः परस्याम् यहां पर शब्दसे हार्द पुरुष कहा गया है । क्योंकि हार्दाऽनुगृहीतया शताधिकया', इस

गम्यते हार्दानुगृहीतया शताधिकया इत्यर्चिरा-
दिगतिपरे सूत्रे हार्दानुग्रहपूर्वकम् मूर्द्धन्या नाड्या
गतिनिर्देशात् तदेवमुपनिषत्सु यानि प्रधान-
नत्वेन स्वीकृतानि वाक्यानि तदर्थनिष्ठाना-
मर्चिरादिनागतिर्दर्शितवानिति तु तत्र तत्स-
दृशानिअन्यान्यपिवाक्यानि भवन्ति तेषां प्रद-
र्शितवाक्यैरेकवाक्यतांयोग्यात् तदर्थनिष्ठाना-
मप्यर्चिरादिनैवगतिरुपपद्यते। तत्रापि ये भग-
वदुपासकास्तेऽर्चिरादिमार्गेण तल्लोकं गत्वा
तं प्राप्य न निवर्त्तन्ते इति."न सपुनरावर्तते

अर्चिरादि गति सूचक सूत्र में हार्द पुरुष के अनुग्रह पूर्वक मूर्द्धन्य नाडी से गति का निर्देश किया गया है। इस प्रकार उपनिषदों में प्रधानतया जिन वाक्यों को स्वीकार किया गया है। उन वाक्यों के अर्थ का विचार करने से यह निश्चय हो गया कि तत्तत् वाक्यार्थ निष्ठ पुरुष को अर्चिरादि से गति होती है यह दिखा चुके हैं। इसीप्रकार और भी जो इन वाक्यों के सदृश जो वाक्य है, उन वाक्यों की भी अर्थ इसी प्रकार से जानना चाहिये। क्योंकि उन वाक्यों की इन प्रदर्शित वाक्यों के साथ एक वाक्यता करना योग्य है, अतः तदर्थ निष्ठ पुरुषों की भी अर्चिरादि के द्वाराही गति उपपन्न होती है।

न स पुनरावर्तते" इतिश्रुतेः "अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दादिति" सूत्राच्च । मां प्राप्यतु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते" इत्येवमादिस्मृतिभ्यश्चावगम्यते । ये तु चतुर्मुख-ब्रह्मोपासकास्ते तल्लोकं गत्वा तदधिकारान्ते न सह मुच्यन्ते इति । वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्वाः ते ब्रह्मलोकेषु परांतकालेपरामृताः परिमुच्यन्त सर्वे इति श्रुतेः । ब्रह्मणा सहते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यांतेकृतात्मानः प्रविशन्ति परंपद-मित्येवमादिस्मृतेश्चावगम्यते । नहि भगवद्वि-

---

उसमें भी जो भगवदुपासक हैं वे अर्चिरादि मार्ग से उनके लोक को जाकर उसको प्राप्त होकर पुनः संसार में नहीं आते हैं यह बात "न स पुनरावर्तते .." इस श्रुति से, "अनावृत्तिः शब्दात..." इस सूत्र से और "मां प्राप्य तु कौन्तेय०" इत्यादि स्मृतियों से जाना जाता है । जो चतुर्मुख ब्रह्माजी के उपासक हैं वे ब्रह्मलोक को जाकर उनके साथ मुक्त होते हैं; यह बात "वेदान्त-विज्ञानसुनिश्चितार्था०" इस श्रुति से तथा "ब्रह्मणा सह ते०" इत्यादि स्मृतियोंसे सिद्ध होती है । भगवदु-पासकों की ब्रह्मलोक-प्राप्ति तथा उनके साथ मुक्ति कहना उप-

तकानां चतुर्मुखब्रह्मलोकप्राप्तिस्तेन सह मोक्षश्चोपपद्यते। यं यं वापि स्मरन् भावमित्यादि भगवद्वचनविरोधेनान्यचिन्तकस्य तदन्यप्राप्त्यनुपपत्तेः। सर्वनियामकस्य नित्यमुक्तस्य भगवतः परदत्ताधिकारत्वस्य तदन्ते मुक्तेश्चानुपपत्तेः। चतुर्मुखस्य ब्रह्मणस्तु एकोहं वैनारायण आसीत् यस्मिँल्लोका ओताश्च प्रोताश्च यन्नाभिपद्माजातोऽब्जयोनिः इति एकाहि ब्रह्मायजति इतिश्रुतौ "संक्षिप्यहिपुरालोकान् मायया स्वयमेव हि। महार्णवेशयानोप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः। पद्मे दिव्यार्कसंकाशेनाभ्यामुत्पाद्य मामपि। प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि हवं निवे-

---

पत्र नहीं है, क्योंकि "यं यं वाऽपि०" इत्यादि भगवद्वचन से विरोध होता है और एक के उपासनासे दूसरेकी प्राप्ति कहना युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। सबके नियामक नित्ययुक्त भगवान का दूसरे को अधिकार देना और उसके अंत में मुक्त होना भी ठीक नहीं है। "एकोहं वै०" इत्यादि श्रुतिसे तथा "संक्षिप्यहि०" इत्यादि वाल्मीकि वाक्य से यह बात सिद्ध है कि ब्रह्म-स्वरूप नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न चतुर्मुख ब्रह्माजी उनसे पृथक

शितम् । सोहं सन्यस्तभारोहित्वामुपास्य जगत्पतिमिति वाल्मीकीयेच ब्रम्हणोनारायणनाभिपद्मजत्वश्रुत्या तत्पृथक्त्वोपपत्तेः तद्वत् प्राजापत्यकर्माधिकारत्वेन तदन्ते तन्मोक्षोपपत्तेश्च । किंच-प्राजापत्यं त्वयांकर्मइति वचनादिदमवगम्यते । उपनिषत्सु यो ब्रम्हलोकादधः प्रजापतिलोकः श्रूयते स चतुर्मुखस्य ब्रम्हणोलोकोभवति तत्रैव तदुपासकाः गत्वा तदधिकारांतेतेन सहमुक्त्वा तदूर्ध्वं ब्रम्हलोकशब्दितं भगवल्लोकं गच्छन्ति स एव भगवल्लोकः परपदशब्देनोच्यते परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदमित्येवमादिस्मृतौ ।

हैं। उन्होंने इनको प्राजापत्यका अधिकार दिया है अतः उनके अन्त में उनका मोक्ष होना ठीक है ।

"किंच—"प्राजापत्यं त्वया०" इस वचन से भी यह सिद्ध होता है । उपनिषदों में जो ब्रह्मलोकके नीचे प्रजापति लोक सुना जाता है वह चतुर्मुख ब्रह्माजीका लोक है, उसी लोकमें ब्रह्माजी के उपासक जाकर उनका अधिकार समाप्त होनेपर उनके साथ मुक्त होकर ब्रह्मलोक नामके भगवान् के लोक में जाते हैं, वहां

न चात्र परमपदपदं स्वरूपपरं किन्तु स्थानविशेषपरं अविद्याविमोकेन विशिष्टशुद्धस्वरूपाणां पुनः स्वस्वरूपे परस्वरूपे वा प्रवेशानुपपत्तेः।

अद्वैतपक्षे तु प्राप्तशुद्धस्वरूपाणां तदतिरिक्तवस्त्वन्तराभावेन कुत्रापि प्रवेशानुपपत्तेश्च द्वैतपक्षेतु तेषामेवभूतानामपि स्वव्यतिरिक्तग्रामप्रवेशवत्स्थानविशेषे प्रवेशोपपत्तेश्चात्रत्यस्य परमपदपदस्य स्थानविशेषपरत्वोपपत्त्या मुक्तप्राप्यपरविभूतिस्वामिपरत्वमुपपद्यते न तु तद-

भगवान् का लोक पर पद शब्द से "परस्यान्ते कृतात्मान०" इत्यादि स्मृतियों मे कहा गया है। यहां परम पद शब्द स्वरूप का वाचक नहीं है किन्तु स्थानविशेष का वाचक ही है, क्योंकि अविद्या नाश से शुद्धस्वरूप प्राप्त पुरुषों को पुन स्वस्वरूप मे वा परस्वरूप मे प्रवेश करना असगत है। अद्वैत पक्षमें शुद्ध स्वरूप प्राप्त पुरुषों को उनके अतिरिक्त अन्य वस्तु न होनेसे कहीं भी प्रवेश होना असंगत है। द्वैत पक्षमे तो शुद्धस्वरूप प्राप्त पुरुषों को भी अपने अतिरिक्त ग्राम या घर आदि मे प्रवेश करने के समान किसी स्थान विशेषमें प्रवेश कहना युक्त होनेसे उपयुक्त परम पद शब्द का स्थानविशेष पर अर्थ करके मुक्तोंसे प्राप्य पर विभूति स्वामी परत्व ठीक उपपन्न होता है न कि उस

न्यपरत्वं । अर्चिरादिमार्गेण भगवद्भक्तानां भगवत्प्राप्तिरुक्ता भगवता वासुदेवेन गीतायां शुक्लकृष्णे गतीह्येते जगतः शाश्वते मते । एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः । अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् । तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रम्हविदोजनाइति ब्रम्हविदः गुरुशास्त्रद्वारा ब्रम्हस्वरूपं ज्ञात्वा तदेकचिन्तनपरा इत्यर्थः । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इत्यत्र गुरुमुखादात्मश्रवणानन्तरं तन्मनननिदिध्यासन पदस्य ध्यै चिन्तायामिति धातोरूपत्वेन चिन्तनार्थकत्वनिष्पत्तेः निदिध्यासनस्य आत्मा वा अरे द्रष्टव्य

से भिन्न पर कहना । श्रीकृष्णजी ने भी गीतामें "शुक्ल कृष्णे०" इत्यादि श्लोकोंमें अर्चिरादि मार्गसे भगवद्भक्तों की भगवत्प्राप्ति कही है, यहां पर "ब्रह्मविदो जनाः" इसका अर्थ 'गुरुशास्त्र के द्वारा ब्रह्मस्वरूप को जानकर उसके चिन्तन में तत्पर निमग्न रहने वाले" ऐसा है । "आत्मा वारे द्रष्टव्यः०" इस श्रुति में गुरुमुख से आत्मश्रवण के पश्चात् 'मनन, निदिध्यासन" कहा है और निदिध्यासन' यह शब्द 'ध्यै चिन्तायां' इस धातुसे बना

इति श्रुतौ आत्मदर्शनस्य मुख्यसाधनत्वादर्शनाच्च। भगवद्गीतायामपि भगवता स्वानन्यचिन्तकस्यैव पुनः पुनः स्वप्राप्तेरुक्तत्वाच्च।

अनन्यचेताः सततं योमां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः। अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। मन्मनाभव भव मद्भक्तोमद्याजीमां नमस्कुरु। मामेवैष्यसियुक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः। मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यन्ते प्रतिजाने प्रियोसि मे। ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।

है अतः इसका अर्थ चिन्तन करना' ऐसा होता है तथा इस श्रुतिमें आत्मदर्शन को ही मुख्य साधन माना गया है। गीतामें भी भगवान ने अपने अनन्य चिन्तन करनेवाले को ही पुनः पुनः अपनी प्राप्ति कही है।

'अनन्य चेताः सततं०', अनन्याश्चिन्तयन्तो मां०', 'मन्मना भव०','मन्मना भव०','येतु सर्वाणि०', 'अंतकाले च०', 'यं यं वापि'. 'मामुपेत्य०', 'देवान्देवयजो०', 'आब्रह्म भुवनात्०'

अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते । तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्यु संसारसागरात् । भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् । मय्येवमन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय । निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्द्ध्वं न संशयः । अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरं । यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः । यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरं । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः । मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः । देवान देवयजो यान्ति पितॄन् यान्ति पितृव्रताः । भूतानि यान्ति भूतोज्याः यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् । आब्रह्मभुवनाम-ल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन । मामपेत्य तु कौन्तेय पुनर्ज्जन्म न विद्यते इत्येवमादिभिः । अत्र

इत्यादि में यही बात कही गई है । अन्तिम श्लोक में 'पुनरावर्तिन' इस के प्रतियोगिता में 'पुनर्जन्म न विद्यते' कहा है अर्थात् मुझे प्राप्त हुए पुरुष का पुनः जन्म नहीं होता तथा 'मुझे

पुनरावर्त्तिनइत्यस्य स्थाने पुनर्जन्म न विद्यते इत्यस्योपादानात् मां प्राप्तस्य पुनर्जन्म न विद्यते इत्यस्य मत्प्राप्तस्य पुनरावृत्तिर्नभवतीत्यर्थ कत्व-मुपपद्यते, छान्दोग्येप्यर्चिरादिमार्गेण भगवन्तं प्राप्तानामपुनरावृत्तिः श्रूयते "नसपुनरावर्त्तते न-सपुनरावर्त्तते इति, तदेव व्यासप्रणीतं सूत्रमपि वदति "अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दा-दितीदम् ॥

इति श्रीमज्जगज्जनन्या रामवल्लभायाः सीतायाः कृपाकटाक्षितेन स्वामि श्रीरामप्रसादेन कृतः गीतातात्पर्यनिर्णयः समाप्तिः ।

प्राप्त पुरुष की पुनरावृत्ति नहीं होती' इन दो वाक्यों का तात्पर्य एक ही है। छान्दोग्य में भी 'अर्चिरादि मार्ग से भगवान् को प्राप्त पुरुष की पुनरावृत्ति नहीं होती' (न स पुनरावर्तते०) ऐसा कहा है। यही बात श्रीव्यासजी ने भी 'अनावृत्तिः शब्दात्०' इस सूत्र से कही है। इति शुभम्।

इति श्रीमज्जननी रामवल्लभा सीताजी के कृपापात्र

स्वामी श्रीरामप्रसाद कृत

❀ गीतातात्पर्य निर्णय समाप्त। ❀



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	निद्धार्य्य	निर्द्धार्य्य
१	६	चावतीर्णं:	चावतीर्णः
३	६	पर्य्योयेतां	परयोपेत
४	१	सर्व्वाणि	सर्व्वाणि
५	३	प्रतिज्ञाने	प्रतिजाने
५	५	मद्योव	मय्येव
६	३	कुवि	कुर्वि
८	१	कर्मण्यभिरत,	कर्मण्यभिरतः
८	२	ब्रह्मभूय य	ब्रह्मभूयाय
८	१०	बुद्‌ध्या	बुद्धया
६	३	वलं	बलं
१०	८	वुद्धि मु०	बुद्धि मु०
१३	२	योगाहानुष्ठेय	योगारूढानुष्ठेय
१३	३	व्यापारत्वेपि	व्यापारत्वेपि
१४	५	ब्रह्म	ब्रह्म
१४	५	श्रूनि	श्रुति
१४	६	ब्राध	बाध
१४	६	बाधाद्	बाधाद्
१५	३	ब्रह्म	ब्रह्म
१५	५	सर्व्वेषां	सर्वेषां
१६	१	सर्व्वो	सर्वो
१६	३	असंसयं	असंशयं
१६	७	कश्चिन्मामेति	कश्चिन्मां वेत्ति
१८	१	तत्पूर्व	तत्पूर्व
१८	७	यत्मत्यवानिति	यतात्मवानिति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	१०	याथ्य	कार्थ
२०	६	कने	कते
२१	५	वोध्य	वोध्य
२२	३	सवस्य	सर्वस्य
२२	४	सर्व	सव
२२	४	कवेन	कत्वेन
२३	६	क ना	कथना
२३	६	भगवद्त्त	भगवद्त्त
२४	५	षयं	विषयं
२४	६	स्माद्गुचना	स्माद्वचना
२५	१०	विधोजुनं	विधोज्जुं न
२६	२	चेनसामिति	चेतंसर्मिति
२७	३	प्रत्यात्म	प्रत्यगात्म
२८	१	जिज्ञासोरथात्म	जिज्ञासोरात्म
३२	६	शक्योऽह	शक्यग्रह
३२	४	तज्ञापक० च	तज्ज्ञापत्वं तद्दर्शकत्वं तत्प्रवेशकत्वंच
३२	५	तम	तमः
३२	६	भक्तिप्रत्यत्पतपक्ष	भक्तिपक्ष
३२	८	संहराच्च	संहाराच्च
३४	६	पार्यं, कु	पार्यं कु
३७	६	ब्र.	ब्र.
३७	६	ब्र.	ब्र.
३७	७	ब्र	ब्र.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३७	७	नाड्योक्त	नाड्योक्त
३८	६	त्र	भ्र
३९	१	पत्ते कुतः	पत्तेः। कुतः
३९	२	रिष्टा	रिष्ट्वा
३९	१४	च्यवन्ति । ते	च्यवन्ति ते।
३९	११	यांति त्यन्तक्षं	यांतीत्यन्तस्य
३९	२१	चाक्यल्य	चाक्यस्य
४०	२०	मीन्त्यनेन	मीत्यनेन
४१	८	उभयतपाशब	उभयतः पाशब
४२	१	[illegible]	ज्ष्ठ
४२	६	र्श्रवि	र्श्राव
४२	८	दैवी	दैवीं
४२	९	स्यनन्य	त्यनन्य
४३	५	अत्यक्ष्याव	प्रत्यचाव
४४	१	निः कामेन	निष्कामेन
४४	७	विशे [illegible]	विशेषब्रह्म
४५	३	स्व [illegible]वृते,	स्यात्मानांनिवृत्तेः
४७	१	योम	योमं
४७	६	चाय	चाप्य
४८	५	मान स्व	मानः स्व
३९	८	भक्तां	भक्त
५६	१	त्लमिति	त्समति
५७	७	पद व	पदश्व
६१	६	ब्रह्मण	ब्राह्मणा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	१	जीनोत्क	जीवत्वो
	२	व्यक्ता	व्यक्तो
६६	७	ब्राह्मण	ब्राह्मणा
,,	१०	मेतत्वयोतत्वस्मृते	मेतत्वस्मृते
६४	२	तद्व	तद्ब्र
६५	३	ज्जयो	उज्जयो
,,	५	ष्याति	ष्यन्ति
,,	,,	र्यतिष्यागाति	र्यतिष्य इति
७१	३-४	मूर्धन्या	मूर्धन्या
७७	२	सर्वनोतं	सर्वमोतं
८१	१	श्रद्धा तां	श्रद्धावतां
,,	३-४	श्रद्धाग्वँ	श्रद्धां सत्ये
८२	१	आपूर्यमापूर्य	आपूर्यमाणपक्षमापूर्य
,,	,,	द्याम	द्यान्
,,	४	ते षु	तेतेषु
,,	८	येद्य प	येह्य प
८३	१	ब्रह्म	ब्रह्म
८३	४-५	श्रद्धाग्वँ	श्रद्धां
,,	७	र्मातर्ना	र्गतिर्ना
८४	७	सिद्धय्प	सिद्धप
,,	९	मूद्धन्या	मूर्द्धन्या
८५	३	वदन्तो	वदन्ती
,,	१	मूर्द्धन्या	मूर्द्धन्ययो
८५	१०	प्रवत	प्रवक्ष्य
८६	१०	निर्विशेष	निर्विशेष

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	६	स्वदीर्घ	स्वमदीर्घ
८८	१७	घर्म	घम
"	५	स्योन्यान	स्यो न
"	८	प्रशऊँ सति	प्रशंसन्ति
"	"	देवार्वी	देवाद्वीं
९१	"	पद्यत्त	पद्यते
९२	१	त्वज्ञानाय	त्वायुक्तमत्वज्ञानाय
९३	४	मुपादितं	मुपगादितं
"	७	मूर्द्धन्या	मूर्द्धन्यां
"	८	मुराड	मुण्ड
"	९	ब्रह्म	ब्रह्म
९४	३	क्रमन्य	क्रमन्त्य्
"	४	वृहच्च	वृहच्च
"	६	त्यक्त	त्युक्त
"	"	ब्रह्म	ब्रह्म
९५	७	विद्व	विद्व
"	"	कत्वो	कत्वो
९५	७	कत्वे	कत्वे
९६	८	परंतरं	परतरं
"	"	किच	किच
९६	८	त्युार्च्छित	त्युर्च्छितं
९७	२	युज्या	युञ्ज्या
९८	५	योगिना	योगिनां
"	६	मन्तकाले	मन्तकाले
९९	१	र्गा तम	र्गातम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१०	सर्वैषां	सर्वेषां
,,	,,	प्राणोदुध्व	प्राणोदुर्ध्व
२०१	६	ऊंदुध्वं	ऊदुर्ध्वं
,,	७	रभ्यमिति	रभ्य
१०२	६-१०	शास्त्राणैवस्या	शास्त्रस्या
,,	१०	परे सूत्रे	परेणैव
१०३	५	गतिभग	गतिभंग
,,	६	समवनीयंते	समवलीयन्ते
१०४	२	नुकान्ति	नुत्कान्ति
१०५	१०	ब्रह्मबन्धुनूच्य	नूच्यब्रह्मबन्धु
१०६	२	हे	ह
,,	४	स्यु-। ।	स्युतत
१०७	६	नात्वक्ष्य	नावक्ष्य
१०८	६	एकं भवति	एकी भवति
१०९	३	येम हीति	येमहीति
११०	३	व्याकरो	व्याकरो
,,	५	स्त्रिव	स्त्रिवत्
१११	६	तच्छुक्लं	यच्छुक्लं
,,	७	स्यागा	स्यागा
,,	७	च्चन्द्र	च्चन्द्रा
११३	४	योणम	योणीय
११६	२	वेदानान्नु	वेदाम्नानु
,,	४	पप्रच्छ	पप्रच्छ
,,	६	ततो	तत्ततो
११७	५	नहीति	नीहीति

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	७	पुनर्वि	पुनर्वि
१२३	२	ज्ञ-ासस्या	ज्ञतास्या
"	६	एका	एकी
१२४	६	तन्निदि	तन्निदि
१२५	३	विशषा	विशेषा
१२६	८	त्वांपो	त्वं प्राणस्यापो
१२७	६	निदिश्य	निदिश्य
"	"	लिङ्गन	लिङ्गेन
१२८	२	ग्रंथे-ो	ग्रथनो
१२८	७	ष्ट्रस्येमाः	ष्ट्रस्येमाः
१२६	३	सल्लाप	सल्लीन
१२६	६	सनस्न	सतस्त
१२६	८	ष्ठात्व	ष्ठात्व
१३०	५	इत्याद्यारभ्य	इत्यारभ्य
१३०	६	तीत्तयेदन्त	तीत्येतदन्त
१३०	१०	वचमाच्च	वगमाच्च
१३१	१	न्तै	न्तै
१३१	३	तायन्मा	तावन्मा
१३२	२	लिङ्गस्या	लिङ्गत्वा
१३२	३	थोनर्ग	तोन्तर्ग
१३२	९	यत्वेनश्च	वत्वेनश्च
१३२	५	घस्य	घस्य
१३२	८	स्याप्पने	स्याप्यने
१३३	२	वचन	वचन
१३४	४	तदाधीन	तदधीनं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३४	१२	तत्तात्कर्ममु	तत्तत्कर्मसु
१३५	४	निर्वोध्य	निबोध्य
१३६	१०	म्वायी । इति	स्वामी इति
१३७	४	वहीं	वह्नीं
१३९	१	मगी	मंगी
१३९	१	नैर्घ ण्ये	नैर्घृण्य
१३९	३	कमणा	कर्मणा
१३९	४	भत्यस्य	भृत्यस्य
१४०	२	तज्ज वानां	तज्जीवानां
१४०	३	वाधिन	बाधित
१४१	३	यहम्मित्येतस्माव्	यहमित्येतस्मात्
१४१	६	विस्मृन	विस्मृत
१४१	९	निदृश	निदर्श
१४२	६	चेननता	चेतनता
१४२	८	जीव संसृत्य.	जीव संसृत्य
१४३	१	शक्तिनच्चेन	शक्तिमच्चेत
१४४	४	किच	किंच
१४४	६	चान्यौ	चान्यो
१४४	६	सन्न्रिरुद्धः	सन्निरुद्धः
१४४	७	शुवल	शुक्ल
१४४	९	अह्म	ब्रह्म
१४५	१	प्रकृति	प्रकृतिं
१४५	४	स्मूति	स्मृति
१४५	४	अव	अर्व
१४६	४	वह्मणो	ब्रह्मणो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४६	६	रीत्यं	रीत्य
१४६	९	ब्रह्मणः.	ब्रह्मणः
१४७	३	जोवयोः	जीवयो,
[illegible]	७	स्यादृना	स्यादीनां
१४८	२	ब्रह्मास्मो	ब्रह्मास्मी
१४९	४	प्रनीय	प्रलीय
१४९	१०	इदानी	इदानीं
१५०	८	तत्स्थूल	तत्स्थूल
१५२	४	ब्रह्म	ब्रह्म
१५२	६	त्पन्ना	त्पन्ना
१५३	३	ब्रह्म	ब्रह्म
१५३	४	ब्रह	ब्रह्म
१५३	६	कृत	कृत
१५४	५	जोवा	जीवा
१५४	८	जीवभ्यः	जीवेभ्यः
१५४	१०	सव	सर्व
१५५	३	मुक्ति	मुक्ति
१५५	४	सीकरे	स्वीकारे
१५५	४	यु,	युगप
१५५	४	कर्मणीं	कर्मणां
१५५	१०	काराध	काशाग्र
१५७	३	कर्मकर्तृ	कर्मकर्तृ
१५७	७	स्वाकारे	स्वीकारे
१५८	२	द्रष्टव्य,	द्रष्टव्यम्
१५८	१०	पव	पूर्व

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	४	भाक्यो,	भासयो,
१५६	६	र्ता तौ	तद्धितौ
१६०	५	प्रतंक	प्रतीव
१६१	८	द्दढी	द्दढी
१६२	२	ज्ञानस्ब	ज्ञानस्क
१६२	८	श्रत्यु	श्रत्यु
१६२	६	चेन	चेतन
१६२	१०	कत्य	कृत्यु
१६३	२	वृति	वृत्ति
१६३	३	दिनां	दीर्णा
१६४	१	पत्तेत	पत्तोस्त
१६४	५	इात	इति
१६४	५	कञ्जुरां	कञ्जुरीं
१६४	६	तद	तद्दं
१६४	७	कञ्जुरांस	कञ्जुरीर
१६५	२	जीन्पात्तिका	जीवन्मात्तिकां
१६५	२–३	स्तद	स्तद्द
१६५	४	यनु	यन्तु
१६५	५	वृति	वृत्ति
१६५	७	स्वा० क००	स्वार्पिनकत्वीर्यं
१६६	२	दृष्टश्रत	दृष्टश्रुत
१६६	४	ब्रह्म	ब्रह्म
१६७	१	ब्रह्मो	ब्रह्मों
,,	२	प्रकृनि	प्रकृति
,,	२	दिमावत्वं	दिभावत्वं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	४	कत्वव्	कत्वव
,,	५	विधायाः	विद्यायाः
,,	,,	भूत्	भूत
,,	७	कर्मनैमिति क	कर्मनैमित्तिक
२६८	४	तच्चितवं	तच्चिंतनं
२६९	६	ि कारां	विकारां
,,	७	प्रकति	प्रकृति
,,	,,	निर्महब्दह्मनास्नि	निर्महद्ब्रह्मतस्मि
,,	८	गर्मं	गर्भं
,,	१४	मंजन्ते	भजन्ते
,,	,,	बुधा	बुधा
२७०	२	कमणा	कर्मणां
,,	३	श्रुनिस्मृत	श्रुतिस्मृत
,,	६	स्तद्रूपं	स्तद्रूप
२७१	४	सृष्ट्वा	सृष्ट्वा
,,	६	कर्य	कार्य
,,	८	माया	मायो
,,	९	स्रष्टत्वं	स्रष्टृत्वं
२७२	१	तद्ब्रह्म	तद्ब्रह्म
,,	४	चर त्या	चरामत्या
,,	५	त्च्च	त्वाच्च
२७३	३	तद्ब्रह्मा	तद्ब्रह्मा
,,	,,	स्रष्ट् वा	सृष्ट्वा
,,	४	श्रयते	श्रूयते
,,	६	दौतेदु	दौतदु

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	६	ब्रह्मण	ब्रह्मण
१७४	१	ब्रह्मोदितः	ब्रह्मापेदितः
,,	७	दित्य	दित्यस्य
,,	११	व्याकत	व्याकृत
१७५	१	चिद द्वि	चिदचिद्वि
,,	६	च्चात्मानो	च्चात्मनो
१७७	४	-प	रूप
,,	५	-ग्र	मग्र
,,	६	तह्यव्या	तह्य व्या
,,	७	ने व्या	नेतव्या
१७८	१	रूपेण ि-थ	रूपेण स्थि
,,	४	गच्छ त्या:	गच्छन्त्या:
,,	६	योनिमहद्ब्रह्म	योनिर्महद्ब्रह्म
१७६	१	शवल	शबल
,,	५	वस्य·..स्य	वस्थप्रकृतिविशिष्टचेतनस्य
,,	,,	स्थू...काय	स्थूलावस्थकार्य
,,	६	विशिष्ट	विशिष्टं
,,	१०	मुक्य	मुख्य
१८०	३	सूक्ष्माचि	सूक्ष्मचि
,,	६	द द्वि	दचिद्वि
,,	६	तदीपा	तदौपा
१८१	४	तदे द्व	तदतद्ब्र
,,	५	घश्रुते	घ श्रुते
,,	१०	मद्ब्रह्म	मद्ब्रह्म
१८२	२	श्रति	श्रुति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	५	क त्य	कश्रुत्य
,,	६	पीत्य	पीत्थ
१८४	६	तद्वहि	तद्व ह
१८५	८	श्रत	श्रुतं
१८६	३	मसीतिं	मसीति
,,	६	वहदा	बृहदा
१८७	५	त्स्वरप	त्स्वरूप
,,	७	तत्स्वरूप	तत्स्वरूप
,,	१०	दन्वय	दन्वय
१८८	१	सिद्धय	सिद्धय्थ
,,	२	गुणम्व	गुणस्व
,,	२	दापत्व	दीर्घत्व
,,	४	त पा	त्रयो
,,	८	चिद्विशिष्टं	चिद्विशिष्टं
१८९	५	ततद्विशप्र	तत्तद्विशेष
,,	६	न्यत्त्रे	न्पत्ते
१९०	१	माद्यामु	माद्यासु
,,	३	निर्बांध	निर्बाध
१९०	४	पुनश्व	पुनश्च
१९१	१	बह्म	ब्रह्म
१९१	२	चिद्ध	चिद्वि
१९१	३	वह्म	ब्रह्म
१९१	५	यनुष्या	मनुष्या
१९१	६	त्तसवं	रात्सवं
१९१	१०	मत्येत	मप्येत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६१	१२	रृश्य	रम्य
१६२	७	स्वरपो	स्वरूपो
१६४	६	स्वेछ	स्वेच्छ
१६५	१	प्राप्त	प्राप्तं
१६५	७	सर्वरूषत्व	सर्वरूपत्वा
१६६	७	त्वोपत्तेः	त्वोपपत्तेः
१६८	१०	नाडय तासां	नाडयस्तासां
"	१३	मूर्द्धन्या	मूर्द्धन्यया
२०१		लौके	लोके
"	८	विशाष	विशेष
२०२	५	कल्पिना	कल्पना
२०३	"	पृथिव्योः	पृथिव्योः
"	"	विद्यत्	विद्युत्
"	६	वाद्योका	वाय्वोका
"	७	त्तप्ति	तृप्ति
२०४	१	सर्वेपात्मनः	सर्वेपाप्मनः
"	२	विद्रा	विद्दा
२०४	६	विद्वान्	विद्वान्
२०६	२	प्रत	प्रति
"	६	द्ब्रह्म	दुब्रह्म
२०७	१०	नीय	नीय
"	"	देवयथो	देवपथो
२०८	४	वत्तमनि	वर्त्मनि
२०९	५	वर्णनोपि	वर्णनेपि
२१६	१०	जीवस्य	जीवस्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१७	४	वह्म	ब्रह्म
२१८	८	णैकनोच्यते	नोच्यते
,,	,,	वत्वन	वत्वेन
,,	१०	वोकर्थे	वोक्तेऽर्थे
२२१	११	ब्रह्माविद:	ब्रह्मविद:
२२३	१	बचर्येणा	ब्रह्मचर्येणा
२२६	१	तयोद्ध्व	तयोर्द्ध्वं
२२८	३	च्यच्छ्रयते	यच्छ्रयते
,,	५	हृग्रय	हृदय
,,	१०	तयोर्द्ध	तयार्द्ध्व
,,	,,	मृत्वमेति	मृतत्वमेतीति
,,	,,	तस्यव	तस्यैव
२३०	१	गुणोष	गुणोप
,,	१०	तर्हि	तर्हि
२३१	४	षरा	[illegible]
,,	५	तच्छेद्र	तच्छन्द
,,	६	सर्म्वान्ध	सम्बन्धि
२३२	१	म्रिनयते	म्रियते
,,	२	उत्का	उत्क्रा
,,	५	करयापि	कस्यापि
,,	१०	नव रं	नवतरं
२३३	७	यो.धर्म	योधर्म
२३४	२	तत्कम	तत्कर्म
,,	३	भि—म द्यन	भिसम्पद्यते
,,	५	णस्तम्य	वस्तस्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	६	व..	जीवगतेः
,,	१०	प्राण-स्वन्धं	प्राणसम्बन्धं
२३५	३	त्याहोम्वि	स्याहोस्वि
,,	५	श्रतिः	श्रुतिः
,,	७	तःय्येत्य	तस्येत्य
,,	८	तस्पापी	तस्यापी
,,	६	नोक्रा	नोत्क्रा
२३६	१	,,	,,
,,	,,	सस्पद्यते	सम्पद्यते
,,	२	श्रतिः	श्रुतिः
,,	३	प्राणे ण	प्राणे प्राण
२३७	१०	उक्रा	उत्क्रा
२३८	१	णोक्रान्ति	णोत्क्रान्ति
२३८	५	योऽ कासो	योऽकामो
,,	६	उक्रा	उत्क्रा
,,	७	णोक्रान्ति	णोत्क्रान्ति
,,	,,	स्त्युक्रान्ति	स्त्युत्क्रान्ति
,,	६	रांप्राण	रांत्प्राण
,,	,,	उक्रा	उत्क्रान्ति
,,	,,	वणा	श्रवणाच्च
२३८	६	त्रायं	तत्रायं
,,	१०	वेदे···द्वां	वेदेतिविद्वांसं
२३६	३	समली	समवली
२३६	६	मध्यन्दि	माध्यन्दि
,,	७	उक्रा	उत्क्रा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	८	णोक्र	णोत्क्र
"	११	"	"
"	१२	अ ं	अयं
२४०	१	शद्वे त	शद्वे न
"	३	नायय	नामय
"	४	हिं	संहिता
"	५	नोप्काम	नोत्क्राम
२४१	६	अध्मातः	आध्मातः
"	६	वि.द्वि	विद्वद्विषय
"	१०	तस्या... द्वि	तस्यां विद्वद्विषयत्वमुपपद्यते तत्र विद्वद्वि
"	१४	ग्रहा. ग्रह	ग्रहातिग्रह
"	१५	प्रश्नवत्तर	प्रश्नोत्तर
२४२	१	पु.श्च.	पुनश्चेत
"	"	याज्ञ	याज्ञवल्क्येति
"	२	मियंते	म्रियते
"	४	आत्त	आर्त
"	६	वेत	चेत
२४३	७	विद्वत्परत्ते	विद्वत्परत्वो
२४३	६	विद्वासं	विद्वांसं
२४४	१	वि०द्वि	विद्वद्विं
२४४	२	त्वासद्धे:	त्वासिद्धे:
२४५	९	यतो	प्रयतो
२४५	१०	मनषि	मनसि
२४६	६	चेतत्यं	चेतत्यं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४६	७	बाङ्	वाङ्
२४६	६	ह्पो	एषो
२४६	१०	त०००	तत्वमसी
२४६	१०	यदि०००००कं	यद्विद्वन्मर्विषयकं
२४७	१	विद्वन्म	विद्वन्मरण
२४७	३	श्रति	श्रुति
२४७	७	यस्य	यस्य
२४७	७	ह्वयसासां	ह्वयस्तानां
२४७	७	मूद्धा	मूर्द्धानो
२४८	१	मूर्द्धनो	"
२४८	१	ि दुष,	विदुष,
२४८	२	देशान ।	देशान्त
२४८	२	नाडा	नाडी
२४८	५	तत्मश्च	तत्वश्च
२४८	६	अतोक्रान्ति,	अतोत्क्रान्ति
२४८	६	बिदर्व	विद्व
२४८	७	नत्वपि	नत्वेप्रि
२४८	७	म्ताति	स्तौति
२४८	८	कु ा,	कुतः
२४९	६	क्रा ।	त्का
२४९	३	म्त	स्त
२४९	८	श्चोक न्ति	श्चोत्क्रान्ति
२४९	६	वाङ्न	वाङ्मन
२५०	३	उक्रा	उत्का
२५०	३	शेषण	शेषेण